ISSN : 2319-7137

Volume : 13/Issue : 01
January to June-2021

INTERNATIONAL
LITERARY QUEST

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

Editor in Chief
Prof. Ashok Singh

Editor
Dr. Vikash Kumar
Dr. Surendra Pandey

©सम्पादक

प्रधान सम्पादक
प्रो0 अशोक सिंह (कुलपति, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़)
सम्पादक
डॉ0 विकास कुमार (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश)
डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी0जी0 कॉलेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़)
उप सम्पादक
डॉ0 नलिनी माथुर (एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भगिनी निवेदिता कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ0 विनय कुमार शुक्ल (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभागाध्यक्ष, रामानुजप्रतापसिंह देवशासकीय स्ना.महा.,बैकुण्ठपुर,कोरिया,छ.ग.)
सुनील कुमार सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अर्मापुर स्ना. महाविद्यालय, कानपुर)
कार्यकारी सम्पादक
डॉ0 सच्चिदानन्द चौबे (एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर, उ.प्र.)
डॉ0 अरूण कुमार मिश्रा (असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मुनीश्वरदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़, उ.प्र.)
मोहम्मद आदिल (असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भवन्स मेहता पी.जी. कालेज, कौशाम्बी, उ.प्र.)
सह सम्पादक
डॉ0 वर्षा सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ0 सुदर्शन चक्रधारी (पूर्व शोध छात्र, प्रा.भा.इ. सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
डॉ0 अजीत कुमार राय (गाजीपुर)
प्रबन्ध सम्पादक
डॉ0 रविशंकर पाण्डेय (अतिथि प्रवक्ता, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.)
डॉ0 रिपुंजय कुमार सिंह (पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
राणा अवद्यूत कुमार (शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
विधि परामर्शदाता
डॉ0 रणजीत सिंह चौहान
अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय

ISSN : 2319-7137
मूल्य : रु0 250.00

सम्पादकीय पता
डॉ0 विकास कुमार
सिविल लाइन, तकिया रोड,
सासाराम, रोहतास (बिहार)
ई-मेल : internationalliteraryquest@gmail.com
मो0 : 09470828492, 9934468661
वेबसाइट- www.internationalliteraryquest.com

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
एस.एन. 14/191, सरायनन्दन, खोजवाँ,
वाराणसी, उ0प्र0, मो0नं0 09451173404, 7705040045
Email: surendrpanday@gmail.com

कम्पोजिंग
सुधीर कुमार, 7408996394
मुद्रक :
राजैरिया ऑफसेट
जगतपुरी, दिल्ली-110093

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित लेखों एवं उद्धरणों का दायित्व स्वयं लेखकों का है। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।

संपादक मण्डल

प्रो0 अनीता सिंह
अंग्रेजी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 रवीन्द्रनाथ सिंह
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 प्रभाकर सिंह
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 एस0 आर0 जयश्री
महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवन्तपुरम्, केरल

प्रो0 बी0 गनेशन
बैंगलोर विश्वविद्यालय, कर्नाटक

डॉ0 मिकी निशिओका
एसो0प्रो0 रिसर्च डिवीजन ऑफ एशियन, लैंग्वेजेज एण्ड कल्चर III रिसर्च इंस्टिच्यूट ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेजेज, ओसाका यूनिवर्सिटी, जापान

प्रो0 कीम उ जो
भारतीय अध्ययन विभाग, हाइकू यूनिवर्सिटी, दक्षिण कोरिया

प्रो0 आरिफ नजीर
हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

डॉ0 सुनीता सिंह
शिक्षा संकाय, ली0 मोयने कॉलेज, सायराक्यूस, न्यूयार्क, अमेरिका

डॉ0 मृत्युंजय सिंह
एसो0 प्रो0, हिन्दी विभाग, एस0पी0 जैन कॉलेज, सासाराम, बिहार

डॉ0 रमेश कुमार
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

डॉ0 सावित्री सिंह
संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास, बिहार

डॉ0 दिग्विजय सिंह
हिन्दी विभाग, के0डी0बी0 डिग्री कॉलेज, दुबहर, बलिया

डॉ0 प्रिया सिंह
राजनीतिशास्त्र विभाग, गुलाब देवी महिला, पी0जी0 कॉलेज, बलिया

डॉ0 राजकुमार उपाध्याय मणि
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

डॉ0 आशुतोष कुमार सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, प्रो. रज्जू सिंह उर्फ रज्जू भैया विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.

डॉ0 विकास कुमार सिंह
असि0 प्रो0, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 देवेन्द्र प्रताप सिंह
प्राचार्य, कूबा पी0जी0 कालेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

डॉ0 सपना भूषण
असि0 प्रो0, हिन्दी विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

श्री राकेश कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

डॉ0 रितु वार्ष्णेय गुप्ता
असि0 प्रो0, हिन्दी विभाग, किरोरीमल कॉलेज. दिल्ली विश्वविद्यालय

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

अनुक्रम

1.	19वीं शताब्दी के सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण में दलित सुधारकों का योगदान **डॉ0 ओंकारनाथ द्विवेदी**	**9-13**
2.	Microfinance and its Challenges in India **MD.Tarique Anwar**	**14-20**
3.	अज्ञेय और उनका रचना परिवेश **डॉ0 अरुण कुमार मिश्र**	**21-25**
4.	आधुनिकता का परिपेक्ष्य : सन्दर्भ स्त्री **रेनू गुप्ता**	**26-29**
5.	ऐ मेरे वतन के लोगो ज़रा याद करो 'सोज़े-वतन' की कहानी डॉ. पी.जी. शशिकला	**30-33**
6.	"संत रैदास की लोक दृष्टि" **डॉ.ऋचा सिंह**	**34-39**
7.	Changing Condition of women in Kumaun Mandal from Pre-Independence to the Present **Professor Girish Ranjan Tewari (HOD),** **Jashoda Bisht (Research scholar)**	**40-47**

8.	'दलित जागरणः दलित विचारकों के स्वर' **यशवन्त सिंह वर्मा**	**48-53**
9.	कोविड–19 एवं नशीले पदार्थों के उपयोग से समाज का पतन **डॉ. लाल सिंह**	**54-58**
10.	ग्रामीण महिला–सशक्तीकरण : एक विमर्श **अजित कुमार भारती**	**59-61**
11.	मध्यकालीन राजस्थान में शिक्षा व्यवस्थाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन **डॉ0 मनोज सिंह यादव**	**62-65**
12.	उत्तर प्रदेश के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की योजना एक अभिनव भविष्योन्मुखी कार्यक्रम **संजय कुमार दुबे**	**66-70**
13.	केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के महाकाव्यों का संक्षिप्त परिचय **डॉ0 प्रीति पाण्डेय**	**71-77**
14.	''हिंदी में आगत स्वनों का व्यतिरेकी विश्लेषण'' (Contrastive analysis of borrowing phones in Hindi) **कपिलदेव कुमार पासवान**	**78-87**
15.	बच्चन सिंह की इतिहास दृष्टि सन्दर्भ 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' **डॉ. मिथिलेश कुमार शुक्ल**	**88-94**
16.	''वर्तमान समय में ऑनलाइन शिक्षा के सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष'' **रीना कुमारी**	**95-99**

17.	शिक्षक–शिक्षा में इण्टर्नशिप की भूमिका एवं उपादेयता **प्रहलाद सिंह यादव**	**100-105**
18.	**डाक बंगला : मानवीय संवेदना को उकेरती 'इरा' की कहानी** कु**.** रश्मि	**106-112**
19.	'घुप्प अंधेरे में रोशनी की तलाश : तमस'' **डॉ. विनय कुमार शुक्ला**	**113-116**
20.	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्येतिहास दृष्टि **डॉ0 आशुतोष कुमार सिंह**	**117-118**
21.	यह भूमि है, उस भक्त की – कवि कालिदास व कश्मीर **डॉ0 भारतेंदु कुमार पाठक**	**119-121**
22.	**रीतिकालीन काव्य में लोक जीवन** (घाघ और भड्डरी के विशेष संदर्भ में) शुभम सिंह	**122-126**
23.	आदिकालीन कवियों के काव्य में अलंकार तत्व : गुरु गोरखनाथ, विद्यापति व चंदबरदाई के विशेष संदर्भ में **डॉ0 भारतेंदु कुमार पाठक**	**127-129**
24.	विश्वविख्यात नेतृत्वकर्ता मोदी की कहां, बदनामी तो हिदुस्तान की जहां, क्यों? भारतीय राष्ट्रवाद व विरोधी राजनीति **लेखक व कवि, प्रोफेसर व डॉ. रोहताश जमदग्नि**	**130-134**

25.	साहित्य में नारी आंदोलनों की भूमिका **डॉ अशोक कुमार**	**135-138**
26.	अटल बिहारी वाजपेयी के शासन–काल में भारतीय विदेश नीति **डॉ0 राजेश कुमार श्रीवास्तव**	**139-141**
27.	इको-टूरिज्म : मानव के पर्यावरणीय दायित्व के संदर्भ में **डॉ. सीमा शुक्ला**	**142-145**
28.	हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श और इसकी प्रासंगिकता **ऋचा सिंह एवं डॉ0 अनुभा पाण्डे**	**146-150**
29.	महाभारत काल में पशु एवं वृक्षों की चिकित्सा **डॉ0 राजेश रंजन**	**151-152**
30.	वेदों में यज्ञ की प्राचीनता **डॉ0 यशवन्त कुमार यादव**	**153-154**
31.	निराला की परवर्ती कविताओं का वस्तुगत सौन्दर्य **डॉ0 सुनील कुमार दुबे**	**155-157**
32.	पूर्व मध्यकालीन चन्देल राजवंश की मुद्रा व्यवस्था : एक विश्लेषण **राजेन्द्र प्रसाद मौर्य**	**158-161**
33.	Farugh-e- Urdu Aur Urdu Ki Mauzuda Surate Haal- Ek Jaiza Dr. Zubaida Naz	**162-164**

34.	रामदरश मिश्र की उपन्यासों की प्रासंगिकता **डॉ0 विकास कुमार**	**165-173**
35.	**छायावाद: एक नई दृष्टि** डॉ. लोपामुद्रा बेहेरा	**174-181**
36.	भारतीय गाँव : आजादी के पहले एवं आजादी के बाद **प्रो0 अशोक सिंह**	**182-186**
37.	श्रीलाल शुक्ल एवं हिन्दी उपन्यास **डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय**	**187-192**

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

19वीं शताब्दी के सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण में दलित सुधारकों का योगदान

डॉ0 ओंकारनाथ द्विवेदी
प्राचार्य
महात्मा गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
फतेहपुर, उ0प्र0

1857 के विद्रोह के उपरान्त भारतीय इतिहास में कतिपय राजनीतिक नायकों ने राजनीतिक आन्दोलन का श्री गणेश किया जिसके परिणाम स्वरूप एक सशक्त राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ और 1857 के कुछ ही वर्षों के बाद भारत में राष्ट्रीयता का प्रवाह दिखायी देने लगा। भारत में राजनीतिक जागरण के सभी लक्षण प्रकट होने लगे, लेकिन राजनीतिक जागृति के पूर्व हमारे देश में एक सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण हुआ। जिसने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य पृष्ठभूमि तैयार किया। वस्तुतः जिन कारणों ने भारत में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय जागृति की भावना को जन्म दिया, उनमें सबसे महत्वपूर्ण एवं अग्रगण्य सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण था।

भारत में आधुनिक समाजवाद के उदय का प्रतीक सर्वप्रथम अरविन्द के उन सात लेखों में परिलक्षित होता है, जिन्हें 1893 में उन्होंने इन्द्रप्रकाश नामक पत्र में 'पुराने के बदले नवीन दीप' (New Lamp for the old) शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित कराया था। इन लेखों में अरविन्द ने कांग्रेस की मध्यवर्गीय मनोवृत्ति की आलोचना करते हुए दलितों की दशा को सुधारने पर जोर दिया था। अतीत का इतिहास साक्षी है कि दलित चेतना के वाहक दलित के अधिक गैर दलित व्यक्ति थे। पेरियार, रामास्वामी, ज्योतिबा फूल आदि का नाम समीचीन प्रतीत होता है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने जितनी बड़ी संख्या में भाग लिया, उससे सिद्ध होता है कि समय आने पर महिलाएं स्नेह की जगह विद्रोह की विचारधारा से राष्ट्रीय अखण्डता को अक्षुण्ण बनाने में अपना सर्वस्व समर्पित कर सकती है, सरोजनी नायडू, स्वरूपरानी नेहरू, विजय लक्ष्मी पण्डित, अरूणा, आसफ अली, भगिनी निवेदिता, सुचेता कृपलानी, राजकुमारी अमृत कौर, आजाद हिन्द फौज की नारी संगठन की कैप्टन लक्ष्मी एवं क्रांतिकारियों को सहयोग देने वाली अनेक महिलाएं भारत में अवतरित हुई, जिन्होंने राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर दिया।

19वीं सदी में दलितों के सुधार हेतु अनेक आन्दोलन हुए। महाराष्ट्र में सत्य शोधक समाज और केरल में श्रीनारायण धर्म परिपालन सभा ने सुधार का काम शुरू हुआ। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखण्ड आदि राज्यों में सुधार हेतु उच्चस्तर पर आन्दोलन हुए। झारखण्ड का कोल विद्रोह, भूमिज विद्रोह, बुद्ध भगत का विद्रोह हो आदि इसके साथ ही कोल, भील मुण्डा संथाल का जनजातीय आन्दोलन राजनीतिक चेतना का उत्कृष्ट निदर्शन है। अहमदिया और अलीगढ़ आन्दोलन, सिंह सभा और रहनुमाई मजदेयासान सभा क्रमशः मुसलमानों, सिखों व पारसियों के बीच उभरी सुधारवादी शक्तियाँ रही। हालांकि ये सभी संगठन और आन्दोलन सिर्फ अपने–अपने धर्म से ही जुड़े थे और क्षेत्र–विशेष

तक ही सीमित रहे, लेकिन इन सबमें एक विशेष समानता यह रही कि वे सभी आन्दोलन क्षेत्रीय और सामान्य चेतना की धार्मिक अभिव्यक्ति थे।

इन आन्दोलनों का प्रबल समर्थन धार्मिक सुधारों की तरफ ही था, फिर भी इनमें से किसी भी आन्दोलन का चरित्र पूरी तरह धार्मिक नहीं था। इनकी अंतः प्रेरणा थी मानववाद। अक्षय कुमार और विद्यासागर संशयवादी थे, जिन्होंने इस तरह के प्रश्नों पर किसी किस्म की चर्चा से साफ इनकार कर दिया था। ईश्वर है या नहीं, यह पूछे जाने पर विद्यासागर का जवाब था कि– ''ईश्वर के बारे में सोचने के लिए मेरे पास वक्त नहीं है क्योंकि अभी तो इस धरती पर ही बहुत काम किया जाना है।'' बंकिमचन्द्र और विवेकानन्द ने इलौकिक उद्देश्यों के लिए धर्म के इस्तेमाल पर जोर दिया और कहा कि धर्म को मनुष्य की भौतिक समस्याओं का समाधान व्यक्त करना चाहिए। विवेकानन्द ने एक बार कहा था– ''तुम्हारी भक्ति और मुक्ति की परवाह किसे है, कौन इसकी परवाह करता है कि तुम्हारे धर्म ग्रन्थ क्या कहते हैं ? मैं बड़ी खुशी से एक हजार बार नरक जाने को तैयार हूँ, अगर इससे मैं अपने देशवासियों को ऊँचा उठा सकूँ।''

19वीं सदी का भारतीय समाज पूरी तरह धार्मिक अंधविश्वासों के जाल में जकड़ा हुआ था। इसके चलते सामाजिक सुधार की कोई गुंजाइश नहीं थी। मैक्स वेबर ने लिखा है कि हिन्दू धर्म दरअसल 'जादू, अंधविश्वास और अध्यात्मवाद की खिचड़ी' बनकर रह गया था। ईश्वर की पूजा की जगह पशु–बलि और शारीरिक यातना जैसी जघन्य प्रथाओं का सिलसिला शुरू हो गया था। जनमानस पर पुजारियों और धर्माचार्यों का जबरदस्त असर था। मूर्तिपूजा और बहु–देवोपासना ने पुजारियों और धर्माचार्यों के इस वर्चस्व को कायम रखने में और भी मदद की। सारे आध्यात्मिक ज्ञान का वीणा उन्होंने ही लिया था और धार्मिक रिवाजों व नियमों की वे मनमाने ढंग से व्याख्या करते थे।

प्रख्यात समाज सुधारक राजा राममोहन राय के अनुसार, इन पुजारियों ने धर्म को धोखाधड़ी और पाखण्ड के तंत्र में बदल दिया था, धर्मभीरू लोग अदृश्य और सर्वशक्तिमान ईश्वर को तो सर्वोपरि मानते ही थे, इन पुजारियों की इच्छा, आज्ञा और मर्जी को भी ईश्वरीय आदेश की तरह ही सिर झुकाकर स्वीकार करते थे। ऐसा कोई भी कार्य नहीं था, जिसे धर्म का नाम लेकर लोगों से कराया जा सके। वस्तुस्थिति यह थी कि पुजारियों, धर्माचार्यों की यौन तुष्टि के लिए महिलाएं खुद अपने आपको समर्पित कर देती थी।

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा का विरोध किया। उन्होंने कहा कि 'किसी भी शास्त्र के अनुसार यह हत्या' ही है। यदि कोई महिला सती होने से बच भी जाती थी या बचा ली जाती थी तो जीवन भी उसे वैधव्य भोगना पड़ता था– अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा और मुसीबतों की पहाड़ सी जिन्दगी।

उस समय जाति प्रथा कई तरह से सामाजिक–आर्थिक शोषण का हथियार बनी हुई थी। संस्कार और धर्म पर आधारित वर्ण–व्यवस्था समजा को उच्च और निम्न वर्गों में विभाजित करने और लोगों के अलग–अलग सामाजिक स्थिति को यथावत रखने के लिए पोषित की जा रही थी। इसने समाज को इतने खण्डों में बांट रखा था कि उसमें गतिशीलता ही नहीं रह गई थी, समाज जैसे जड़ हो गया था। इसकी सबसे ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण बात थी, छुआछूत, जिसके चलते 'शूद्र' को व्यक्ति की स्थिति प्राप्त नहीं थी। इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के सामाजिक नियंत्रण, अंधविश्वास, धार्मिक कट्टरता, अंध–भाग्यवाद और अधिकार जैसे कारक भी थे, जिन्होंने समाज के कई स्तरों पर विभाजित कर रखा था और जड़ बना रखा था।

सुधारवादी आंदोलनों ने इन विषयों को पतनोन्मुख समाज के लक्षण की संज्ञा दी और इनका विरोध शुरू किया। इन आंदोलनों ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू करने के लिए प्रथमतः सामाजिक वातावरण तैयार करने का कार्य हाथ में लिया। इसके लिए सुधारवादियों ने लोगों के समक्ष सुनहरे अतीत का निदर्शन भी प्रस्तुत किया, जब इस तरह की बुराइयां समाज में थी ही नहीं।

19वीं सदी में भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में सुधारों का प्रशस्त मार्ग राजा राममोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना के साथ प्रारम्भ हुआ। इस शृंखला को केशचन्द्र सेन, हेनरी विलियन डेरोजियो, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, शिवनाथ शास्त्री, सैय्यद अहमद खाँ, एनीबेसेन्ट, मुहम्मद इकबाल, शिवदयाल साहब, अरविन्द घोष, बाबा साहेब अम्बेडकर, गाँधी, लोहिया, जे0पी0 नारायण आदि सुधारकों ने अपने चिन्तन में दलितों के ऊपर मौलिकता प्रदान की है।

19वीं सदी के इन समाज सुधार आंदोलनों को भारतीय पुनर्जागरण की संज्ञा देना अनुपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि इनका दृष्टिकोण छद्म वैज्ञानिकता पर आधारित था तथा इनमें मानवतावाद का व्यवाहारिक पक्ष अत्यंत संकीर्ण था, साथ ही भौगोलिक खोज, वैज्ञानिक अविष्कार का व साहित्य की प्रगति का स्पष्ट अभाव इनमें दृष्टिगोचर होता है जो पुनर्जागरण के मूलभूत तत्व थे।

इन आन्दोलनों ने कुछ मूलभूत परिवर्तनों की शुरूआत भले ही की हो, वरन् देश के आधुनिकीकरण में वस्तुतः असफल ही रहे। प्रारम्भ में जिसे आधुनिकीकरण माना गया था, वह पश्चिमीकरण से अधिक कुछ भी नहीं था। इतना ही नहीं, बल्कि पश्चिमी संस्कृति को आरोपित करने के प्रयास भी किए गए थे। आधुनिकता का मूलाधार विवेक, ज्ञान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद आदि इसमें अनुपस्थित था। फिर भारतीय परिप्रेक्ष्य में आधुनिकीकरण देशी भाषा एवं देशी साधनों के माध्यम से ही संभव था जैसा कि बाद के दौर में चीन व जापान में देखा भी गया किन्तु भारत द्वारा पश्चिमी मॉडल को अपनाए जाने से अपेक्षित परिणाम नहीं निकले।

इस तरह पश्चिम के प्रभाव से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अवरूद्ध ही हुई। पश्चिमी उदारवाद के व्यावहारिक समर्थन का अन्तर्निहित परिणाम पूँजीवाद के पोषण व शोषण के समर्थन के रूप में उभरकर सामने आया। सुधारकों के प्रयत्न औपनिवेशिक संरचना में एक तरह से सामंजस्य स्थापित करने तक ही सीमित रहे।

इन आंदोलनों का वास्तविक स्वरूप मध्यमवर्गीय था, जिससे सामान्य व्यक्ति तक इनकी पहुँच सुनिश्चित नहीं की जा सकी। बौद्धिक वर्ग की वैचारिक सूक्ष्मता भी इसका एक कारण बना।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि ये आन्दोलन धर्म से ऊपर नहीं उठ सके। धार्मिक विश्वासों व प्रतीकों का इन्होंने सहारा लिया। परिणाम यह हुआ कि इनके कार्यक्षेत्र विभाजित होते गए। फिर इनके द्वारा विषय भी अलग–अलग उठाए जाते थे। इस तरह इनमें आन्तरिक द्वन्द्व व अन्तर्विरोध व्याप्त था। सबसे बड़ी बात तो यह कि कई सुधारक स्वयं ही रूढ़िमुक्त नहीं हो पाए थे। केशवचन्द्र सेन का उदाहरण इस संदर्भ में उल्लेखनीय है जिन्होंने सामाजिक तौर पर बाल–विवाह विरोधी होते हुए भी अपनी अल्पवयस्क पुत्री का विवाह कूच बिहार के महाराज से कर दिया। सैय्यद अहमद खाँ तथा इकबाल के प्रारम्भिक राष्ट्रवादी विचारों तथा बाद के पृथकतावादी विचारों में भी यह अन्तर्विरोध और धार्मिक कट्टता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

सुधारकों द्वारा अतीत से प्रेरणा ग्रहण करना आंदोलन की एक अन्य कमी थी जो गैर–वैज्ञानिक होने के साथ–साथ गैर–ऐतिहासिक भी थी। स्वामी दयानन्द द्वारा वेदों की ओर लौटने के उद्घोष का निहितार्थ यह था कि वेदोत्तर गत तीन हजार वर्षों की भारतीय सभ्यता की उपलब्धियाँ शून्य थीं।

वैदिक काल के उस स्वर्ण युग में चूँकि निम्न वर्ग के लोगों की भूमिका नगण्य अथवा अस्पष्ट थी, इसलिए अतीत के गौरववान में यह वर्ग शामिल नहीं था। इससे वर्गीय भेदभाव का विस्तार हुआ। मध्ययुग की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ इसमें शामिल न होने के कारण मुसलमान भी इससे विरत रहे और अपनी जाति के अन्तर्गत ही सुधारों की प्रक्रिया शुरू की, जिसका क्षेत्र भी संकीर्ण रहा। यही संकीर्णता व कट्टरता आगे चलकर साम्प्रदायिकता के उभार की एक वजह बनी। हिन्दुओं की ही बात करें तो उनके ही धार्मिक अनुभव वैदिक धर्म को काफी पीछे छोड़ चुके थे।

वैदिक धर्म के कई तत्वों पर गीता द्वारा निर्मम प्रहार किया जा चुका था। इसलिए सभी सवर्ग व उच्च वर्गीय हिन्दुओं का समर्थन भी इसे नहीं मिल पाया। वेदों में वर्णित जीवन पद्धति चरवाहा समाज के लिए आदर्श भले ही रहा हो, किन्तु 19वीं–20वीं सदी के लिए कत्तई उपयुक्त नहीं था। सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु धर्म अब बहुत उपयुक्त माध्यम नहीं रह गया था।

अतीत में स्वर्णयुग की तलाश ने मिथ्याभिमान एवं आत्मतुष्टि की भावना को बल प्रदान किया जो आधुनिक विज्ञान को पूर्णतया स्वीकार करने में तो बाधक सिद्ध हुआ ही, वर्तमान को सुधारने के प्रयास में भी इसने रोड़े अटकाए। मध्यकाल को मूलतः अवनति के युग के रूप में देखना गैर–ऐतिहासिक होने के साथ–साथ सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से भी हानिकारक सिद्ध हुआ। इससे दो पृथक जनगणों की धारणा को जन्म देने की प्रवृत्ति उभरी। ऐसे में राष्ट्रीय चेतना के साथ साम्प्रदायिक चेतना ने भी जन्म लिया, जिसके दुष्परिणाम आज भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

इस तरह 19वीं सदी के समाज सुधार आन्दोलन अपनी संकीर्णता, धर्म आधारित दृष्टिकोण, सैद्धान्तिक अन्तर्विरोध एवं ऐतिहासिक संदर्भ में सामाजिक पृष्ठभूमि की सही समझ के अभाव के चलते अपने उद्देश्यों में अपेक्षा के अनुरूप सफल नहीं हो पाए।

औपनिवेशिक पृष्ठभूमि की भी अपनी सीमाएँ थीं, जिनका आन्दोलन के स्वरूप और कार्यप्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव अनिवार्यतः पड़ना ही था। राजनीतिक व आर्थिक दासता की बेड़ियों में जकड़े रहकर सामाजिक सुधार की बात प्रवंचना पूर्ण थी। ऐसे में यदि गुंजाइश थी भी तो केवल सीमित उदारवादी सुधारों की ही सामाजिक या सांस्कृतिक क्रान्ति की नहीं।

आन्दोलन के उदारवादी चरित्र के कारण ही पश्चिम के उदारवादी तत्व इनसे समुचित सामंजस्य स्थापित किये और अंग्रेजों द्वारा इनका अपने हित में उपयोग किया जाना सम्भव हो सका। इन सबसे एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हुआ जिसने ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध की भावना को अभिव्यक्त होने से रोके रखा। सम्मोहन के इस वातावरण में देश की वास्तविक सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं को ठीक से समझ पाना कठिन हो गया।

किन्तु इन समस्त बातों का यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि इन समाज सुधार आन्दोलनों की कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि थी ही नहीं, निःसंदेह पश्चिम के ज्ञान–विज्ञान व विचारों के सम्पर्क से भारतीयों की सोच व दृष्टिकोण में मूलभूत परिवर्तन दिखाई दिए।

इस सम्पर्क के प्रति भारतीयों की बहुमुखी प्रतिक्रिया ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर अनेक दूरगामी परिणाम उत्पन्न किए। समाज की तत्कालीन जड़ता खत्म हुई और प्रगति का संदेश वहाँ पहुँचा। धार्मिक व सामाजिक बुराइयों का अन्त कर समानता, स्वतंत्रता एवं मानवतावादी मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न शुरू हुए। विशेषकर अछूतोद्धार, नारियों की स्थिति में सुधार एवं शिक्षा के प्रसार की दिशा में सराहनीय कार्य किए गए।

आन्दोलन की वजह से शेष विश्व के साथ भारत का अलगाव खत्म हुआ। धार्मिक व सामाजिक सुधारों के आपसी जुड़ाव से राजनीतिक सुधारों की आवश्यकता दीर्घकालीन समय से महसूस की जाने लगी। फलस्वरूप आने वाले वर्षों में राष्ट्रीयता का उभार सम्भव हो पाया।

सबसे बड़ी उपलब्धि आन्दोलन की यह रही कि समानता, स्वतंत्रता एवं जागरण का संदेश इसने एक ऐसे समय पर दिया जब सम्पूर्ण देश परतन्त्रता की बेड़ियों में आबद्ध था और जनता अंधविश्वास, रूढ़िवादिता व अज्ञान के अन्धकार में भटक रही थी।

वैसे भी उपनिवेशों में राष्ट्रीय जागरण का उभार सामान्य रूप से विदेशी शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में ही देखा जाता रहा है। भारत भी इसका अपवाद नहीं था। समाज सुधार आन्दोलन एवं सांस्कृतिक जागरण ने इस प्रतिक्रिया को एक सशक्त बौद्धिक आधार और मनोवैज्ञानिक प्रेरणा प्रदान की। इस तरह देश के आधुनिकीकरण में ये सुधार आन्दोलन भले सफल न रहे हों, किन्तु देश को पराधीन की बेड़ियों से छुटकारा दिलाने में इन्होंने सहायक की भूमिका अवश्य ही निभाई।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. ई0एम0एस0 नंबूदिरिपाद, इंद्यचरित्रथिलेक्कु ओरू एथिनोट्स (मलयालम) में, चिंता पब्लिशर्स, त्रिवेंद्रम, 1975
2. ऑन दि फर्स्ट इंडियन बार ऑफ इंडिपेंडस में अध्याय 'दि ब्रिटिश रूल इन इंडिया', 1857–59, पृ0 15
3. ताराचन्द, हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली पब्लिकेशन डिवीजन, 1970, खण्ड–1, पृ0 21
4. राजय्यन, साउफ इंडियन रिबेलियन : फर्स्ट बार आफ इंडिपेंडस, 1971, पृ0 20
5. सुरेन्द्रनाथ सेन, एटिन फिफ्टी सेवन, नई दिल्ली, 1957
6. आर0सी0 मजूमदार, दि सेपॉय मुटिनी एंड दि रिवोल्ट ऑफ 1857, कलकत्ता, 1957
7. ए0एम0 जैदी और ए0जी0 जैदी, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस, खण्ड–8, नई दिल्ली, एस चांद एंड कम्पनी, 1980, पृ0 607
8. जी0 अधिकारी, डाक्यूमेंट्स ऑफ दि हिस्ट्री ऑफ दि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1971, पृ0 341
9. के0एम0 सिंह, कोलोनियम ट्रासफॉर्मेशन ऑफ दि ट्राइबल सोसायटी इन मिडिल इंडिया
10. स्अीफेन परव्स कृत रिबेलियस प्रोफेट्स : ए स्टडी ऑफ मेसायनिक मूवमेंट्स इन इंडियन रिलिजंस, बम्बई, 1965

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

Microfinance and its Challenges in India

MD.Tarique Anwar

Research Scholar in Commerce
B.R.A.Bihar University, Muzaffarpur

ABSTRACT

Microfinance is a source of finance to the poor segments of society. It includes loans, savings, credit, insurance services, money transfer and other basicfinancial services to the economically weaker section of society. It helps them in acquiring finance to expand their tiny businesses andother financial needs. Microfianances also helps in improving a contribution of women in economic activities by providing an economical resources to investfor eliminating poverty in India. It also provides credit and other financial services of small amount to the economically disadvantaged segment of society in urban as well as rural areas. Microfinance institutions include N.G.Os, Credit Unions, N.B.F.Cs. Cooperatives and banks. In India, the future of microfinance is largelydepending upon the self-help groups (S.H.G.) . microfinance is a way to promote economic development, employment and growth throughput the support of micro-entrepreneurs and small businesses, for others it is a way for the poor to manage their finances more effectively and take advantage of economic opportunities while managing the risks and also to fill up the

gap created by conventional financial institutions We can conclude that weaker sector of Indian economy has indirect need of money lending methods to earn credits.

So microfinance programs should be an important area of focus to provide these people the chance to improve their standard of living via means of economical growth.

Keywords: microfinance, money lending, rural development, financial planning Microfinance, Self Help Group, NABARD, Microfinance Institutes etc.

1.INTRODUCTION

Microfinance is one of the most visible innovations in anti-poverty policy in the last half-century, and in three decades it has grown radically. The most important benefit

of microfinance in India is that it helps long-term financial independence in these poverty-stricken areas. Microfinance help sustained impact by educating recipients on how to create their own businesses and how to properly manage and grow their money. There is a rapid growth in the strength of microfinance in India and several other countries.

The weaker section of Indian economy uses their resources to develope Their businesses and theirhomes slowly over time. Financial services enable the poor to take advantage in this Initiative, acceleratethe construction of revenue Undoubtedly it has been successful in bringing formal financial services to the poor. People believe that it has provided money to the poor families and it has the strength to increase investments in health, education and empowerment of women. Microfinance institutions (MFIs) have created a massive social infrastructure uniquely positioned to reach millions of clients on a regular basis.As a result National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD) was set up with theobjective of framing appropriate policy for rural credit,provision of technical assistance backed liquiditysupport to banks, supervision of rural credit institutionsand other development initiatives. So it wasexperienced that existing policies were inefficient in the ways of procedures, deposits and loan products. Thepoor needed better access to all these services andalso alla these products is to borrowfrom informalmarket at an interest much higher than amarket rates.Community banks, NGOs and grass root savingsa andcredit groups arounda the world have shown that thesemicro enterprisea loans can be profitable for borrowersand for the lenders, making microfinance one of themost effective poverty reducing strategies for achievement of development and even collapse of essential ecosystem. The growing awareness of the challenges to traditional development thinking has led to the increasing acceptance of a new concept of development i.e. .sustainable development

2.OBJECTIVES OF MICROFINANCE

The organizations working to promote microfinance institutions in differentparts of the world determine various objectives to microfinance. The important amongthem are listed as follows.

1. Promote socio-economic development at the grass root level through community-based approach
1. Develop and strengthen people’s groups called Self-Help Groups and facilitatesustainable development through them
2. Provide livelihood training to disadvantaged population.
3. Promote activities which have community participation and sharing ofresponsibilities
4. Promote programs for the disabled

5. Empower and mainstream women
6. Promote sustainable agriculture and ecologically sound management of naturalresources
7. Organize and coordinate networking of grass root level organization
8. Get benefits by reducing expenditure and making use of local resources asinputs for livelihood activities
9. Increase the number of wage days and income at household level

3.HISTORY OF MICROFINANCE

In the late 1970s the thought of microfinance had evolved. Although, microfinance have a long history from the start of the twentieth centuryIndia's GDP is among top 20 economies of theworld, but around half these people are living under poverty line. Hence microfinance is very significant to Indian economy. In early 1970s of Indian subcontinent, mainly in India and Bangladesh, Microfinance came into existence by the initiatives of microfinance pioneer Muhammad Yunus of Bangladesh. Microfinance in India came into strength with the formation of ShriMahila "SEWA"Sahkari Bank, (Self Employed Women's Association) in the state of Gujrat with the motive of providing financial help to poor women employed in the unorganized sector in Ahmadabad. With globalization and Liberalization of the economy, opportunities for the unskilled people are not improving with sufficient rate as compared to the rest of the economy. So in this context micro financial institutions are significant and gaining its role in Indian economy.

The existing Informal Financial sourcesThe informal financial sources generally include funds available from family sources or local

money lenders. The local money lenders charge exorbitant rates, generally ranging from 36% to 60% interest due to their monopoly in the absence of any other source of credit for non-conventional needs. Chit Funds and Bishis are other forms of credit system operated by groups of people for their mutual benefit which however have theown limitations.There are several legal forms of MFIs. However, firm data regarding thenumber of MFIs operating under different forms is not available. Therefore it is nouniformity in the number of MFIs we got from different sources. Rangarajan (2008)estimated that there are about 1,000 NGO-MFIs and more than 20 Company MFIs.Further, in Andhra Pradesh, nearly 30,000 cooperative organizations are engaged in105microfinance activities. However, the companies MFIs are major players accountingfor over 80% of the microfinance loan portfolio.Commercial and cooperative banks, SIDBI etc. get involved in microfinance on a large scale, as given by National Banka for Agriculture and Rural Development (NABARD).Most of the NGOs like SHARAN in Delhi, FEDERATION OF THRIFT AND CREDIT ASSOCIATION (FTCA) in Hyderabad or SPARCin Bombay have adopted the first

model where they initiate the groups and provide the necessarymanagement support. Others like SEWA inAhmedabad or BARODA CITIZEN's COUNCIL in Baroda pertain to the second model.The experience of these informal intermediariesshows that although the savings of group members,small in nature do not attract high returns, it is stillpracticed due to security reasons and for getting loansat lower rates compared to that available from moneylenders.

4.MICRO FINANCE MODELS IN INDIA

A wide range of microfinance models are working in India. Experts opinion isthat India host the maximum number of microfinance models. Each model hassucceeded in their respective fields. The main reason behind the existence of thesemodels in India may be due to geographical size of the country, a wide range of socialand cultural groups, the existence of different economic classes and a strong NGOmovement. Micro Finance Institutions in India have adopted various traditional aswell as innovative approaches for increasing the credit flow to the organized sector.They can be categorized into six broad types.

1) Grameen model

2) SHG model

3) Federated SHG model

4) Cooperative Model

5) ROSCA s

6) Micro-finance companies (MFCs) social service.

5.REGULATORY STRUCTURE OF MICROFINANCE IN INDIA

As we mentioned earlier India has no uniform structured law to regulatemicrofinance institutions. Different forms of organisations are depends on various

existing regulatory frameworks for the functioning. All microfinance institutions aimsocial and economic upliftment of beneficiaries. But there are different forms ofinstitutions are functioning to attain the same. They are broadly classified in to nonprofit institutions, mutual benefit institutions and for profit institutions10. The goal ofnon profit institutions are only the financial and social empowerment of thebeneficiary class. Such ventures are registering in different formats including associety under societies registration act of 1860, Charitable trusts under trust act and assection 25 company. Mutual benefit institutions are working only for the benefit of its members. Those are registered under co operative which can be just a savings andcredit co operative or be further licensed as co operative bank, mutual benefit trust,under chitties act and mutual benefit section 620 nidhi companies. For profit

entitymay be registered as association of persons, investment trusts and company which isfurther either an NBFC or a bank.

6. CHALLENGES OF MICROFINANCE IN INDIA

Financial illiteracy: One the foremost challenge in India towards the expansion of the microfinance sector i.e. illiteracy of the people. This makes it tough in creating awareness of microfinance and even harder to serve them as microfinance clients.

Client Retention: client retention is a problem that makes a haul in growing the MFIs. There is concerning 28th client retention within the MFIs.

Loan Default: Loan default is a problem that makes a haul in growth and enlargement of the organization because around 73 loan default is identified in MFIs.

Language Barrier: language barrier makes communication with the clients (verbal and written) is a difficulty that makes a haul in growth and enlargement of the organization because around 54 language barrier has been identified in MFIs.

Late Payments: Late payments are a problem that makes a haul in growth and enlargement of the organization because late payments are around 70th in MFIs.

Geographic Factors: The Geographic factors create it troublesome to communicate with clients of far-flung areas that produce a haul in growth and enlargement of the organization. MFIs are primarily aimed to facilitate the BPL population of the country but due to lack of infrastructure in those areas it becomes tough to succeed in them.

Debt Management: clients are uneducated regarding debt management. 70th of the clients in MFIs are unaware of the very fact that how to manage their debt.

Negligence of Urban Poor: it has been noted that MFIs pay more attention to rural areas and mostly neglect the urban poor. Out of more than 800 MFIs across India, only six are presently focusing their attention on the urban poor.

High Interest Rate: MFIs are charging very high interest which the poor find troublesome to pay.

7.ACTIONS TO OVERCOME CHALLENGES

The following are some actions to overcome the challenges faced by MFIs in providing microfinance services to possess a sustainable development.

Transparency of Interest Rates

As it has been observed that, MFIs are using different patterns of charging interest rates and some are charging extra charges and interest free deposits (a part of the loan amount is kept as deposit on which no interest is paid). All this make the pricing very confusing and therefore the borrower feels incompetent in terms of bargaining power.

Therefore a common follow for charging interest ought to be followed by all MFIs so that it makes

Proper Regulation: When the microfinance was in its emergent stage and individual institutions were liberal to bring in innovative operational models, the requirement for a regulatory atmosphere was not an enormous concern. However, as the sector completes nearly two decades of age with a high growth trajectory, an enabling regulatory atmosphere is required that protects interest of stakeholders as well as promotes growth.

Encourages Rural Penetration: It has been seen that rather than reducing the initial price, MFIs are opening their branches in places that already have a few MFIs operating. Encouraging MFIs for opening new branches in areas of low microfinance penetration by providing financial help will increase the outreach of the microfinance within the state and check multiple lending. This will also increase rural penetration of microfinance within the state.

Field supervision: In addition to proper regulation of the microfinance sector, field visits can be adopted as a medium for monitoring the conditions on ground and initiating corrective action if required. This will keep a watch on the performance of ground employees of various MFIs and their recovery practices. This will also encourage MFIs to abide by proper code of conduct and work more efficiently.

However, the problem of feasibility and cost involved in physical monitoring of this huge sector remains a problem in this regard.

Complete range of products:MFIs should give complete range of products including credit, savings, remittance, financial recommendation and also non-financial services like training and support. As MFIs are acting as a substitute to banks in areas where individuals don't have access to banks, providing an entire range of products will enable the poor to avail all services.

8. CONCLUSION

In conclusion, I want to say that it has been an interesting endeavour to analysis on the Microfinance industry. Microfinance uses as a tool for eliminating poorness in Rerepublic of India and other developing nations. Microfinance evolutionary growth has given an excellent chance to the rural people to achieve affordable economic, social and cultural empowerment, leading to higher living standard and quality of life. There is no doubt that this industry has nice potential within the future. If the plans for microfinance are executed then Rerepublic of India will definitely have new dimension to that. It will increase India's standard and build it one of the powerful nations of the world economically. The plans for microfinance if implemented will

offer an ongoing financial stability and sustenance for the poor in both the rural and urban area.

REFERENCES

Chakrabarti, Rajesh (2004) ―The Indian microfinance experience –Accomplishment and Challenges Murlidhar K 2004 Regulation of MFIs.

RBI (2011) ―Report on trend and progress of Banking in India 2010-11‖ June 30, 2011, Annual Report submitted to Government of India by Reserve Bank of India.

NABARD (2011), ―Status of microfinance in India 2010-2011‖ Retrieved April 20, 2012, Annual Report of National Bank for Agriculture and Rural Development.

Bhatia, A., Malik, D., & Sindhi, Microfinance in India and its impact on Poverty

Ghose, Rajarshi(2018) ―Microfinance in India :A critique‖.

Mahanta, Padamlochan, ―Status of microfinance in India- A review‖, International Journal of Marketing, Financial Services & Management Research, ISSN 2277 3622(Vol.1 Issue 11), November 2012.

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

अज्ञेय और उनका रचना परिवेश

डॉ0 अरुण कुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
एम.डी.पी.जी. कॉलेज प्रतापगढ़
सम्बद्ध– प्रो राजेंद्र सिंहउर्फ़ रज्जू भैय्या विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सृष्टि के विकास में जैविक और अजैविक दोनों घटकों का योगदान रहा है! जिस प्रकार सृष्टि के विकास में क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर पांच तत्वों का योगदान होता है, और पाँचों तत्व अलग–अलग होने के बावजूद पंचभूत बनकर उसे समृद्ध करते हैं !उसी प्रकार आसपास के परिवेश से भी हम किसी रचना की समृद्धता और कवि की विशिष्टता को उद्घाटित पाते हैं। परिवेश का शाब्दिक अर्थ होता है श्वातावरण, श्माहौल। जिस वातावरण में निवास किया जाता है अथवा रहा जाता है, उसे परिवेश कहते हैं! इसे हम लेखक के चारों ओर फैला हुआ दिक् और काल जो उसकी समस्त जीवन पद्धति को प्रभावित करता है या नियंत्रित करता है उसे परिवेश नाम दे सकते हैं। थोड़ा और आगे बढ़े तो कह सकते हैं कि, अतीत की समस्त उपलब्धियाँ, संस्कृति, मूल्य, परंपरा, इतिहास आदि इसके अंतर्गत आ जाते हैं। यदि दर्शन के शब्द में दिक् शब्द का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि दिक् या देश में आज के लेखक पर एक बहुत बड़े दिक् का दबाव हो रहा है। आपने ज्ञान को जन्म दिया ज्ञान ने विज्ञान को जन्म दिया और विज्ञान ने भौतिकवाद को जन्म दिया और भौतिकवाद की प्रवृत्ति ने अलगाववाद को जन्म दिया।

विज्ञान ने दुनिया को बहुत छोटा, लघु आकार दे दिया! अब किसी लेखक पर प्राचीन काल की तरह एक छोटे जनपद या अधिक से अधिक राज्य या देश का प्रभाव नहीं पड़ता। अब तो सारी दुनिया, अंतरिक्ष का एक अंश भी उसके परिवेश का अंग बन चुका है। उसकी चेतना को प्रभावित करने लगा है! दुनिया के किसी कोने में कोई घटना घटती है और रेडियो तथा समाचार पत्रों के द्वारा तुरंत वह खबर चारों ओर फैल जाती है। मानव जब अणु बम या परमाणु बम का भूमिगत विस्फोट करता है, तो उसका कम्पन्न धरती के एक बड़े भू–भाग तक महसूस किया जाता है! इसी तरह काल का वर्तमान क्षण, यही हमारा परिवेश नहीं है; अपितु हमारा सारा अतीत और हमारी सारी परंपरा, हमारे वर्तमान पर छाए हुए हैं। यही हमारे परिवेश के अंग बन गए हैं। अज्ञेय के संदर्भ में भी इस बात का बोध किया जा सकता है। अज्ञेय संसार और इससे भी आगे बढ़कर सारे ब्रह्मांड को अनंत काल तक लेखक के चारों ओर परिवेशगत मानते हैं। उनका कहना है कि–''परिवेश मेरे लिए देश काल का सतत परिवर्तनशील संबंध है– बल्कि उस संबंध का भी वह रूप है जो मेरी चेतना को छूता है; क्योंकि; निस्संदेह ऐसा भी बहुत कुछ हो रहा होगा, हो रहा है। जो मेरी चेतना से परे है, उसे मैं अपना परिवेश करने का दम कैसे भरूँ ? जब जहाँ वह मेरी चेतना को छुएगा, चाहे उसके बढ़ते हुए दबाव के कारण तब और वहाँ वह मेरा परिवेश हो जाएगा। आज की बड़ी दुनिया में मेरा परिवेश स्थितशील नहीं है! वह सतत चलनशील है। सभी संबंध भी गतिशील है। उसका जो रूप मेरी चेतना को छूता है वह छूने–छूने में बदलता जाता है... मेरा जो परिवेश है, वह एक असंतुलन से दूसरे असंतुलन तक का है।''[1]

अज्ञेय की विकास यात्रा 1911 से 1987 ई. रही है। इस भौतिक संसार में अज्ञेय 76 वर्ष 27 दिन के लिए आए थे। हिंदी रचना संसार में द्विवेदी युग से लेकर समकालीन कविता तक की उनकी काव्य यात्रा रही। जहाँ द्विवेदी युग के दरम्यान उनका जन्म होता है, वही समकालीन कविता के दरम्यान उन्होंने इस संसार से विदा लिया। वैश्विक दृष्टि से इनके जन्म वर्ष को प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि कह सकते हैं तो महाप्रयाण को शीत युद्ध का समापन भी कहते हैं। अज्ञेय का दृष्टिकोण मौन तो था ही ज्ञान विज्ञान और बौद्धिकता से भी परिपूर्ण था! आधुनिक विज्ञान ने एक और काम किया है; उसने प्रकृति के भीतर छिपे रहस्यों का उद्‌घाटन करके हमारी दुनिया को काफी विस्तृत कर दिया है। विज्ञान ने ज्ञान की परिधि का विस्तार करके लेखक को भी परिवेश का विस्तार दे दिया है। इतना ही नहीं अज्ञेय तो स्वयं कहते हैं कि, ''विकासवाद के सिद्धांत ने जीव जंतुओं के विकास की बात से आरंभ करके केवल प्राणियों को ही नहीं हर चीज को सापेक्षता के एक क्रम में रख दिया है। जीव को मन को नैतिकता को मूल्यों को यथार्थ को जो कुछ भी हमारे ज्ञान की पकड़ में आ रहा है या आता है सब बदल रहा है।''..... पुनः आगे लिखते हैं कि ''आज का लेखक इस प्रकार अपने परिवेश से दबा है अपने परिवेश के उस भाग से जो कि वह स्वयं है और जितना ही अच्छा लेखक है उतना ही अधिक वह अपना परिवेश है यह नहीं कि अच्छा लेकर उस बंधन को काट नहीं सकता बल्कि एक तरह से यह उसकी प्रतिभा और उसके सामर्थ्य को ललकार है कि अपना प्रवेश बन जाना स्वीकार न करके उस के बंधन से मुक्त हो और उसे बदलें।''[2]

अज्ञेय की उम्र 5 वर्ष थी जब राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी का प्रवेश होता है। उन दिनों देश में दहशतगर्द का आलम था। एक और गांधीवादी विचारों की शुरुआत हो रही थी; दूसरी ओर तिलक और उनके साथियों का स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है जैसे नारे चल रहे थे। अज्ञेय पाठशाला में पढ़ने गए, तो देखा कि, गांधी के असहयोग आंदोलन की धूम मची हुई थी। चारों ओर देश में एक भय का वातावरण भी बना हुआ था; क्योंकि जलियांवाला बाग की त्रासदी हो चुकी थी। परिणामतः उनके मन मस्तिष्क पर भी एक परिवेश गत संसार और संस्कार दोनों निर्मित हो रहे थे। 1918 में जब प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हुआ। तब भारतीय जीवन पर इसके दुष्परिणाम भी दिखाई पड़ने लगे थे। खाद्य सामग्री की कमी पड़ गई थी।कीमतों में बेतहाशा वृद्धि हो गई। बड़ी संख्या में सैनिकों के मारे जाने और अपंग हो जाने की वजह से, अनेक परिवारों में विशेषकर पंजाब में अर्थ उपार्जन करने वालों की संख्या कम हो गई। इसी समय वर्षा न होने तथा इन्फ्लूएंजा के प्रकोप ने स्थिति को और गंभीर बना दिया। स्पेनिश फ़्लू, प्लेग,कॉलरा की महामारी पूरे देश में फैल चुकी थी,50 लाख से साठ लाख लोगों की मृत्यु हुई। जैसा कि हम जनसंख्या विभाजन 1921 को इतिहास मैं पढ़ते हैं, कृषि और उद्योग को भारी क्षति हुई।

1919 के जलियांवाला बाग हत्याकांड की भयानक त्रासदी ने आम जनजीवन को क्षुब्ध कर दिया! इस भयानक नर हत्या, इसके साथ घटी अन्य घटनाओं ने भारतीय जन मानस को क्षुब्ध और आंदोलित कर दिया। जलियांवाला बाग ने सारे भारत को क्रोध अपमान और क्षोभ की ज्वाला से भर दिया। चारों तरफ से इस घटना पर निंदा की बौछारे हुई। रवींद्रनाथ टैगोर ने इसके विरोध में 'नाइटहुड' की पदवी त्याग दी। चेम्सफोर्ड और डायर को भारत से वापस बुला लेने तथा घटना की जांच कराने की मांग भी की गई! इन सब के बावजूद ब्रिटिश सरकार की नीति में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। डायर को कार्य निवृत्ति कराकर इंग्लैंड तो भेज दिया गया पर, दमन की नीति जस की तस बनी रही। इधर सत्याग्रह आंदोलन भी पूरे जोश, उत्साह और लगन के साथ चल रहा था। हिंदू और मुसलमान दोनों कंधे से कंधा मिलाकर हड़ताल और सत्याग्रह में शामिल हो रहे थे। पुलिस की लाठियों और गोलियों का सामना भी उन्हें करना पड़ता था। गांधी ने एक अगस्त 1920 से असहयोग आंदोलन की शुरुआत की जो 6 फरवरी 1922 तक निरंतर बड़े जोर और जोश से चलता

रहा। यह अलग बात है कि फरवरी 1922 में चौरी–चौरा की घटना के बाद गांधी को असहयोग आंदोलन वापस लेना पड़ा। बावजूद इसके इन 2 वर्षों में असहयोग आंदोलन ने काफी कुछ प्रगति की थी। सबसे बड़ी प्रगति यही थी कि राष्ट्रीय आंदोलन का विकेंद्रीकरण किया गया। आमजन को भी राष्ट्रीयता से परिचित कराया गया। जन–जन में गांधी के प्रति आस्था बढ़ी और देश के प्रति सम्मान का भाव और अपनत्व का भाव दिखा।

महत्वपूर्ण बात यह है कि असहयोग आंदोलन के दौरान अज्ञेय अपने पिता के साथ नालंदा और पटना जैसे स्थलों पर थे। जोअसहयोग आंदोलन का सबसे बड़ा केंद्र बन चुका था। यहीं से अज्ञेय में भी स्वदेशी के प्रति प्रेम और राष्ट्रभाषा के प्रति सम्मान का भाव पैदा हुआ। उनके अंदर भी देश को स्वतंत्र कराने की चेतना धर करने लगी! अंग्रेजों की कठोर नीति और क्रूरता की प्रतिक्रिया भी युवाओं में बढ़ने लगी थी और युवा वर्ग क्रांतिकारी आंदोलन की ओर बढ़ा। क्रांतिकारियों का गुप्त दल बंगाल, पंजाब, दिल्ली और उत्तर भारत में सक्रिय हो गया। डॉ.विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं कि,''पंजाब की इस यात्रा में अज्ञेय के मन में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध घृणा और विद्रोह का भाव पैदा किया था, जिसमें अंततः उन्हें आतंकवादी दल में सम्मिलित होने को प्रेरित किया और वास्तविकता यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध घृणा और विद्रोह की भावना अज्ञेय के मन में 1919से 1921 की अवधि में ही पड़ चुकी थी। 1925 की पंजाब यात्रा में उनके विद्रोह भाव को पुष्ट किया होगा, ऐसा माना जा सकता है।''[3]

1920 से 1930 ईस्वी के बीच देश में काफी राजनीतिक उलटफेर हुआ! ब्रिटिश सरकार की हुकूमत दिनोंदिन कठोर होती जा रही थी। परिणामतः उसके विरोध में भारतीयों में भी कठोरता का जवाब देने की शक्ति बढ़ने लगी थी। इधर बारदोली सत्याग्रह एवं साइमन कमीशन का विरोध, पूर्ण स्वराज आंदोलन, गांधी इरविन समझौता, नमक कानून जैसे आंदोलनों ने क्रांतिकारियों को भी तमाम तरीके अपनाने पर विवश कर दिया। अज्ञेय पहली बार 15 नवंबर 1930 को गिरफ्तार हुए और और 1 महीने तक लाहौर किले में कारावास की सजा हुई जहाँ से हाई कोर्ट में अपील करने के बाद यह बरी हुए। दुबारा 1931 से लेकर 1936 तक सच्चिदानंद वात्स्यायन विभिन्न कारागारो में नजरबंद रहे। इसी अवधि में जैनेंद्र भी तीन चार महीने जेल में सच्चिदानंद वात्स्यायन के साथ रहे। जैनेन्द्र जी जेल से छूटे तो वह वात्स्यायन की कुछ कहानियाँ साथ लेते आए। जैनेन्द्र जी उनमें से एक कहानी 'अमर वल्लरी' प्रेमचंद के पास जागरण में छपने के लिए भेजी! साथ में पत्र लिखा कि लेखक का नाम बताना संभव नहीं है। वह अज्ञेय हैं, प्रेमचंद ने अज्ञेय नाम से ही कहानी छाप दी। बस यह नाम वात्स्यायन के लिए चल पड़ा और जैनेन्द्र द्वारा भेजी वात्स्यायन की सभी कहानियाँ अज्ञेय नाम से ही छपने लगी।

स्पष्ट है कि परिवेश ही किसी व्यक्ति के अंदर सृजनात्मकता को जन्म देता है। सच्चिदानंद वात्स्यायन आगरा के श्सैनिकश समाचार पत्र के संपादक मंडल में आए। फिर कोलकाता के श्विशाल भारतश से जुड़े !बाद में पटना सेश बिजलीश नामक पत्र का संपादन भी किया। यहीं से इनके अंदर यायावरी वृत्ति और भारत भ्रमण की संवेदना भी विकसित होने लगी! बंगाल में यह जातीय स्मृति के भंडार हजारी प्रसाद द्विवेदी के यहां ही ठहरते थे। अज्ञेय ने ही हजारी प्रसाद द्विवेदी को 'बीसवीं सदी का बाणभट्ट'कहां है। अज्ञेय ने उन्हें शांति निकेतन के आकर्षण 'विश्व भारती' में पाया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के घर अज्ञेय ठहरे थे। पहली बार यूरोप यात्रा में ही अज्ञेय ने अस्तित्ववादी विचारधारा से संपर्क किया और उस विचारधारा का प्रभाव इन पर गहरे रूप में पड़ा। अस्तित्ववादी रचनाकार यांत्रिक सभ्यता के दबाव के चलते जिस अजनबी पन, अकेलेपन और आत्म निर्वासन का दंड भुगतना है;उसकी मूल प्रेरणा हेगल के 'अलगाव की संकल्पना' वाले सिद्धांत से मिली है।'अस्तित्ववाद परंपरागत दार्शनिक

प्रणालियों से भिन्न एक ऐसा दर्शन है जो जिया जाता है।' अस्तित्व शब्द से अस्ति अर्थात होने अथवा विद्यमानता का बोध होता है! यद्यपि पेड़–पौधे पशु–पक्षी, लता गुल्म आदि सभी का अस्तित्व होता है परंतु; अस्तित्व की अनुभूति मनुष्य में ही मानी गई है। जड़ पदार्थों, वनस्पतियों तथा पशु पक्षियों में नहीं;क्योंकि मनुष्य ही अपने होने का एहसास कर सकता है। विशेषकर अस्तित्व के अदृश्य आयामों का एहसास मनुष्य होने की सतत प्रक्रिया से गुजरता रहता है! इस प्रक्रिया से विभिन्न वनस्पतियां तथा अन्य प्राणी भी गुजरते हैं, परंतु उनके विस्तार को जीव वैज्ञानिक प्रक्रिया का स्वाभाविक अंग माना जाता हैं ! मनुष्य का आत्मविश्वास और आत्मोन्नयन उसके अपने विवेक और निर्णय से निर्दिष्ट होता है। अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य में स्वतंत्रता और दायित्व की चेतना होती है! और वह अपने अस्तित्व का भली–भांति एहसास करता है।''[4]

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1943 में अज्ञेय अंग्रेजी सेना में भर्ती होते हैं। इसके पीछे उनका तर्क था कि फासीवादी शक्तियों को पराजित करने के लिए वह विचारों से ही नहीं कार्य से भी उनका विरोध करना चाहते हैं! बाद में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात 1946 के आरंभ में अज्ञेय फौज की नौकरी से मुक्ति पाते हैं। 1943में 'तार सप्तक' का प्रकाशन किया। 1947 में 'प्रतीक' का प्रकाशन, 1951 में 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन, 1959 में 'तीसरा सप्तक' का प्रकाशन, 1960में वाक् (अंग्रेजी पत्रिका)का प्रकाशन, 1965 में 'दिनमान' का प्रकाशन, 1973 में 'नया प्रतीक' का प्रकाशन और 1979 में 'चौथा सप्तक' का प्रकाशन किया। अप्रैल 1960 में अज्ञेय दूसरी बार यूरोप यात्रा पर निकले। इस बार वे मसीही संस्कृति साधना की गहराइयों में प्रवेश होने के लिए गए। इस यात्रा में उनकी भेंट पाल मसीन्यो से हुई। जिन्होंने सहारा के रेगिस्तान में मठ बनाया था। गजाली के सूफी रहस्यवाद से प्रेरणा ग्रहण की थी। और ईसाइयत के दायरे से बाहर जाकर साधना मार्ग ग्रहण किया। सितंबर 1961 में अज्ञेय बर्कले विश्वविद्यालय कैलिफोर्निया, अमेरिका गए थे। जहां पर भारतीय साहित्य और संस्कृत के अध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई। वहां 1964 तक रहे। 1966 में पूर्वी यूरोप की यात्रा पर निकले। जिनमें रोमानिया। युगोस्लाविया, रूस और मंगोलिया का भ्रमण किया। युगोस्लाविया में उनकी भेंट नोबेल पुरस्कार विजेता 'आंद्रिच' तथा स्लोवेनी कवि 'मातेई बोर' से हुई। 1968 में दुबारा बर्कले विश्वविद्यालय कैलिफोर्निया गए। जहां रेटोरिक विभाग में रीजेंट प्रोफ़ेसर हो कर रहे।

इस प्रकार पूरब और पश्चिम की संस्कृतियों से अज्ञेय वैचारिक रूप से जुड़े! उन्होंने दोनों संस्कृतियों से नीर क्षीर विवेक का परिचय भी लिया। अज्ञेय स्वयं लिखते हैं कि–''मैंने कहा कि मेरा परिवेश बहुत बड़ा है। यह बात आपेक्षिक रूप से भी सच है और आत्यंतिक रूप से भी। मेरा परिवेश प्राचीन लेखक के परिवेश की तुलना में बहुत बड़ा और अपने आप में भी बहुत बड़ा है। उसमें एटम बम है, और भूदान है। ई ई सी है और नाटो है। पीएल 480 है और वियतनाम है, हिंदी चीनी भाई भाई है और नाथूला है, कांचिका चेकला और थिम्मा रेड्डी हैं और लूनिक और यूरी गागरिन है। एफ्रो–एशियाई एकता और कांगो और अंगोला है, भारत का स्वाधीन राष्ट्र है और पीलू मोदी हैं। भाई हाइपोथैलमस ग्रंथि है और शतदल पद्म है। सभी कुछ है जो बहुत से लोगों के लिए था, हो गया है। वह भी है। जो बहुत से लोगों के लिए होगा कि, कोटि का है। वह भी है, और जो है, वह भी तो, है ही, और निरंतर फैलता जा रहा है। जैसे कि यह विश्व ब्रह्माण्ड भी फैलता जा रहा है। मेरा परिवेश जितना बड़ा है और बड़ा होता जाता है, उतना ही मैं छोटा और छोटा होता जाता हूँ यह तो ठीक ही है, बल्कि इसे तो स्वयं सिद्ध मान लिया जा सकता है। पर संदर्भ के नाते वह जितना बड़ा है या होता जाता है उतना मेरा संवेदन भी विस्तृत और गहरा होता जाता है। और उतना ही मेरा संप्रेषण भी विशालतर और गंभीरतर होता जाता है।''[5] सच्चिदानंद वात्स्यायन की पहचान शेखर एक जीवनी उपन्यास से होती है इस उपन्यास में शेखर और शशि की मार्मिक कहानी है शेखर जन्मजात विद्रोही है, किंतु अंततः उसका

विद्रोह किसी से ज्ञ तक पहुंचता प्रतीत नहीं होता उपन्यास के दूसरे भाग में शशि की कहानी ही प्रमुख हो जाती है। शेखर के आरंभिक जीवन की घटनाओं में कब के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित घटनाओं को भी स्थान मिला है। अज्ञेय का क्रांतिकारी जीवन क्रांतिकारियों से उनके संपर्क परिवार में उनका अस्तित्व, समाज में उनकी सोच समाज के लोगों का अज्ञेय के प्रति दृष्टिकोण के तमाम ऐसे तथ्य हैं; जो उनके परिवेश को भी प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. गोपाल राय, अज्ञेय और उनका कथा साहित्य– वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ0 41
2. गोपाल राय, अज्ञेय और उनका कथा साहित्य– वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ0 41
3. गोपाल राय, अज्ञेय और उनका कथा साहित्य– वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ 47
4. करुणा शंकर उपाध्याय– पाश्चात्य काव्य चिंतन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृष्ठ 157
5. गोपाल राय–अज्ञेय और उनका कथा साहित्य, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ 41–42

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

आधुनिकता का परिपेक्ष्य : सन्दर्भ स्त्री

रेनू गुप्ता
शोध छात्रा (जे0आर0एफ0)
खरडीहा, महाविद्यालय, खरडीहा, गाजीपुर

हमारे सामाजिक कोलॉज में मान्यता है कि अगर यह देखना हो कि कोई समाज या राष्ट्र तरक्की कर रहा है अथवा नहीं तो उस समाज या राष्ट्र में औरतों की स्थिति को देख लेना चाहिये। समाज या राष्ट्र की स्थिति का आकलन हो जायेगा और यह बात सही भी है। कोई भी समाज अपनी महिलाओं को हाशिये पर रखकर कभी भी आगे नहीं बढ़ सका है। एक समय था जब भारत में महिलाओं की स्थिति वर्तमान से कहीं श्रेष्ठ थी। जहाँ वह अपने वर चुनने के लिये स्वयंवर रखती थीं। उसे शास्त्रार्थ में पराजित करती थीं। यह देश मैत्रेयी, गार्गी, विद्योत्तमा और रानी लक्ष्मीबाई का देश है। आधुनिक युग का सबसे बड़ा संकट तो यही है कि यह युग जितना विकसित होता जा रहा है, महिला उतने ही हाशिये पर धकेल दी जा रही है।

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो।
विश्वास रजत नग पग तल में।।
पीयूष स्रोत सी बहा करो।
जीवन के सुंदर समतल में।।''[1]

हिन्दी के महाकवि जयशंकर प्रसाद की ये पंक्तियाँ जिस नारी की छवि हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं, वो शायद ही हमारे तथाकथित आधुनिक समाज में कहीं दिखाई दे। जिस समाज में पुरुष और स्त्री के लिये मापदण्ड अलग–अलग हों; वहाँ हम कैसे एक औरत की स्वतंत्रता, समानता और उसके अधिकार को शब्दों और विचारों की एक अंधी गली में धकेलने में सफल हो गये हैं ? क्या यह सिर्फ पितृसत्तात्मक समाज होने भर से हुआ या हमारी नसों और नस्लों में स्त्री विरोधी संस्कार कूट–कूटकर भरे गये थे ? स्त्री विरोधी ये संस्कार आज हमें अपने घर, समाज, राजनीति हर जगह देखने को मिलते हैं। एक पिता अपने पुत्र के कॉलेज से पिकनिक पर जाने पर सवाल नहीं करता लेकिन वही पिता अपनी बेटी के जाने पर बेटी के सामने सवालों की झड़ी लगा देता है। आपका भाई घर देर से लौटता है तो कोई हलचल नहीं होती किन्तु लड़की के संबंध में शाम 4–5 बजते ही हमारी चिंताएँ हमारी निष्ठाओं में तब्दील हो चुकी होती है। आधुनिक समाज में औरतों की सुरक्षा के नाम पर एक और बंधन बाँधने का प्रयास करती हैं। ''आधुनिकता वैज्ञानिक एवं तकनीकी काल की सापेक्षता का वह भाव है जिसने मानव को नया परन्तु महत्वपूर्ण सन्दर्भ प्रदान किया है।''[2]

आधुनिक समय में हम औरतों की समाज में भूमिका पर नहीं अपितु उसकी सुरक्षा और स्थिति पर चर्चा करने लग जाते हैं। यह अपने आप में विडंबनापूर्ण स्थिति है। बेहतर होता अगर समाज निर्माण में उसकी भूमिका पर चर्चा–परिचर्चा और विवेचन किया जाता। ऐसे में भी हमारे सामने जो उदाहरण पेश किये जाते हैं, वो उन खास महिलाओं के होते हैं जो ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक और

आर्थिक रूप से काफी सबल थीं। हम उन स्त्रियों के मार्फत अपने समाज की प्रत्येक महिला का सामान्यीकरण कर देते हैं। मसलन झांसी की रानी का उदाहरण देते वक्त एक वर्ग महिलाओं की बहादुरी की गाथा गाता दिखाई देता है।

निश्चित ही महिलाएँ आधारिक रूप से पुरुषों की तुलना में ज्यादा बहादुर होती हैं। लेकिन क्या यह सही है कि झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के समय की अधिकाँश स्त्रियों की दशा भी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की ही तरह हो। हम भलीभाँति जानते हैं कि ऐसा नहीं है लेकिन इसे भारतीय समाज की विडंबना ही कहा जायेगा कि हम अपनी कमजोरियों पर चर्चा करने के बजाय उससे बचकर निकल जाना चाहते हैं।

''कुल मिलाकर पूँजीवादी किस्म का निजी स्वामित्व आज हमारे समाज में भी परिवार के अन्दर सम्बन्धों के रूप को मुख्यतः प्रभावित करने लगा है। भौतिक स्वार्थ और विवाह के वाणिज्यिक लाभों की उपस्थिति स्पष्ट है। पुरानी रागात्मकता समाप्त हो रही है और पति–पत्नी के रिश्तों तक में बेगानापन चुका है। पति–पत्नी के बीच के यौन सम्बन्ध भी 60 फीसदी मात्रा में वैधिक वैश्यागमन और सामाजिक, मान्यता प्राप्त बलात्कार ही है।''[3]

कहा जाता है कि किसी देश की समृद्धि या विकास का पता उसकी राष्ट्रीय आय अथवा प्रति व्यक्ति आय से नहीं चलता, वरन् उस देश या समाज में महिलाओं की स्थिति या भूमिका से चलता है। यही कारण है कि जिसे हम ग्रेट ब्रिटेन कहा करते थे और जिसके साम्राज्य में कभी भी सूर्यास्त नहीं होता था वह भी अपनी महिलाओं को सम्मान न देने के कारण आज तक आलोचना का केन्द्रबिन्दु बना हुआ है।

आज के बदलते परिवेश में स्त्री ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान बना रखी है। राजनैतिक क्षेत्र में देश की पूर्व प्रधानमंत्री स्व0 श्रीमती इंदिरा गाँधी को आज भी एक चमकते सूरज की तरह स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। राष्ट्रपति में प्रतिभा देवी सिंह पाटिल थी। विज्ञान के क्षेत्र में कई अभिनेत्रियों ने अपनी अदाकारी का स्त्री के लौह व्यक्तित्व का लोहा मनवाया है। इसी तरह खेल के क्षेत्र में, ब्यूरोकेसी के क्षेत्र में भी कई स्त्रियों ने अपना डंका बजाया है। स्त्री का संघर्ष ज्यादा बड़ा है। हमारा समाज कहता तो है कि आज की नारी पूरी तरह आजाद है लेकिन यह सिर्फ एक बड़बोलापन है।

वर्तमान सामाजिक ढाँचे में भीतर तक पैठी पितृसत्ता के खिलाफ कुछ स्त्रियों ने मोर्चा खोला तो है, परन्तु यह तादाद बहुत कम है। जब भी सार्वजनिक जगहों पर कोई स्त्री आधुनिक ढंग के कपड़े पहने दिखती है, तो लोग उसे घूरने–निहारने से लेकर छींटाकशी तक करने लगते हैं। कितने लोग तो मुड़–मुड़कर देखते हैं। ऐसे लोग भी देखते हुये दिखाई देते हैं जो खुद को बेहद सभ्य और नफीस (सुन्दर) मानते हैं। कुछ को तो मर्यादा और भारतीय संस्कृति ही खतरे में दिखाई देने लगती है और ऐसे लोग किसी न किसी बहाने सलाह ही दे डालते हैं।

सच में कहा जाये तो आधुनिकता का बोध एक ढोंग है। ज्यादातर लोगों के लिये आधुनिकता एक कोरा लबादा है। ऐसी मानसिकता समाज के लिये अभिशाप के समान है। पुरुष प्रधान समाज में इस बीमार मानसिकता की वजह से आये दिन महिलाएँ निशाना बनती हैं। इधर यह भी देखने में आ रहा है कि अब स्त्रियाँ खुद को तेजी से बदल रही हैं। वे पुरानी बेड़ियों को तोड़ रही हैं। किसी भी समाज की पहचान इस बात से होती है कि उसमें स्त्रियों का क्या स्थान है। वे कहाँ पर है ? आँकड़ें बताते हैं कि हमारे देश में तथाकथित आधुनिक समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं है। यह शर्मनाक होने के साथ–साथ बेहद भयावह भी है। कितने ही कानून बना दिये जायें, जब तक लोगों की सोच नहीं बदलेगी, तब तक कुछ नहीं बदलेगा। प्रायः लोगों को बोलते हुये सुना जा सकता है कि क्या

स्त्रियों को आजादी कपड़ों के स्तर पर ही चाहिये ? क्या समानता और बराबरी आधुनिक कपड़े पहनने से ही आती है ? जिस सामाजिक प्राणी को कहीं आने जाने, अपने मनमुताबिक कपड़े पहनने या अपने मन की सोचने का अधिकार न हो उसके लिये समानता की बातें बेमानी हैं। समाज में मर्यादा जरूरी है परन्तु यह मर्यादा समता मूलक होनी चाहिये।

आधुनिक सभ्य समाज में स्त्री के लिये हर रोज एक नई समस्या एक नये रूप में सामने आ खड़ी होती है। यह एक ऐसा समाज है जो मनुष्य को फैंटेसी में जीने की आदत को मजबूती प्रदान कर रहा है। इस समाज के मनुष्य चाहे वह किसी भी वर्ग के हो इससे अछूते नहीं हैं। आज की नारी स्वतंत्र रहकर अपना जीवन जीना चाहती है। उसे बंधन में बँधना कत्तई पसंद नहीं है। ''सदियों से परम्परा के खिलाफ औरत देह और मन की यह लड़ाई लड़ रही है। इसमें कौन उसका साथ देगा ? सबसे ज्यादा वह खुद, शायद सबसे ज्यादा उसका सहयोगी पुरुष।''[4]उसके विचारों में एक अजीब सा उन्माद नजर आता है। पहनावे से प्रतीत होता है कि स्त्री अपने शरीर का प्रदर्शन करना चाहती है। मीडिया और इंटरनेट ने समय से पूर्व ही टीनेजर (किशोरियों) के बौद्धिक परिपक्वता के स्तर में आशातीत वृद्धि कर दी है। समाज में जैसे–जैसे शिक्षा का स्तर बढ़ा है तथा नारी को परिवार के द्वारा स्वतंत्रता प्रदान की जाने लगी है, उसने कहीं न कहीं उस स्वतंत्रता का गलत उपयोग भी किया है। वह स्वच्छंद जीवन जीने के अधिकार का निजी तौर पर उपयोग करने लगी है तथा जीवन में कई प्रकार की घटनाएँ भी उसके साथ घटित होने लगी हैं। जिसका विरोध करने में वह असक्षम रही है।

वर्तमान में भारत बड़ी तेजी से आधुनिकता की तरफ बढ़ रहा है लेकिन आज भी स्त्रियों के प्रति लोगों की सोच क्यों तंग है। इस प्रश्न पर अपने–अपने जायज तर्कों के साथ लोगों के कई मत हो सकते हैं लेकिन यहाँ सवाल केवल समानता का नहीं है, मसला हमारे नजरिये का भी है। जैसे एक रनिंग एथलीट की रेस वहीं से शुरू होती है जहाँ से रेखा खींची जाती है, ठीक उसी प्रकार से भारतीय समाज ने भी आधुनिकता को ऐसी ही सीमा रेखा के भीतर बाँधकर रख दिया है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस रेखा के भीतर जो भी परिभाषित किया गया है, उसे संस्कृति और सभ्यता के नाम पर पवित्रता प्रदान कर दी। जबकि आधुनिकता का अर्थ पश्चिमी रीतियों जैसा आचरण करना नहीं है।

आधुनिकता का वास्तविक अर्थ है, ''जीवनयापन करने की एक तार्किक सोच।'' जो सभी स्त्रियों का मौलिक और नैसर्गिक अधिकार है। चूँकि इस पवित्रता के सिद्धांत का पालन पुरुष नहीं कर सकते हैं इसलिये इसे स्त्रियों पर ही थोप दिया गया है। किसी भी संस्थान में देखा जा सकता है कि दिन–रात मेहनत करने के बाद पुरुषों को तो शीर्ष पद मिल जाता है, जबकि महिलाओं को इस संदर्भ में समझौता करना पड़ता है। कई अवसर ऐसे होते हैं कि अपनी मेहनत के बल पर कामयाबी हासिल करने वाली महिलाएँ आगे तक नहीं पहुँच पाती हैं। इसके पीछे की सबसे बड़ी वजह उनका पालन–पोषण होता है। एक कन्या के परिवरिश के समय उसे यही शिक्षा दी जाती है कि बेटी पुरुषों से हमेशा दूर रहना, उनसे खतरा है।

इस बंधन का पालन करने के लिये कई और नियम बना दिये जाते हैं, जैसे पुरुष सहयोगियों से ज्यादा बात नहीं करना, देर तक ऑफिस में नहीं ठहरना, ऑफिस के साथ–साथ परिवार भी संभालना इत्यादि।एक साधारण वर्ग से आई स्त्री अपना सुनहरा भविष्य बना सकती है क्या ? जबकि इन सभी नियमों से आजाद पुरुष जल्दी ही तरक्की प्राप्त कर लेता है। यदिएक स्त्री अपने दम पर इन सभी चुनौतियों से पार पाकर सफल हो जाती है तब क्या समाज उसे स्वीकार कर लेता है ? समाज यह सोचने लगता है कि यह स्त्री आधुनिक है और सभी नियमों को ताक पर रखकर इसने सफलता हासिल की होगी।

एक और बेहद दिलचस्प पहलू यह है कि जिस पुरुष को स्त्री के लिये बचपन से ही खतरा बताया गया है, उसी को रक्षक (पिता, भाई और पति के रूप में) भी बताया गया है। अब एक साधारण स्त्री के लिये नियम यह हो जाता है कि बिना रक्षक के स्त्री सुरक्षित ही नहीं है। इस पितृ सत्तात्मक समाज ने स्त्री को न तो सशक्त बनाया और न ही उसे आत्मनिर्भर होने की सीख दी है। यदि कोई स्त्री इन नियमों को ताक पर रखकर अपनी जिन्दगी को अपनी मर्जी से जीना चाहती है तब ऐसी आधुनिक स्त्री के लिये हमारे समाज में कोई जगह नहीं छोड़ी जाती है। पुरुषों वर्ग में यह तथ्य आश्चर्यचकित लगती है कि कैसे एक स्त्री बड़े शहरों में अकेले रह सकती है। इसी आधार पर उस आधुनिक स्त्री को हमारा तथाकथित आधुनिक समाज स्वीकार नहीं करता है।

जब तक एक स्त्री के पास पति या पिता द्वारा दी गई सहायता और नाम न हो, तब तक उसे समाज स्वीकार नहीं करता है। आखिरकार समाज ने ही तो स्त्रियों को पुरुषों पर निर्भर रहना सिखाया है। इसमें केवल पुरुषों की ही गलती नहीं होती बल्कि वे स्त्रियाँ भी जिम्मेदार होती हैं जो खुद को पुरुष की छत्रछाया के बिना रहना ही नहीं चाहती हैं। याद रखिये विपत्ति के समय केवल आप ही अपने आपको बचा सकते हैं। चाहे किसी की भी छत्रछाया में रहिये, कोई आपकी मदद नहीं करने वाला है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. जयशंकर प्रसाद, कामायनी
2. डॉ0 त्रिभुवन सिंह, हिन्दी साहित्य, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, संस्करण–2010, पृ0 399
3. स्त्री परम्परा और आधुनिकता, संपादक राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्रकण–2010, पृ0 145
4. वही, पृ0 65
5. वही,

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

ऎ मेरे वतन के लोगो ज़रा याद करो 'सोज़े-वतन' की कहानी

डॉ. पी.जी. शशिकला
विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, एस.एन.कॉलेज, कोल्लम,
केरल विश्वविद्यालय

हमारी हिन्दी -भारती सदैव ही आभारी रहेगी 'सोज़े - वतन' के बलिदान की। सन 1907 में प्रकाशित स्व देशप्रेम की महक से लबालब नवाब राय का यह पहला उर्द कहानी - संग्रह ब्रिटिश सरकार द्वाराज़ब्त कर लिया गया ज्योंकि भयभीत नौकरशाही को इन कहानियों में विद्रोह की गंध लग रही थी साम्राज्यवाद वाणी का मूक विद्रोह सह न सका और इसीलिए लगभग इसकी 500 प्रतियाँ जनता के सामने जला दी गई और साथ ही नवाबराय को कड़ी चेतावनी दी गई और खैर मनाओ कि अंग्रेज़ अमलदारी में हो, सल्तत मुगलिया का ज़माना नहीं है, वर्ना तुम्हारे हाथ काट लिए जाते, तुम बगावत फैला रहे हो...।

(डॉ.हरि महर्षि सोज़ेवतन प्रस्तावना पृ.3)

इस बात ने नवाबराय के मर्म को भी गहराई तक झुलसा दिया था भले ही इस आग में नवाब राय की वो कृति जल कर भस्म हो गई हो लेकिन 'सोज़ेवतन' की इसी राख ने ही जन्म दिया प्रेमचन्द को, और इसी यशस्वी लेखक ने सम्पन्न किया हमारी हिन्दी भारती को। कथा सम्राट प्रेमचन्द के जीवन की सबसे महत्व पूर्ण कृति थी 'सोज़े- वतन'। इसका अर्थ है -देश का दर्द। इस संग्रह में कुल पाँच कहानियाँ थी. 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन ''शेख मखमूर', 'यही मेरा वतन है','शोक का पुरस्कार ','सांसारिक प्रेम और देश प्रेम '।इस ऐतिहासिक दस्तावेज को जयपूर के साहित्यागार ने प्रकाशित किया है। इस संग्रह की पाँचों कहानियाँ हर सहृदय पाठक के मन में देशप्रेम का जज़्बा पैदा करती हैं और नवाबराय का मानना भी यही था कि-

''हमारे मुल्क को ऎसी किताबों की अशद ज़रूरत है, जो नयी नस्ल के
जिगर पर हुब्बे - वतन की अज़मत का नक्शा जमाये''

(नवाबराय, सोज़ेवतन पृ.5)

देश-प्रेम की महिमा को मंडित करती ये पाँचों कहानियाँ बड़ी ही बेहतरीन है। पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' का ज़िक्र मैं यहाँ करना चाहूँगी-

सौदर्य की देवी मलका दिलफ़रेब का सच्चा प्रेमी होता है दिल फ़िगार। दिल फ़रेब ने उससे कहा था कि अगर तू मेरा सच्चा प्रेमी है तो जादुनिया की सबसे अनमोल चीज़ लेकर मेरे दरबार में आ तब मैं तुझे अपनी गुलामी में कबूल करुंगी अगर वह चीज़ तुझे न मिले तो खबरदार इधर रुख न करना वरना सूली पर चढ़वा दूंगी।

दिलफ़िगार को अपनी भावनाओं के प्रदर्शन का, शिकवे - शिकायत का, प्रेमिका के सौन्दर्य दर्शन का तनिक भी अवसर नहीं दिया जाता। दिल फ़रेब के चोबदार धक्के देकर उसे बाहर कर देतें हैं। अब तो दिल फ़िगार को बस एक ही चीज़ की तलाश थी-क्या है वो अनमोल चीज़ और कैसे और कहाँ मिलेगी। उस चीज़ की तलाश में वो दर-बदर भटकता रहता है। एक रोज़ भटकता हुआ वह एक मैदान में पहुँचता है जहाँ हज़ारों आदमी गोल बाँधे खड़े थे और बीच में कई दढ़ियल क़ाजी शान से बैठे सलाह-मशविरा कर रहे थे। इस ज़मात से दूर एक सूली थी। तभी कई लोग ज़ंजीर में बंधे एक कैदी को वहाँ लाते हैं। वह काला चोर था जिसने कई लोगों का खून किया था। जैसे ही सिपाही उसे सूली के तख़्ते पर खड़ा करते है वह अपनी आखिरी आरज़ू कहता है।

उसे इजाज़त दे दी जाती है। इसी भीड़ में एक खूबसूरत भोला-भाला लड़का था। काला चोर फाँसी से उतरता है और उस लड़के के। गोद में उठाकर प्यार उसे लगता है। दम -तोड़ती लाशों को देखकर जिस काले चोर क आँखे न झपकती थी आज उसी की आँख से आँसू की एक बूँद टपक पड़ती है। दिल फ़िगार लपक कर उस अनमोल मोती को हाथ में ले लेता है उसे लगता है कि यही दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ है। कामयाबी की उम्मीद में दिल फ़िगार अपनी माशूका के शहर वापस आता है और वहाँ पहुँच कर वो बूँद उसकी खिदमत में पेश करता है और उसकी सारी कैफ़ियत भी बयान करता है। दिल फ़रेब बोली-वाकई ये बेशकीमती चीज़ है लेकिन ये दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ नहीं है। जा तुझे एक और मौका देती हूँ। दिल फिगार को फिर बाहर निकाल हिया जाता है।पूरब से पश्चिम और उत्तर से दव्खिन तक न जाने कितने ही जंगले में भटकता भटकता वह हडिड्यों का एक ढाँचा बनकर रह जाता है। एक रोज वह फिसी नदी के किनारपे खस्ताहाल पड़ा था तो क्या देखता है कि चन्दन की चिता बनी है उस पर एक युवती सुहाग का जोड़ा पहने सोलह सिंगार किये बैठी है उसके पति का का सर उसकी गोद में है चिता से लपटें उठती हैं और वह अपने पति के साथ सती हो जाती है जब सब लोग घर लौट जाते हैं तो दिल फ़िगार उस चिता से मुटठी भर राख ले लेता है और उसे दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ समझता हुआ वापस आ जाता है। और उस मुटठी भर राख को दिलफ़रेब की हथेली में रखकर सारी दास्तां सुनाता है। दिलफ़रेब उस राख को आँखो से लगा कर कहती है कि बेशक यह राख बेशकीमती है लेकिन दुनिया में इससे भी अनमोल चीज़ है जा उसे तलाश कर।

दिल फ़िगार की हिम्मत जवाब दे देती है और वह निराश होकर पहाड़ी से कूदकर जान देने कर इरादा करता है जब बह पहाड़ की चोटी पर पहुँचता है वहाँ उसे एक बुज़ुर्ग नजर आते हैं वे उसे हिन्दोस्तान जाने की सलाह देते है। दिल फ़िगार हिन्द की पाक सरज़मीन पर पहुँचता है वह एक

मैदान में दाखिल होता है तो क्या देखता है कि वहाँ बैसुमार अधमरी और बे जुबान लाशें पड़ी हुई हैं सारा मौदान खून से लाल है उसे समझते देर न लगी कि यह मौदाने- जंग है और ये लाशें सूरमा सिपाहियों की हैं। तभी वहाँ कराहने की आवाज आती है दिल फ़िगार उस तरफ मुड़ता है तो देखता है कि लम्बा तडंगा आदमी खून से लथपथ ज़मीन पर पड़ा है दिल फ़िगार उसके वास जाता है और पूछता है कि ऐ जवाँ मर्द तू कौन है यह सुनते की वह अधमरी अवस्था में भी त्यौंरियाँ चढ़ा कर बोला क्या तू नहीं जानता मैं कौन हूँ क्या तूने इस तलवार की काट नहीं देखी। दिल फ़िगार को समझते देर न लगी कि वो सिपाही उसे अपना दुश्मन समझ बैठा है। दिल फ़िगार नरमी से कहता है ऐ जवाँ मर्द मैं ग़रीब मुसाफिर हूँ। यह सुनते ही घायल सिपाही मीठे स्वर में बोलता है : ''

''अफसोस है कि तू यहाँ ऐसे वक़्त में आया जब हम तेरा आतिथ्य- सत्कार करने के योग्य नहीं। हमारे बाप-दादा का देश आज हमारे हाथ से निकल गया और इस वक़्त हम बेवतन है। मगर हमने हमलावर दुश्मन को बता दिया कि राजपूत अपने देश के लिये कैसी बहादुरी से जान देता है।....क्या मैं अपने ही देश में गुलामी के करने के लिए ज़िन्दा रहूँ ? नही, ऐसी ज़िन्दगी से मर जाना अच्छा।"

मरने से पहले वह बोला भारत माता की जय!और उसके सीने से खून की आखिरी बूँद निकल पड़ी। एक सच्चे देश भक्त और देशप्रेमी ने देश भक्ति का हक अदा कर दिया। दिलफ़िगार पर इस बात का गहरा असर पड़ा उसके दिलने कहा बेशक दुनिया में खून के इस कतरे से ज़्यादा अनमोल चीज़ कोई नहीं उसने खून की उस बूंद को हाथ में ले लिया और उस दिलेर राजपूत की बहादुरी पर हैरत करता हुआ अपने वतन की तरफ रवाना हुआ। मलका दिलफ़रेब की ड्योढ़ी पर पहुँचा और पैग़ाम दिया कि दिल फ़िगार कामयाब होकर लौटा है दिल फरेब ने फौरन हाज़िर होने का हुक्म दिया। दिल फ़िगार ने मेंहदी रची हथेलियों को चूमते हुए खून का वह कतरा उस पर रख दिया और वो सारी दास्तां बया कर दी। यकायक सुनहरा परदा हटगया। दिल फ़रेब बड़ी शान के साथ सुनहरी मसनद पर सुशोभित है वह उठती है और हाथ जोड़कर दिलफ़िगार से बोलती है कि ऐ जां निसार आशिक तू कामयाब हुआ आज से तू मेरा मालिक है। ऐसा कहकर वह एक तख्ती मंगाती है जिस पर सुनहरे अक्षरों से लिखा होता है -

"खून का वह आखिरी क़तरा जो वतन की
हिफाज़त में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ है।"

ये कहानी यहाँ समाप्त हो जाती है और हम सभी में देश प्रेम का जज़्बा पैदा करती हुई उन तमाम जाबाज़ सिपाहियों की याद दिलाती है जिन्होंने वतन की खातिर आप प्राण न्यौछावर कर दिये ये कहते हुए कि :

'कर चले हम फिदा जानो- तन साथियो
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो।'

नवाबराय को हिन्दी के महान साहित्यकार प्रेमचन्द बनाने वाली रचना 'सोज़े-वतन' की ये पहली कहानी इस मकसद के साथ सुनाई है कि सभी साहित्य प्रेमी इसे अपने अन्तर्मन में आत्मसात करें और शहीदों के बलिदान को याद रखें।

जब देश में थी दीवाली, वो खेल रहे थे होली
जब हम बैठे थे घरों में वो झेल रहे खे गोली।
जब अन्त समय आया तो कह गये कि हम मरते हैं।
खुश रहना देश के प्यारो अब हम तो सफर करते हैं
.....
'तुम भूल न जाओ उनको इसलिए कही ये कहानी
जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुर्बानी '

संदर्भ ग्रन्थ

1. 'सोज़े - वतन' - मुंशी प्रेमचन्द
प्रकाशक - साहित्यागार जयपुर
प्रस्तावना - डॉ.हरि महर्षि
संस्करण - 1994

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

“संत रैदास की लोक दृष्टि”

डॉ.ऋचा सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर)
संप्रति, अध्यक्ष; हिंदी विभाग,
हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल और भक्तिकाव्य में निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा का महत्वपूर्ण स्थान है| इस निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा का वैशिष्ट्य यह है कि इस धारा के कवियों ने ईश्वर के निर्गुण, निराकार स्वरूप का नाम जप पूरे मनोयोग से किया और समाज में व्याप्त जातिव्यवस्था एवं धार्मिक रुढियों की जमकर आलोचना की| दिलचस्प तथ्य यह है कि संपूर्ण भक्तिकाव्य का केन्द्रीय प्रश्न ही यही था कि ईश्वर का स्वरूप कैसा है? निर्गुण या सगुण| इसी निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि हैं संत शिरोमणि रैदास अथवा रविदास| रैदास के जन्म काल संबधी अनेक मत प्रचलित हैं- “‘भक्तमाल’ और डॉ. भण्डारकर के अनुसार उनका जन्म 1299 ई. में हुआ था| डॉ. भगवतव्रत मिश्र ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि कवि का जन्म काल 1398 ई. तथा मृत्यु- काल 1448 ई. के मध्य होना चाहिए.”[1]

गौरतलब, है कि भक्तिकाव्य में लोक की महत्ता को प्रखर आलोचक रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी दोनों ने ही स्वीकार किया है| लेकिन उक्त दोनों समीक्षकों के लोक में भिन्नता भी है| कहना ना होगा कि भक्ति काव्य के लोकवादी व्याख्याताओं में, “आचार्य शुक्ल के लिए भक्ति आंदोलन में सगुण और निर्गुण का संघर्ष प्रमुख है, जिसमें लोकमंगलवादी है सगुण भक्ति| आचार्य द्विवेदी के लिए निर्गुण-'लोकचिंता’ का प्रतिफल है| रामविलास शर्मा के लिए ‘योग बनाम शास्त्र’ संघर्ष प्रमुख है, जिसमें जीत भक्ति की होती है| नामवर सिंह के लिए लोक बनाम शास्त्र का द्वन्द्व मुख्य है. इस सगुण-निर्गुण, भक्ति-योग, लोक-शास्त्र आदि के विवाद ने हिन्दी आलोचना में स्थायी विवाद का रुप ले लिया है, जिसे मैनेजर पाण्डेय हिन्दी आलोचना का ‘महाभारत’ कहते हैं जिसका कुरुक्षेत्र है भक्तिकाव्य|”[2]

मध्यकालीन साधकों में रैदास इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं कि उन्होंने अपनी जाति को लेकर कभी हीनता बोध नहीं महसूस किया है वे पूरी उदात्तता से “ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार”[3] का उद्घोष करते हैं| सभी निर्गुण कवि लोक से गहरे स्तर पर संपृक्त थे इसलिए उनके काव्य में लोक की

खुशबू पूरी सदाशयता से व्यजिंत हुई है| अपने लोक की जड़ों से जुड़े निर्गुण कवियों की खास विशेषता यह रही कि इन्होंने अपने परंपरागत कर्म के सौंदर्य को अपनाए रखा है| इस परिप्रेक्ष्य में आलोचक गोपेश्वर सिंह की ये टिप्पणी गौरतलब है- "अधिकांश निर्गुण पंथी संत नीची और शिल्पी जातियों से आए थे| कबीर जुलाहे थे (नीच कुल जोलाहरा), रविदास चमड़ा उतारने वाले चमार (धुवंता ढोर), सेन नीची जाति के नाई (नाई बुटकारिया), नानक खत्री जाति के छोटे व्यापारी थे. दादू रूई धुनने वाले धुनिया (नद्दाफ), हरिदास एक गुलाम जाट थे. ....ये सगुणवादी सूरदास, चैतन्य, तुलसीदास आदि की तरह पुजारी वर्ग या शासक वर्ग से जुड़े नहीं थे| ये अपनी जीविका के लिए शिल्प- धंधे और रोजगार पर निर्भर थे| प्रोफेसर इरफान हबीब का मानना है कि ये सभी अपनी जडों से कटे हुए नहीं थे|"[4]

कहने का आशय यह की रैदास, कबीर आदि संत कवियों की लोक से संप्रक्तता ने उनके काव्य में लोक संस्कृति, लोक परंपरा और लोक रूढियों के विविध पक्षों को नये आयामों द्वारा सृजित करने की चेष्टा की| रैदास एक पद में कहते हैं कि-

"चमरटा गाँठि न जनई! लोग गठावें पनहीं!
आर नहिं जिह तोपउ, नहीं रांबी ठांऊं रोपउँ!
लोग गांठि गांठिखरा बिगूचा! हउ बिन गांठे जाइ पहूँचा
रविदास जपै रामनामा!मोहिजम सिव नहिं कामा!"[5]

संत रविदास प्रतीकात्मक स्वर में अपने कर्मसौंदर्य को व्याख्यायित करते हुए बताते हैं कि वे जूता गांठना नहीं जानते किंतु लोग उनसे जूता गंठवाना चाहते हैं| वे सूजा या रांपी किसी का भी प्रयोग नहीं करते| लोग उनसे अच्छे गांठने की आशा करते रहे और वो बिना गांठे ही पहुँच गए अर्थात सिद्धि प्राप्त कर लिए| उन्होंने यह भी कहा कि वे केवल राम नाम ही जपना जानते हैं और इसी के सहारे यम के फंदे (आवागमन या मृत्यु) से मुक्त हो गये| जाहिर है कि नाम जप प्रक्रिया के द्वारा सभी संत कवि ईश्वरोपासना करते हैं| इस नाम जप पूजा पद्धति में किसी प्रकार के बाह्यडंबर की आवश्यकता नहीं होती साधक सिर्फ अपने आराध्य का नाम स्मरण पूरे दत्तचित्त से करता है और अपने अरुप ईश्वर से साक्षात्कार करता है|

संत रैदास अपने काव्य लोक में श्रमजीवी संस्कृति की प्रस्तावना करते हैं| उनकी काव्यदृष्टि में श्रमशीलता, प्रेमशीलता और कर्म सौंदर्य का अद्भुत योग है| कहना व्यर्थ नहीं होगा कि रैदास श्रेणीबद्धता के नहीं अपितु श्रमबद्धता के सशक्त कवि हैं| वे अपने काव्य में श्रमशील शक्तियों की बखूबी शिनाख्त करते हैं| भक्ति और श्रम समन्वय स्थापित कर रैदास अपने समय की विशिष्टता का परिचय देते हैं| हम सभी जानते हैं कि हमारा समाज सदियों से दो संस्कृतियों या परंपराओं श्रमशील और वैदिक

परम्परा के द्वारा संचालित होता आया है| श्रमशील परंपरा अपने भरण पोषण के लिए कर्म के वैशिष्ट्य को अपनाती है जबकि वैदिक परम्परा में जीवन निर्वाह के लिए कर्मकांड और अनुष्ठान का सहारा लेती है| रैदास एक पद में रेखांकित करते हैं कि-

"रैदास श्रम कर खाइहिं, ज्यों लों पार बसाय
नेक कमाई जो करे, कबहुँ न निहफल जाय|"[6]

अन्यत्र भी श्रम सौंदर्य की महिमा का बखान रैदास ने अत्यंत उदात्त तरीके से किया है ऐसा ही एक पद देखिए जहाँ रैदास प्रस्तावित करते हैं कि श्रम को जो ईश्वर जान कर दिन रात पूजते हैं. ऐसे श्रमशील भक्त जीवन में सदा सुख चैन का लाभ करते हैं.

"श्रम को ईसर जान के, जो पूजे दिन रैन
रैदास तिन्है संसार में, सदा मिले सुख चैन|"[7]

दिलचस्प है कि रैदास के लोक में कोई हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं है| उनके लोक में हिन्दू और तुरुक में कोई विभेद नहीं है| ये दोनों एक द्वार से उत्पन्न हुए हैं| दोनों में प्राण वायु समान है| इसलिए रैदास दोनों को कहते हैं कि-

"हिन्दू तुरक में नहीं कुछ भेदा, दुइ आयहु इक द्वार
प्राण पिंड लोहु मांस एकइ, कहै रैदास विचार|"[8]

संत रविदास ने अपने स्वतंत्र, सामाजिक, राजनीतिक और भाषागत चिंतन द्वारा मध्यकालीन सत्ता संघर्ष में हस्तक्षेप करते हुए वैकल्पिक समाज (बेगमपुरा का यूटोपिया) के सौंदर्य को रचा| इस बेगमपुरा या बेगमपुर का वैशिष्ट्य यह है कि यहाँ किसी तरह का दुःख, संताप नहीं है| यहाँ रहने के लिए पूजा-पाठ के लिए किसी तरह का टैक्स आदि नहीं लगता| यहाँ जाति आधारित धर्म तंत्र नहीं हैं अर्थात किसी प्रकार का ऊंच-नीच का वैमनस्य नहीं है| संत रविदास की कविता मध्यकालीन सत्ता संघर्ष में सशक्त हस्तक्षेप की तरह है| कहना व्यर्थ होगा कि मध्यकालीन सत्ता संघर्ष में हस्तक्षेप से ही संपूर्ण संत काव्य के रचनात्मक आयाम निर्मित हुए हैं|

"बेगमपुरा सहर का नाऊँ, दुख अंदोह नहिं ते ढाऊँ!
ना तसबीस खिराजु न मालु, खौफ न खता न तरसुजवाल!!
कायम दायम सदा पातिसाही, दाम न साम एक सा आही!
आबा दान सदा मशहूर, जहाँ गनियां बस मामूर!!
सैंर करैं ज्यों ज्यों मन भावै, हरम महल मोहि को अटकावै!

कह रैदास खलास चमारा, जो उस सहर सो मीत हमारा!![9]

अर्थात, यहाँ संत रविदास अपने वैकल्पिक शहर बेगमपुरा की अच्छाईयों को रेखांकित करते हैं| उनके इस बेगमपुर शहर के निवासियों को किसी प्रकार के दुख की चिंता नहीं सताएगी| यह शहर अपराध रहित शहर होगा और यहाँ किसी तरह की दंडात्मक कार्रवाई भी नहीं होगी| खास बात यह की यहाँ के निवासी किसी तरह के भय और दहशत से मुक्त निर्भयतापूर्ण जी सकेंगे| संत रविदास के इस बेगमपुरा शहर में शासन तंत्र प्रणाली भी अत्यंत उन्नत किस्म की होगी| यह शासन प्रणाली पूर्णतः संविधान सम्मत होगी| इसी क्रम में वे अपने इस वैकल्पिक समाज की एक और महत्वपूर्ण खूबी बताते हैं कि मेरे इस बेगमपुर शहर के लोग सुखी और समृद्ध होंगे| जाहिर है कि ऐसे नायाब शहर की कल्पना संत रविदास ने की है| अंत में वे कहते हैं कि सभी तरह के माया-मोह से निरापद संत रविदास की संगत उसे नसीब होगी जो उनके सपनों के शहर बेगमपुरा का निवासी होगा|

बहरहाल, संत रविदास की लोक दृष्टि अत्यंत व्यापक और विराट है| उन्होंने अपने काव्य लोक में ऐसे वैकल्पिक समाज की अवधारणा प्रतिपादित की है जहाँ कोई भूखा नहीं सोएगा अन्न की उपलब्धता सभी तक सुनिश्चित किया जाएगा| जहाँ राजा और प्रजा सौहार्द पूर्वक उन्मुक्त विचरण करेंगे|

"ऐसा चाहों राज मैं, जहाँ मिलै सबन्ह को अन्न!
राजा परजा मिलि बसैं, रैदास रहैं प्रसन्न!"[10]

रैदास के लोक में जाति आधारित धर्म तंत्र नहीं है| वहाँ जाति से बढ़कर कर्म का महत्व है| रैदास एक पद में कहते हैं कि किसी की जाति मत पूंछिए जाति-पाति का कोई मौलिक महत्व नहीं है| यहाँ तो सब ही उस प्रभु के राम के पूत हैं राम सबका खेवनहार है-

"जनम जात मत पूंछिए, का जात अरु पात?
रैदास पूत सब प्रभु के, कोउ नहिं जात कुजात|"[11]

इन्ही भावों की अभिव्यंजना इस पद में भी संत रैदास प्रतिपादित करते हैं कि जाति पांति के तांडव ने मनुष्यता के बुनियादी सरोकारों को भी प्रश्नांकित किया है|

"जात पांत के फेर में, उरझ रहे सब लोग
मानवता कूं खातहै, रैदास जात का रोग|"[12]

जाति के नासूड की शिनाख्त मध्यकालीन संतों ने बखूबी की है चाहे कबीर हों अथवा रैदास सभी जाति श्रेष्ठता के खिलाफ हैं| जाति की अवधारणा को ये संत प्रायः समूल नष्ट करने की जोरदार

वकालत करते हैं और जाति आधारित धर्म तंत्र के स्थान पर समता, समानता और बंधुत्व से आप्लावित लोक की परिकल्पना करते हैं. कबीर एक पद में कहते हैं कि-

"जाति- जाति के पाहुने, जाति जाति के जाय
साहिब सबकी जाति है, घट घट रहा समाय|"[13]

गौरतलब है कि संत रैदास ने भी कबीर की लोक परंपरा को आगे बढाते हुए जाति संरचना की अत्यंत जटिल तहों को निम्न पद में उजागर करते हैं जहाँ वे प्रस्तावित करते हैं कि भारतीय जाति संरचना ऐसी है जैसे कैले के पेड़ में अनेकों तहें होती हैं. यहाँ प्रत्येक जाति की भी अनेकों उपजातियाँ हैं जो परस्पर श्रेष्ठता बोध हासिल करने के लिए संघर्ष रत रहतीं हैं| इसी पद में संत रैदास अत्यंत महत्वपूर्ण और बुनियादी स्थापना को लाते हैं कि जब तक इस जाति आधारित व्यवस्था का समूल नाश नहीं होगा तब तक मनुष्य-मनुष्य में प्रेम भाव, मनुष्यता बोध पल्लवित नहीं हो सकता है और न ही मनुष्य जाति में एकता स्थापित किया जा सकता है-

" जात–जात में जात है, ज्यों केलन के पात
रैदास न मानुष जुड़ सकैं, जो लों जात न जात"[14]

कहने का आशय की रैदास हों अथवा कबीर सभी संतों की लोक दृष्टि में जाति के प्रश्न, मनुष्यता बोध के प्रश्न, नाम स्मरण के प्रश्न पुन:-पुन: आतें हैं| जहाँ ये संत एक समरस समाज की परिकल्पना करते हैं|

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि संत शिरोमणि रैदास की लोक दृष्टि में समता, समानता, न्याय और बंधुत्व के सरोकारों का अद्भुत योग है| उनकी लोक दृष्टि में कोई जाति पांति के बंधन नहीं हैं| वे ऐसे लोक की परिकल्पना के हिमायती हैं जहाँ हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई जैसा कोई विभाजन नहीं है| उनकी लोक दृष्टि समरसतावादी है| वे ऐसे बेगमपुर लोक की कल्पना करते हैं जहाँ मनुष्यता का व्यापार हो जहाँ कोई द्वेष भावना नहीं हो जहाँ बुनियादी सुख-सुविधाओं की उपलब्धता हो ऐसे लोक की कल्पना के प्रतिपादक संत रैदास जाहिर तौर पर मनुष्यता के विराट् आयामों को प्रस्तावित करने वाले रचना कार हैं|

"रैदास जू है बेगम पुरा, उह पूरन सुख धाम
दुख अंदोह अरु द्वैष भाव, नाहिं बसै तिहि ठाम|"[15]

संदर्भ :

1. डां. नगेन्द्र सं., हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 116
2. गोपेश्वर सिंह, भक्ति आन्दोलन और काव्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 37
3. डां. शुकदेव सिंह सं, रैदास बानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 61
4. गोपेश्वर सिंह, भक्ति आन्दोलन और काव्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 43
5. योगेन्द्र सिंह, संत रैदास, लोकभारती पेपरबैक्स,इलाहाबाद, पृष्ठ 133
6. डा. धर्मवीर, महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 525
7. पूर्ववत्, पृष्ठ 525
8. पूर्ववत्, पृष्ठ 501
9. श्रीमती पद्मावती झुनझुनवाला, सन्त रैदास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 95
10. डा. धर्मवीर, महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 503
11. पूर्ववत्, पृष्ठ 499
12. पूर्ववत्, पृष्ठ 499
13. पूर्ववत्, पृष्ठ 337
14. पूर्ववत्, पृष्ठ 499
15. पूर्ववत्, पृष्ठ 50

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

Changing Condition of women in Kumaun Mandal from Pre-Independence to the Present

Professor Girish Ranjan Tewari (H.O.D.),
Jashoda Bisht (Research scholar)
Department of Journalism and Mass Communication,
D.S.B. Campus, Kumaun University Nainital, Uttrakhand

ABSTRACT

Women issues are rooted in depth in Kumaun Mandal. The females are known as the backbone of Kumauni society, they are perfect in household activities and the outside work as well. From dawn to dusk the females perform various duties as looking after their animals, kids and senior citizens of the family. The women in Kumaun Mandal have been facing many challenges but the issues like child marriages, child motherhood, health issues, rape, domestic violence, selling of a girl child, forced prostitution etc. are such issues which cannot be separated from the life of Kumauni women. The rape cases which are registered in Uttrakhand are especially committed by the keen and family members or neighbors of the victims. According to the news reports in most of the cases the girls were raped by their step fathers, uncles, brothers etc. on 22 April, 2017, a 13 year old girl from *Rajpura Haldwani* was raped by her step father who was her former uncle. In another case on 14 may, 2013, two real sisters (both were minor) sold one 17 year girl in Kotdwar even the police was also involved in this case. There are so many missing females in Kotdwar who couldn't be found which indicates the status of human trafficking in this area. The cases related to crime against women are hardly registered hence the condition of women in Uttrakhand is pathetic. In Kumaun Mandal nearly one woman from each household goes through any type of violence but they don't file any cases against such crimes because the females tend to be tolerance and should think about the so called family image.

Kumaun Mandal is ignored by the government because of the poor leadership rather than Gadhwal Mandal. The government is opening more vine shops instead of industries and educational institutions. The family income (basically earned by the females) goes behind liquor and gambling by the man if the females oppose this they get reward by domestic violence, bashing, abusive language, disrespect and torture at home. Sometimes the females themselves caught in this dirty business of selling liquor. One similar case was highlighted in 2011 when *Sheela Lohni* of *Sera Suraidhar* was set on fire by her drunken husband and the land lord of that house launched an FIR claiming that she had damaged to property worth 25 lakh instead of the crime committed by the man. In further investigation the lady of the house *Manju Joshi* found guilty for keeping liquor of worth 25 lakh for selling purpose. In fact the

women are found guilty in many cases of crimes against women in Kumaun Mandal, which indicates the seriousness of the increasing women issues in society.

INTRODUCTION

Women issues in Kumaun Mandal before independence

The women in Kumauni society have been facing challenges for many centuries. One of the challenges intended for the Girls of a particular caste in Kumaun Mandal as well in Gadhwal was forced prostitution. "Nayak" was one of the famous caste of Uttrakhand belongs to Ramgarh of Nainital district, Patti Givad, Naya Chokot, and Katarmal of Almora district, some villages of Pithoragarh, Kali Kumaun and Patti Malla-Talla, Kalighat, Langoor and Udaypur of Garwal. This caste was following a vulgar tradition where they forced their daughters to involve in prostitution and earn the livelihood for the entire family. They started sending their Girls to Meerut, Moradabad, Bareilly, Delhi, Lacknow, and Mumbai and even sold to the Britisher's. The leaders of Uttrakhand never took interest in this matter because it belongs to a particular caste but when these girls were being called "Pahari prostitutes" by the outsiders then the local leaders started a campaign for removing this tradition from Uttrakhand.

In 1911-12, Arya Samaj took interest in this matter, later *Badri Dutt Pandey, Govind Ballabh Pant, Krishnand Shastri, Devi singh* and other political leaders of Uttarakhand supported this movement but the Nayak girls were not ready to get rid of this tradition. The local journalist furthermore joined this movement and constantly wrote in Almora Akhbar, Gadhwali, Kumaun Kumud, Shakti etc. in 1929 the Nayak Sudhar Bill was passed where the prostitution became illegal for the girls below the age of 18, but still this evil system could not stopped. *Heera Devi* a socialist requested to the Nayak Girls –"I request to my Nayak sisters to be progressive for making their life better, if you want to sell your body, than why you are not devoting it for nation building? It will surely improve your present and after life". In 1931 again ten new rules were introduced under the Nayak improvement bill but still the tradition is continuing in Uttrakhand. This movement could not became successful because of the involvement of one particular caste and their careless attitude, but there should be some strict laws for banning such immoral traditions in society,

Women issues in Kumaun Mandal after independence

The people of Kumaun Mandal were always neglected by the government. Although the people of Uttrakhand had a long struggle for the separate state but they could not successes in carving the separate state, the women were still struggling for the daily needs, rights, respect, and equal position in society etc. Kumauni women's were dominated even after independence; their husbands were busy in gambling and drinking. On top of that the work performed by the female comes under non-economic activities; they had no right on property, land, children, animals, house and other important areas. These females were forced to sell their body, work alone in their fields, the girls were married soon and no provision of re-marriages was there for the child widows. There were some major following issues faced by women in Kumaun Mandal after independence:-

- **Alcohol and Drugs** was commonly used by the males in Kumaun Mandal, and it was a burning issue for the whole society. In 1984 an anti liquor movement "Nasha Nahi Rojgar Do" was led by the "Uttrakhand Sangharsh Vahini", which came under "Uttrakhand Mahila Manch" later. (Pandey, 2016)This agitation could never get the government support; neither B.J.P. nor I.N.C leaders took interest in replacing the vine shops from Kumaun Mandal. This agitation widened in Uttrakhand but the new liquor shops were proposed by the government even in the interior areas which were even not developed properly. Hence people were more interested in selling and consuming alcohol rather opening schools or other employment opportunities. The crime rates were also increasing due to the consumption of liquor and the condition of women became worse after independence in Uttrakhand.
- **Education and employment** was just a dream for the youth, the young boys were more interested in army and laborer work due to lack of education. Most of the youngsters migrated towards the plain regions and never came back. This attitude was frustrating the women and they agitated for education and employment opportunities but the constipated ideas of the government never helped any movements in Kumaun Mandal. The Women also blamed media for irresponsible attitude towards these movements as this news got a very little space by most of the newspapers and were not highlighted by electronic media.
- **Politics and Policies** were the only hope of women in Uttrakhand, and they switched this movement towards politics. The slogans *"vote ki takat samajhkar, vote dene aa rahi, mil kar ham apni, jindagi badlane ja rahi. Haq, samman, or vikas ki ladai me, ham auratai barabar ki bhagidar hain".* Were shouted everywhere. Now they participated in elections but they face another challenge here, on 8 may, 2007, out of 6086 candidate's only 369 females won which was 6% of the 403 seats. The list was as follows-

Political Party	Total Participants	Women Participants
BSP	403	14
SP	393	27
BJP	350	34
INC	393	36
Rastriya Lok Dal	254	15
CPI	21	01
BKP (MAALE)	33	03
BKP (CPIM)	14	0

The women in Kumaun Mandal did everything for overcoming from all problems, poorty, unemployment, domestic violence, crimes against women, education, health facilities and

more but the things were out of control. The condition was always challenging for women and now the situation is worse because the lack of resources and unemployment people started migration, hundreds of villages in Kumaun Mandal are now barren but still there is a ray of hope that one day this region will flourish and develop.

Role and contribution of women during Uttrakhand state struggle movement

In the medieval period, the Uttarakhand region was consolidated under the Garhwal Kingdom in the west and the Kumaon Kingdom in the east. During this period, learning and new forms of painting (the Pahari School of art) developed. Modern-day Garhwal was likewise unified under the rule of Parmars who, along with many Brahmins and Rajputs, also arrived from the plains. After India attained independence from the British, the Garhwal Kingdom was merged into the state of Uttar Pradesh, where Uttarakhand composed the Garhwal and Kumaon Divisions. Until 1998, Uttarakhand was the name most commonly used to refer to the region, as various political groups, including the Uttarakhand Kranti Dal (Uttarakhand Revolutionary Party), began agitating for separate statehood under its banner. Although the erstwhile hill kingdoms of Garhwal and Kumaon were traditional rivals the inseparable and complementary nature of their geography, economy, culture, language, and traditions created strong bonds between the two regions. These bonds formed the basis of the new political identity of Uttarakhand, which gained significant momentum in 1994, when demand for separate statehood achieved almost unanimous acceptance among both the local populace and national political parties.

The most notable incident during this period was the Rampur Tiraha firing case on the night of 1 October 1994, which led to a public uproar. On 24 September 1998, the Uttar Pradesh Legislative Assembly and Uttar Pradesh Legislative Council passed the Uttar Pradesh Reorganization Bill, which began the process of forming a new state. Two years later the Parliament of India passed the Uttar Pradesh Reorganization Act, 2000 and thus, on 9 November 2000, Uttarakhand became the 27th state of the Republic of India.

Role and contribution of women in making of Uttrakhand

In the beginning of 20^{th} century the women in Kumaun Mandal participated clearly in political activities. They left their houses, restrictions of their families, all their household duties and become an icon for the public. Although there were thousands women who participated in the making of Uttarakhand but here are some important women who played a crucial role in this movement.

1. **Bishani Devi Sah**- Bishani was born on 12 October, 1902 in Bageswer. She was married at the age of 16, and soon lost her husband. The family and society started torturing and blaming her for the death of her husband, so she decided to join the agitation. She was arrested in 1930 and became one of the most active women revolutionary UP which was discussed in Amrit Bazar magazine of 10 October, 1930. She died at the age of 93 in 1974, the people of Almora still remembers her as Bishani Bubu for her bravery and devotion for the people.
2. **Kunti Devi**- she was born in a prosperous family of Almora in 1906 and married to Gangilal Verma at the age of 13^{th}. At a very young age she had two sons and one

daughter and in her young age she lost her husband. After losing her husband she joins the campaign of the Uttarakhand state struggle movement. She started uniting the women of Kumaun Mandal and made many women groups. She herself march through Almora, Haldwani, Kalaghungi, Kotabag, Patkot, Don Pokhar, Okhaldungha, Talli Seri, Betalghat, Simlkha, Majhedi, nainital etc. and encourage women for contributing in the agitation.

3. **Bhagirathi Devi Verma**- she was born on 10 November, 1904 in malli Bazar Almora. She was married at a very young age with Laxmilal Verma. She was the women of high willpower and united women such as Sheela Devi, Manoharidevi, Shanti Devi, Parvati Devi, Sulochana Devi, Daya Devi, Bhuvaneshawari Devi, Heera Devi, Bhagwati Devi, Basanti Devi, Munni Devi and many more women. She started her struggle against liquor and led the anti liquor movement in Kumaun Mandal. She was honored by the contemporary state government for her contribution and devotion.
4. **Tulsi Devi Rawat-** Tulsi Devi was born at the age when education was less respected for girls in society in 1904. She was very studious and found of reading but her wish was not fulfilled by her father. She was married with Durga Singh Rawat who was a tax officer in Pithoragarh and a native of Almora. She strongly opposed the dominance of women in family as well in society. She was a writer and persist her struggle through writing. She wrote for magazines, newspapers and her poetry was impressive. She believe that women are as powerful as men, she encourage women like-

   "E bahin jag utho, vir tatvo ko apnao.
   Rastra ki pukar par, balidan ho jao.
   Vir janni ho tum, tanik na ghabrao.
   Rastra ki pukar par balidan ho jao. "

   She also opposed untouchability, caste system, domestic violence and other social issues. She believed that girls should be equally educated for the betterment and development of society.
5. **Bhagirathi Devi Chauhan**- she was born at Natthor in Badhiyawala village district Bijnor in 1918. She was married with Tughlaq singh Chauhan of Udaypur. She learns the art of archery, shooting etc. She worked for the upliftment of the *"Nayak"* girls and trained them in self employment. She also led the anti liquor movement and worked for women health care. Her bold and lioness attitude forced the government to arrest her so many times; even she gave birth to her son in jail which was a unique incident. The people of Uttrakhand will remember her for her courageous attitude.
6. **Durga Devi Pant**- Durga Devi was born in Almora at Selakhola (Thapalia) in 1892. Her father was a social worker and founded a primary school in his area where she studied till class 4^{th}. She was married with Hargovind Pant who was a freedom fighter. Along with her husband she united Kunti Devi, Bishani Sah, Tulsi Rawat, Jivanti Thakurani and more than 100 women and made a women organisation. After the arrest of Badri Dutt Pandey and other leaders she organised meetings at Nanda Devi Ground Almora to support the movement. She led the anti liquor movement in many areas of Kumaun Mandal as well supported the women. As she had no children

hence she treated everyone like her own child which made her every body's mother. Her motherly nature and contribution will be remembered for years in Kumaun Mandal

7. **Meera Behan**- Meera Behan was a character inspired by Gandhiji. Her real name was ***Medeleen sleam*** born in Britain in 27 nov, 1892. She read about Gandhi in Romarola's book and came to India. She followed Gandhiji and learned Indian art and culture for one year. She joined Gandhiji and his Satyagarha's . She came in Haridwar in 1945 where she worked for the rural people. She settled in Tehari Gadhwal and aware people about the importance of trees, environment and other social issues. She worked for women empowerment and wrote about Gandhi. She was awarded with Padamvinhushan by the Indian government for her services and worked for India. Tara Devi- she was the mother of the most wanted freedom fighter Mr. Revadhar Pandey. She witnessed the torture and restlessness life of the families of these freedom fighters. She supported the women rights and gave equal respect to the females in families as well in society. When the females were dominated and ill treated in society and it was believed that all the religious rituals should be performed by men she declare that in the absence of her son (Mr. Revadhar Pandey), her daughter in law will perform the funeral and other rituals after her death. She was the women of high values and courage. Although she never participated openly in the movement but she gave her great contribution behind the curtain. She also became the role model for the females of Kumaun Mandal.

List of some important women in districts of Kumaun Division-

1. **Almora**- Nevati Devi, Jevati Devi, Smt. Bishani Devi, Smt. Bishnuli Devi and Harpyari.
2. **Nainital**- Kanti Devi, Chandra Devi, Dhanna Devi, Padi Devi, Pani Devi, Pooran Devi, Smt. Phabiya Devi, Bishani Devi, Bhagirathi Devi, Malti Devi, Vidhya Devi 'Desh Sevak', Shobhawati Mittal, Saraswati Devi and Saraswati Devi.(Kumaun Division)
3. **Dehradun**- Uma Devi, Chandrawati Lakhanpal, Prema Devi, Yashodhara Devi, Yagyawati Devi, Ramlubhai Devi, Vishnu Devi, Shyama Devi, Smt. Sharnada Tyagi and Saraswati Devi. (Deharadun Division)
4. **Chamoli**- Smt. Lati Devi, Smt. Kuvari Devi, Smt. MadoGari Devi, Smt. Mukari Devi, Smt. Maldeai Devi, Smt. Seeta Devi, Smt. Dhuma Devi, Smt. Rajeshwari Devi and Smt. Sumati Devi.
5. **Pithoragarh**- Gomti Devi.

Uttrakhand is also well known for the mass agitation of the 1970s that led to the formation of the Chipko environmental movement and other social movements. Though primarily a livelihood movement rather than a forest conservation movement, it went on to become a rallying point for many future environmentalists, environmental protests, and movements the world over and created a precedent for non-violence protest. It stirred up the existing civil society in India, which began to address the issues of tribal and marginalized people. So

much so that, a quarter of a century later, India Today mentioned the people behind the "forest satyagraha" of the Chipko movement as among "100 people who shaped India". Gaura Devi was the leading activist who started this movement other participants was Chandi Prasad Bhatt, Sunderlal Bahuguna, and Ghanshyam Raturi. Likewise the women also played important role in Uttarakhand state movement.

METHODOLOGY

This study is descriptive in nature. It covers secondary data. The secondary data were collected from standard books, journals, magazines, newspaper and website.

LIMITATIONS OF THE STUDY

Due to time constraints, the study has been conducted with limited sample size. The researcher has concentrated on the **changing condition of women in** Kumaun Mandal only.

CONCLUSION

The women here are highly empowered given all the issues as they have to take charge of their families. In a region popular for tourism and alcoholism at the same time, the ruling perception ends with scars on a woman's body. Here the schools and houses are on the toughest terrain and the resources don't exist largely. Sometimes farming is the only option. In majority cases they are unemployed and addicted to the toxic things. So from roof to ground a woman handles all the necessary aspects of running a family. Role and contribution of women during Uttrakhand state struggle movement was very important and in many areas of Uttrakhand the number of female voters is more than the males but still the women related issues from the election campaign is missing. The women in Kumaun Mandal are still struggling for the basic issues like water supply, sanitation, health facilities, education, employment, consumption of liquor. The health of hill women could be intrinsically linked with the status of farm women who play an important role in agricultural development. In India, they constitute about half of rural population 30% of them are directly engaged in farming. On the domestic side she is wife, mother and housewife as a productive member in agriculture too she toils unpaid and her contribution in agriculture goes unnoticed and remain as invisible works in the farm.

REFERENCE :

1. Chauhan, J. (1998, july-december). Savtantra Senani. *Uttra mahila patrika*, pp. 59,60,61.
2. Fonia, K. s. *Uttranchal Rajya nirman ka sankshipt itihas.* binsar publishing house
3. Kaira, S. *kumaun me mahilao ka rastriya sangram tatha sthaniya jan aandolano me yogdan(20th century).* unpublished.
4. Kaira, S. (1998, july-december). Prakher Sangrami Mahilaaei. *Uttra mahila patrika* , pp. 52,53,54,55,56,57.

5. Kandpal, D. (1998, July-December). Moin Karanti Ki Purodha: Tara Devi. *Uttra Mahila Patrika* , pp. 62,63.

6. Negi, K. (1998, July- December). Meera Bahan "ek vilakshan vyaktitva". *Uttra Mahila Patrika* , pp. 57,58.

7. Pandey, V. (2016, July-September). Nashakhori ke virudhha janta ki akjutata ka sahi vakkt. *Uttra mahila Patrika* , p. 4.

8. Rautela, R. (2017, october-december). Hinsa v Sharab ke Khilaf Chuppi Todne Ke lie Sangharsh. *uttra mahila patrika* , p. 28.

9. Sah, J. (1998, july-december). Nayak Sudhar Andolan. *Uttra mahila patrika* , pp. 47,48,49.

10. Tandon, D. K. *Bhartiya sanskriti.* estern book linkers Delhi.

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

'दलित जागरणः दलित विचारकों के स्वर'

यशवन्त सिंह वर्मा
शोध छात्र
शिबी नेशनल पी0जी0 कॉलेज, आजमगढ़
वीर वागरिस सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के दलित जागृति उपक्रम के बाद दलित रचनाकारों ने सवर्णों के अन्यान्य पर प्रहार करना शुरू कर दिया। डॉ0 अम्बेडकर ने दलितों को स्पष्ट रूप से बता दिया कि तुम्हें माँगने से कुछ मिलने वाला नहीं है इसलिए दलित रचनाकारों ने अपने लेखन को ही अस्त्र बनाया। यह प्रहार मुख्य रूप से दलित कवियों के कविता में व्यक्त हुआ। यह एक विद्रोही स्वर है जिसमें सवर्णों द्वारा किये गये का प्रत्याख्यान है। सवर्णों द्वारा किये गये हर प्रकार के अन्याय और शोषण का इन कवियों ने पर्दाफाश किया है इन कवियों में एक उल्लेखनीय कवियित्री एवं रचनाकार हैं सुशील टांकभौरे वे नारी के साथ हुए अन्याय की चर्चा करते हुए कहती हैं[1]–

अधिकतम कितना मूल्य
एक निरीह महिला को
सरे आम नंगा करने का?
एक इंसान को बेबसी की
अन्तिम सीमा तक
पहुँचा देने का।

डॉ0 सुशील टांकभौरे दलित नारी को यहाँ परिभाषित करती सी दीखती हैं। वे नारी के अपमान की चर्चा करते हुए कहती हैं हमें अब आश्वासन नहीं पूरी स्वतंत्रता चाहिए। वे कहती हैं मुझे खुला आसमान चाहिए। वे अपने निबन्ध संग्रह 'परिवर्तन जारी है' में अपने विचारों का खुलासा करती हैं उनके अनुसार इस देश में सबसे दीन–हीन दशा नारी कीहै। धर्म ग्रन्थों, सवर्णों, निम्न वर्गों सभी ने नारी का शोषण किया है। अन्याय का विरोध करने वाले दलित रचनाओं की एक लम्बी शृंखला है। दलित रचनाकार या चिन्तक जब वर्णव्यवस्था के साथ–साथ आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में सवर्णों के शोषण देखते हैं तब उनका प्रहार अनेक क्षेत्रों में हुए अन्याय पर करता है। आज जो प्रहार दलित रचनाकार कर रहा है वह उसके संघर्ष का अंग है कभी हीरा डोम की आत्मा पुकार उठी थी[2]–

हमनी के राम दिन दुखता भोगत बानी
हमनी के सहचे से विनती सुनाइये
हमनी का दुःख भगवनाओं न देखताने
हमनी के कबले कलेसवा उठाइये।

सैकड़ों वर्ष पहले 'हीरा डोम' ने पीड़ित होकर आर्तस्वर से मानवता को पुकारा था। आज का दलित उस स्थिति से बाहर निकल चुका था। आज यह संघर्ष करने की स्थिति में है। अब भारत में प्रजातंत्र है। यह प्रजातंत्र 70 वर्ष से अधिक पुराना हो चुका है। लेकिन आज भी यह नहीं कहा जा सकता कि दलित के सामने समस्या नहीं है भले ही आज हीरा डोम के समय का भारत नहीं है। क्या इस प्रजातंत्र में आज भी प्रजातंत्र का बोलबाला है? उत्तर है नहीं। प्रजातंत्र प्रशासन की उत्तम प्रणाली है इसमें जातिवाद, धर्मवाद के लिए कोई स्थान नहीं होता लेकिन जातिवाद और धर्मवाद का शैतान अभी मरा नहीं है।

सभी लोगों के साथ दलित भी प्रजातंत्र के सुहावने दिन का सुहावने दिन का सुनहला सपना लेकर आया था आज तक उसे यह हासिल नहीं हो सका।

यही कारण है कि आज का दलित रचनाकार सवर्णों सामाजिक धार्मिक दर्शन पर प्रहार करता है आज का दलित कवि समता प्राप्त करने के ध्येय से वर्तमान व्यवस्था की आलोचना करता है।

दलित कवि कहता है कि यहाँ हमने जन्म जरूर लिया किन्तु हमारा जीवन अवांछित सदस्य की भाँति रहा है। हमारे जीवन के हिस्से में सुख और चैन के स्थान पर पीड़ा मिली है। हम दिन रात श्रम करते हैं किन्तु हमारी स्थिति में कोई परिवर्तन आया है। नीतियाँ, परम्परा, मान्यताएँ हमें एक उपोत्पाद की तरह काम में लेती है[3]–

पैदा हुए वैसे ही
जैसे जंगल में उगते हैं पेड़
पहाड़ पर पत्थर
नदी में रेत
रेत में सीपियाँ
सीप में मोती
मोती से बनती है माला
जिसे गले में डाल कर
बैठते हैं वे राज सिंहासन पर

यदि ऊपर के पद बन्धों पर हम विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि दलित एक 'उपोत्पाद' है जिसका उपयोग किया जाता है किन्तु उसे समाज में स्थान नहीं दिया जाता इस पीड़ा को वह भूल नहीं पाता।

प्रारम्भ से ही दलित शान्तिवादी रहा है किन्तु हैरानी की बात है कि उसके शान्ति भावना का माखौल उड़ाया जाता है। सामान्य रूप से प्रजातंत्र में समानता, स्वतंत्रता की अपेक्षा की जाती है किन्तु जब ऐसा होता नहीं दीखता तब दलित वर्ग की बौखलाहट बढ़ जाती है। उस समय दलित को यह भूमि अभिशप्त दिखायी देती है। वह सोचता है कि मैं जिस भूमि पर निवास करता हूँ उससे सम्बन्धित हवा पानी सब में मेरा हिस्सा है।

दलित जब देखता है कि व्यवस्था उसे स्वीकार नहीं करती तब वह उसका निरीक्षण करता है। वह व्यवस्था में दोष पाता है। सवर्णों में अच्छे–बुरे दोनों प्रकार के लोग रहते हैं। सवर्णों में जो मॉडरेट

है कम से कम उन्हें तो इस दोष को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। क्या वे लोग इस भय से भयभीत हैं कि लोग उन्हें उपजी व्यवस्था नष्ट करने वाले कहेंगे। दलित उन लोगो से ये अपेक्षा करता है कि वे लोग अपनी चुप्पी तोड़े[4]–

मैं चाहता हूँ
शब्द चुप्पी तोड़े
सच को सच
झूठ को झूठ कहे।

दलित कवियों ने दलितों की उपेक्षा पर सवाल उठाया है दलितों की उपेक्षा में रूढ़ परम्पराओं का बड़ा हाथ होता है। इसलिए दलित चिन्तक रूढ़ परम्पराओं का खण्डन करते हैं इस खण्डन में मानवतावाद आह्वान करता है। यह एक कटु सत्य है कि हिन्दू रूढ़ परम्पराओं के कारण दलित दलदल में फँसा रहता है। रूढ़ परम्पराएँ अन्य श्रद्धा को जन्म देती है। जहाँ पर अन्य श्रद्धा होती है वहाँ सच्ची श्रद्धा समाप्त हो जाती है। श्रद्धा सच्चे विश्वास पर प्रश्न नहीं उठाती। अन्ध श्रद्धा जीवन को उलझा देती है। इस प्रकार रूढ़ परम्पराएँ समाज को पीछे ढकेलती है। दलित कवि आह्वान करता है कि समूचे मानवता के हित के लिए लोग सम्पूर्ण रूढ़ परम्पराओं का त्याग करे।

डॉ0 एन0 सिंह तो विद्रोही तेवर में से व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का आह्वान करते हैं जो दलितों के श्रम का योगदान लेकर भी उसे उसके अधिकार से वंचित करती है। उनके अनुसार यदि हम कर्म करते हैं तो हमें उसका परिणाम मिलना चाहिए। दलित कवि अपनी कविताओं में बराबर यह सवाल उठाते हैं कि रूढ़ परम्पराओं को दूर कर यथोचित परम्पराओं को शरीर में अपनाना चाहिए। ओम प्रकाश वाल्मीकि पूछते हैं[5]–

यज्ञो में पशुओं की बलि चढ़ाना
किस संस्कृति के प्रतीक हैं
मैं नहीं जानता
शायद उसे आप जानते हों।

ओम प्रकाश वाल्मीकि यह सवाल उठाते हैं कि भारतीय संस्कृति महान है आप 'सत्य अहिंसा परमोधर्मः' का प्रचार करते हैं आज जब स्वयं बलि देते हैं तब आपका कथन उसकी खिल्ली नहीं उड़ाता है?

द्रोणाचार्य और वशिष्ठ के वर्णित कारनामों के आधार पर दलित कवि उन्हें कोसते हैं। द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा कटावा लिया था। द्रोणाचार्य का यह कार्य क्या भारतीय परम्परा अनुरूप नहीं था?

दलित रचनाकारों ने भारतीय दार्शनिक मान्यताओं पर इस प्रकार के अनेक सवाल उठाये हैं। सूरज पाल चौहान ने आत्मा के स्वरूप पर सवाल उठाते हुए पूछते हैं– यदि आत्मा अजर–अमर है तथा सभी जीवों के भीतर निवास करने वाली है तब चांडाल के भीतर वह आत्मा क्यों नजर नहीं आती? फिर कैसे जगत गुरु हो तुम।[6]

फिर कैसे जगत गुरु हो तुम!
और कैसी है तुम्हारी
ज्ञानी जन दृष्टि

जो तुम्हें

मुझमें चांडाल आता है नजर।

दलित रचनाकार सवर्णों द्वारा किये गये अनेक कार्यों को उनके सामने प्रस्तुत कर सवाल उठाते हैं। उदाहरण के लिए रामायण में शंबूक वध की चर्चा आती है। शंबूक को दलित बताया गया है तथा उसका वध राम ने इसलिए किया कि वह तपस्या कर रहा था। क्या यह सामाजिक न्याय की बात है? इसी प्रकार राम गर्भवती सीता को वन में छोड़वा देते हैं। वाल्मीकि अपनी कविता में इस पर कोई खेद नहीं व्यक्त करते जबकि एक क्रौंच पक्षी को रोने पर बहेलिये को अप्रतिष्ठित जीवन बिताने का शाप देते हैं। दलित रचनाकार है तो वह पाठक भी है। क्या किसी जाति के इतिहास की इस प्रकार की गलती पाठक को बुरी नहीं लगती है। सामान्य रूप से समाज के नियम एक से नहीं रहते फिर भी जीवन के सामान्य धरातल पर सवाल उठाना स्वाभाविक है।

इतिहास का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि दलितों के साथ अन्याय हुआ था। इसका प्रमाण प्रो0 रामशरण शर्मा की पुस्तक 'प्राचीन भारत में शूद्र' में ढूँढ़ा जा सकता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि अपनी एक कविता में बस्ती से खदेड़े गये अपने पुरुषों से सवाल करते हुए कहते हैं।[7] हे पुरुखों तुम भूख में अपनी पत्नियों को भूल गये थे। तुम भूख में अपनी पत्नियों को छोड़ मुट्ठी भर चावल की तलाश करते रहे।

ओम प्रकाश वाल्मीकि के अधिकारी बनने के बाद जो लोग उन्हें बैठने नहीं देते थे उनको साथ बैठ कर उन्हें खाने खिलाते हैं। ओम प्रकाश इन बातों के साथ 'जूठन' की चर्चा करते हैं। सवर्ण लोग दलितों से काम करते थे तथा काम के बदले लोगों के भोजन के पश्चात् का जूठन मजदूरी में देते थे। बाल्मीकि माँ ने इस जूठन मजदूरी में देते थे। वाल्मीकि मॉ ने इस जूठन को जमींदार के दरवाजे पर फेंक आती है।

इस सन्दर्भ में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जहाँ शोषक और शोषित होते हैं यहाँ शोषित के साथ अन्याय होता है। दलित वर्ग का शोषण हुआ है किन्तु दुनिया की कोई बात बार–बार कहने से अर्थ हीन हो जाती है। दलित पीड़ा के प्रकाशन की भी सीमाएँ हैं।

आज के वैश्वीकरण के युग में जब संस्कृति अ्रमण हो रहे हैं ऐसा दलित की दोहरी जिम्मेदारी है भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में वर्तमान परिस्थितियों में जो परिवर्तन आया है उसकी उपेक्षा कर कविता, कहानी, उपन्यास तथा आत्मकथा में जो कुछ कहा जा रहा है उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है।

विविध सर्जनाओं के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि ये सर्जनाएँ हिन्दी साहित्य में होती सर्जनाओं अनेक अर्थों में भिन्न है।

इन रचनाओं में आक्रामकता तथा विद्रोह का स्वर है जिस प्रकार विद्रोह स्वर दलित रचनाकारों की रचनाओं में है उनके मूल्यांकित करने के लिए नए सौन्दर्य शास्त्र की आवश्यकता होगी। दलित रचनाकार उसकी आधार भूमि दलित रचनाकार तीन तत्वों पर आधारित मानते हैं–

(1) सामाजिक प्रतिबद्धता

(2) कलाकृति में जीवन मूल्य

(3) पाठक के मन में जगने वाली समता, स्वतंत्रता, न्याय और भ्रातृभाव की चेतना

ऊपर की बातें दलित साहित्य की संवेदना में बहने वाली प्रतिमानों की आधारशिला है।

दलित सौन्दर्य शास्त्र सामाजिक प्रतिबद्धता को मूल्य प्रधान करता है। इसके केन्द्र में दलित है अर्थात् दलित समाज का हित इसमें जुड़ा हो। इस सौन्दर्य शास्त्र में दलित की संघर्ष और पीड़ा को मूल्य दिया गया है। इसकी तुलना में भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की आधार भूमि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पर आधारित है।

रस सिद्धान्त इसकी काव्य–शास्त्र भूमि है। आनन्द इसका लक्ष्य है अर्थात् रस आनन्द मय है। इसके विपरीत दलित सौन्दर्यशास्त्र की भूमि स्वतंत्रता, समता, न्याय एवं बन्धुता को पुरुषार्थ मानती है। दलित समता के लिए संघर्ष करना है। उसका संघर्ष अप्राप्त स्वतंत्र अधिकारों के लिए है। समाज से उसे बहिष्कृत किया गया है यह उसके साथ अन्याय हुआ है। वह घृणित जीवन व्यतीत कर रहा है यह इसके लिए संघर्ष कर रहा है। इस प्रकार दलित सर्जना के पीछे दलित जागृति का स्वर है दूसरे शब्दों में दलित मानवतावाद की लड़ाई लड़ रहा है।

दलित की सर्जना की महत्वपूर्ण भाग जो दलित कविता है उसके अगगढ़े पन पर कोई सवाल उठा सकता है क्योंकि इस कविता पर आंचलिक शब्दावली का प्रयोग है शरण कुमार लिंबाले कहते हैं।[8] आक्रोश कोई शास्त्रीय संगीत नहीं है। आक्रोश को संगीत कैसे कहा जा सकता है मैं शब्द अभिव्यक्ति को शब्द मानता है। वह मुक्ति का आन्दोलन है। वह आन्दोलन ही दलित साहित्य की कलात्मकता है।

दलित साहित्य में पीड़ा, अपमान, व्यथा का उल्लेख है। कुछ आत्मविश्वास भरे कवियों की भाषा में 'लेबरेज' है वे बिम्बयुक्त भाषा प्रयोग करते हैं[9]–

अंधड़ भरे दिन से
जूझते मित्र ने
मौसम को जूता दिखा
चीख कर कहा था कि
धरती बदलती है
बदलते हैं आकाश
हवाओं के रुख
चिड़ियों के पंख

यद्यपि ऊपर की पंक्तियाँ बिंब विधान है किन्तु कविता का स्वर परिस्थिति बदलने की ओर अग्रसर है। समग्र तथा दलित कविताओं में दलित पीड़ा का निर्वचन है। इस निर्वचन में मानवता की पुकार है। इस प्रकार दलित साहित्य की जो नवीनता है उसके कारण उसका मूल्यांकन भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की सहायता से नहीं किया जा सकता।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि रचना पहले आती है आलोचना बाद में। भारतीय आलोचना को देखने से यह पता चलता है कि कभी यहाँ शास्त्रीय आलोचना का बोल–बाला था आज नयी समीक्षा प्रयोग हो रहा है इस समीक्षा का आधार भाषा विश्लेषण है। इसमें केवल भाषा विश्लेषण होता है यह भी बिना सन्दर्भ के छोटी–छोटी कविताओं के लिए यह समीक्षा खरी भी उतरी है। दलित

साहित्य की समीक्षा के लिए दलित विचारकों ने ऐसी सभी समीक्षा की कल्पना की है इसका आधार मार्क्सवादी समीक्षा की भाँति है।

वैसे अभी तक दलित सौन्दर्य–शास्त्र के अनुसार मूल्यांकन निष्पादित नहीं हो रहा है किन्तु संभावनाओं से इंकार नही किया जा सकता।

सच्चाई यह है कि भारतीय सौन्दर्यशास्त्रा के रस सिद्धान्त के आधार पर दलित साहित्य का न्याय पूर्ण मूल्यांकन नहीं हो सकता। क्योंकि दोनों की दिशाएँ अलग–अलग है एक पीड़ा की बात करता है दूसरा आनन्द की दोनों का स्वभाव विपरीत है[10]–

मेरा तेरा मनुवों कैसे एक होई रे
मैं कहता आँखों की देखी
तू कहता कागद की लेखी
मैं कहता आँखों की देखी
मैं कहता सुलझावन हारी
तू राखी अरुझाई रे।

कबीर की दृष्टि और शास्त्रकारों की दृष्टि का अन्तर ऐसा ही था जैसा दलित और सवर्ण साहित्य का।

दलित रचनाकार जीवन में घटित घटना का उल्लेख करता है उसमें जीवन में पीड़ा और अपमान सहा है उसका साहित्य का विषय जीवन का अनुभव। इस सन्दर्भ में एक सुझाव उल्लेखनीय है जैसे ट्रैजेडी के बीच में ड्रैमेटिक रिलीफ उसके आकर्षण को बढ़ा देती है। दलित रचनाकार यदि इसे स्वीकार कर चलता है तो मानक स्थापन में सरलता होगी। डॉ0 नामवर सिंह[11] 'दूसरी परम्परा की खोज' में 'पुष्प लावी' के भ्रम सौन्दर्य का जो चित्र प्रस्तुत करते हैं उससे श्रम का आत्मसम्मान बढ़ जाता है।

संदर्भ :

1. डॉ0 सुशीला टांकभौरे : तुमने उसे कब पहचाना, पृ0 46–47
2. प्रो0 चमनलालः दलित साहित्यः एक मूल्यांकन, पृ0 64
3. ओम प्रकाश बाल्मीकिः बस्स! बहुत हो चुका, पृ0 18–19
4. वही, पृ0 4
5. ओम प्रकाश बाल्मीकिः बस्स! बहुत हो चुका, पृ0 12
6. सूरज पाल चौहान : क्यों विश्वास कर, पृ0 38
7. ओम प्रकाश बाल्मीकिः बस्स! बहुत हो चुका, पृ0 14–15
8. शरण कुमार लिंबालेः दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ0 139 (वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2016 ई0)
9. मलखानः सुनो, ब्राह्मण, पृ0 42
10. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली भाग–चार, कबीर, पृ0 55
11. डॉ0 नामवर सिंहः दूसरी परम्परा की खोज, पृ0 93 (सं0 1989 ई0, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

कोविड–19 एवं नशीले पदार्थों के उपयोग से समाज का पतन

डॉ. लाल सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, विधि विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

प्रस्तावनाः–

समाज वर्तमान में विभिन्न प्रकार की गंभीर समस्याओं का सामना कर रहा है जिस कारण ये समस्याएं स्वयं विभिन्न प्रकार की बढ़ाएँ उत्पन्न कर रही हैं और समाज की सहयोगात्मक सहायता व असहायता से पतन की ओर जाता है समाज के पतन के लिए जिम्मेदार कई कारक हैं, जिनमें बेरोजगारी, गरीबी, धूम्रपान, जातिवाद कलह तथा शारीरिक और मानसिक बीमारी है। और इनमे सबसे प्रमुख कारण ड्रग(नशा) है। हमारे सामने लोगों की विभिन्न समस्यायें है। वर्तमान में नशा समाज की कई समस्याओं में से एक है अब ड्रग के उपयोग से पैदा होने वाली समस्याएं हैं जो समाज के लिए पतन का कारण बन रही हैं। हमारे प्रधानमंत्री जी ने लोगों को जगाने की कोशिश की हैं, उन्होने देश में **मन की बात** कार्यक्रम के माध्यम से नशीली वस्तुओं के उपयोग से होने वाली समस्याओं को गंभीरता से लेने पर बल दिया है ड्रग के कारण ही आतंकवाद बढ़ रहा है और इसी के कारण ही अधिकांशतः परिवार टूट रहे हैं और बच्चों का भविष्य अंधकारमय होता जा रहा है। समान्यतः ड्रग का अर्थ है दवा की खुराक। जहां इन रासायनिक सामग्री को विभिन्न रोगों के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है, उसे दवा कहा जाता है। परंतु धीरे–धीरे अब इसका अर्थ अलग हो गया है। अब ड्रग अपने समानार्थी अर्थ वाले शब्दों से जाना जाने लगा है। इन ड्रग को सक्रिय रूप से अत्यधिक उपयोग से मानव शरीर प्रभावित हो रहे हैं और लोगों में कई गंभीर परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं। वर्तमान में प्रचलित इस नए ट्रेंड से हमारी सदियों पुरानी भारतीय विरासत और संस्कृति प्रभावित हो रही है। अब ये नया ट्रेंड ड्रग ट्रेंड बन गया है और इस नए ट्रेंड ने युवा पीढ़ी को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इन ड्रग सामग्रियों के अत्यधिक प्रयोग से नई पीढ़ी मानसिक और शारीरिक रूप से ग्रसित हो रही हैं। जिससे युवा पीढ़ी मानसिक और शारीरिक रूप से खोखली होती जा रही है। यह नफरत का जहर है, जो भारतीय भविष्य और इसकी गौरवशाली संस्कृति पर संकटों का जाल बना रहा है।

ड्रग की श्रेणियाँः ड्रग के रूप में अनेक ड्रग्स का उपयोग किया जाता है, जैसे अफीम, गांजा, चरस, भांग, कोकिन, मॉर्फिन, ब्राउन–शुगर, योडिन और एस्पिरिन आदि। लेकिन इसको मुख्य रूप से दो श्रेणियों मे रख सकते हैं– नारकोटिक ड्रग एवं साइकोट्रोपिक ड्रग। नारकोटिक ड्रग में अफीम और अफीम से उत्पन्न होने वाली ड्रग्स जैसे– कोडीन, हेरोइन तथा कोकीन, टिंचर्स एवं हेबाइन और मेथडीन आदि। वही साइकोट्रोपिक ड्रग्स में डायजीपम, मोर्फीन आदि शामिल हैं। समान्यतः विशेष अवसरों पर ड्रग्स के स्थान पर शराब जगह ले लेती है, लेकिन जब व्यक्ति एक बार नशीले ड्रग्स का उपयोग करने लग जाता है तो फिर इसको छुड़ाना आसान नहीं रह जाता है। ड्रग की नियमित मात्रा को लेना मानसिक और शारीरिक स्थिति पर प्रभाव डालता है जो मनुष्य और समाज के लिए घातक है।

ड्रग उपयोग के कारणः वैसे तो इसके पीछे मनुष्य की कमजोर इच्छाशक्ति ही होती है इसके अलावा माता पिता का अपने बच्चों पर ध्यान न देना भी एक कारण है, लेकिन फिर भी बहुत सारे ऐसे सामाजिक, मानसिक एवं आर्थिक कारण हैं, यही हम वर्तमान समय की बात करें तो देखेंगे कि **कोविड–19** के चलते लोगों एवं समाज में आर्थिक स्थिति बहुत ज्यादा खराब हो गयी है जिनके चलते व्यक्ति ड्रग्स का उपयोग करने लगता है जैसे आधुनिक दुनिया की दिखावटी चकाचौंध, आधुनिकीकरण, गलत संगत, निराशा, तनाव, जीवन की परेशानियाँ एवं असफलताएं भी एक महत्वपूर्ण कारण है। असुरक्षा की भावना, आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति के लिए स्वयं की निंदा करना, स्वस्थ मनोरंजन की कमी, अश्लील साहित्य और सिनेमा द्वारा नैतिक मूल्य का क्षरण, अज्ञानता, प्रेम में विफलता इन सबसे बढ़कर इसकी मात्रा में वृद्धि हुई, क्योंकि सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का एक आदर्श बोझ अकेलापन है।

ड्रग उपयोग के परिणामः ड्रग का उपयोग करने के कारण समाज में अपराधियों की संख्या बढ़ रही है। ड्रग अन्याय, अपराध, उत्पीड़न, शोषण, दुर्व्यवहार, अराजकता एवं अशिष्टता तथा अनुशासनहीनता को बढ़ावा देता है और बलपूर्वक कुछ भी करवाता है। यदि हम इतिहास की बात करें तो हम पाएंगे कि वैदिक काल में भारतीय समाज में इन ड्रग्स सामग्रियों का उपयोग एवं निर्माण एकाग्रता एवं आत्म–नियंत्रण हेतु औषधि के रूप में उपयोग किया जाता था इसलिए इन ड्रग सामग्रियों का उपयोग गलत तरीके से नहीं किया जाता था और समय एवं परिस्थितियाँ बदली और कुछ वर्षों बाद पूरे भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिक्षेत्र में विभिन्न प्रकार की ड्रग सामग्रियाँ फैलने लगी, जो कि यह समाज और संस्कृति दोनों के लिए ही घातक एवं खतरनाक है, जिस कारण विभिन्न आतंकवादी एवं देशद्रोही संगठन इन नशीली वस्तुओं की तस्करी से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जुडते चले गए हैं। यूरोप में इसका प्रयोग दवा के रूप में और भारत एवं एशिया में इनका उपयोग मुक्त रूप से किया जाता है, वहीं अफ्रीका में इसका उपयोग मजदूरों से अधिक काम लेने के लिए किया जाता है। दुनियाँ में ऐसे बहुत सारे लोग हैं जो कि अत्यधिक दवाओं का प्रयोग करने के कारण भी ड्रग्स लेने के आदि हो चुके हैं। डॉ. कोल्ब ने अपने अध्ययन में पाया कि डॉक्टरों की देख रेख में लगभग 100 लोगों को दी गयी दवाओं के कारण भी ये लोग ड्रग के आदि हो गए थे। डॉ. राम आहूजा ने विश्वविद्यालय के छात्रों के अध्ययन में कहा कि छात्र मनोविज्ञानक कारणों से 45.5 प्रतिशत छात्र, शारीरिक रूप से 15.2 प्रतिशत छात्र, सामाजिक कारणों से 10.9 प्रतिशत छात्र और शेष 28.4 प्रतिशत अन्य कारणों से ड्रग का सेवन करते हैं।

केंद्रीय शिक्षा और सामाजिक कल्याण मंत्रालय द्वारा सर्वेक्षण में पाया है कि धूम्रपान, तंबाकू और नींद की गोलियां का उपयोग महिला–पुरुष में बढ़ता जा रहा है। सोशल डेवेलपमेंट काउंसिल के अनुसार, छात्राओं मे बीयर एवं वाइन लेने की मात्र बढ़ रही है। और ड्रग लेने के कारण उनमें परिवार एवं समाज के प्रति परेशानियाँ बढ़ रही हैं जिससे क्रिमिनल टेंडेंसी, सेक्स फ्रीडम, मानसिक परेशानियाँ, गरीबी एवं बेरोजगारी आदि समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। ये सभी समस्याओं एवं आदतों को कोविड–19 के दौर में और अत्यधिक हवा मिल चुकी है, और देश के युवाओं के पतन से उस देश का पतन होता है। इस कारण हम कह सकते हैं कि ड्रग्स पतन का कारण है।

ड्रग समस्या के निवारण के प्रयासः ड्रग समस्या आज दुनिया के लिए खतरा ही नहीं अपितु एक मुख्य चिंता का विषय बन गया है। इसीलिए इस विषय पर न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक प्रयास किए गए हैं और आज भी लगातार किए जा रहे हैं । **अंतर्राष्ट्रीय** स्तर पर पहली बार नशीली वस्तुओं के व्यापार पर रोक के सबसे पहले चीन में 1909 में 13 देशों ने मिल कर अफीम आयोग बनाया। 1912 में हेग कन्वेंसन, 1961 में सिंगल कन्वेंसन ऑफ नारकोटिक ड्रग्स, 1972 में

प्रोटोकॉल पर 76 देशों द्वारा हस्ताक्षर करना, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय नारकोटिक कंट्रोल बोर्ड को जिम्मेदारी दी गयी कि वह ड्रग के मामलों में संतुलन बनाए रखेगा।

सामान्यतः इस तरह के नशीले पदार्थों की खेती नहीं की जा सकती है परंतु सरकार से अनुमति लेकर औषधि के लिए खेती की जा सकती है। भारत में भी ऐसा ही प्रावधान है। 1987 में वियना में एक सम्मेलन हुआ और 1988 में संयुक्त राष्ट्र कन्वेंसन अगेन्स्ट इलीगल ट्रेफिक इन नारकोटिक ड्रग्स एंड सायकोटरोपिक सबस्टेंसेस को स्वीकार किया, जो कि इस विषय पर बहुत ही सख्त कानून है। यूनाइटेड नेशन्स ऑफिस ऑन ड्रग्स एंड क्राइम(यूएनओडीसी) की वर्ल्ड ड्रग रिपोर्ट 2020 के अनुसार, ड्रग का उपयोग बहुत तेजी से बढ़ा है। जिसके अनुसार विश्व में 2018 में ड्रग लेने वालों की संख्या करीब 269 मिलियन है, जो वर्ष 2009 में ड्रग का उपयोग करने वालों की तुलना में 30 प्रतिशत अधिक हो गयी है।

कोविड–19 एण्ड ड्रग ट्रैफिकिंगः यूनाइटेड नेशन्स ऑफिस ऑन ड्रग्स एंड क्राइम(यूएनओडीसी) की वर्ल्ड ड्रग रिपोर्ट 2020 में यह भी विश्लेषण किया गया है कि कोविड–19 महामारी आने के बाद ड्रग से संबन्धित क्रिया–कलाप प्रभावित हुये हैं, जैसे अधिकांश देशों की सीमाएं बंद हैं तथा अन्य प्रतिबंध भी हैं। जिस कारण ड्रग की खपत मात्रा में कमी आगयी है। जिससे उसकी कीमत बढ़ी है, जबकि उसकी यदि गुणबत्ता देखें तो वो बहुत ही निम्न कोटि की हो गयी है।चूंकि ड्रग केवल नशे की ही वस्तु नहीं है वलकी इससे कई महत्वपूर्ण औषधि भी बनाई जाती हैं। कोविड–19 महामारी के समय से व्यापारिक एवं आर्थिक क्षेत्र में गिरावट आ गयी है, जिसके परिणामस्वरूप दवा/ड्रग्स के व्यवसाय में लगे लोगों के लिए भी कोविड–19 के कारण परेशानियाँ बढ़ी हैं। इसलिए सभी विकसित एवं अग्रणी देशों को आगे आकर व्यापारिक एवं आर्थिक क्षेत्र को सहायता एवं प्रोत्साहन देना होगा, वहीं यदि हम ड्रग ट्रैफिकिंग की बात करें तो वो भी ड्रग से संबन्धित अपराधों को करने के लिए नए–नए तरीके खोज रहे हैं कि कैसे ड्रग को लोगों तक पहुंचाया जा सके क्यूंकि कोविड–19 में उनकी चैन को तोड़ कर रख दिया है। अब वह लोग शिपमेंट, डार्कनेट इत्यादि तरीके अपना रहे हैं।

भारत में भी इस संबंध में अनेक कानून बनाए गए हैं अफीम एक्ट 1978, डेंजरस ड्रग एक्ट 1930, जो एनडीपीएस एक्ट 1985 के आने के बाद ऊपर के दोनों एक्ट समाप्त हो गए। इस एक्ट में 10 से 20 वर्ष तक की सजा तथा 1 से 2 लाख तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। इस कानून की रक्षा हेतु नारकोटिक आयुक्त, केन्द्रीय जांच ब्यूरो, सीमा सुरक्षा बल, आबकारी विभाग आदि हैं।

भारत संघ बनाम कुलदीप सिंहः इस वाद मे न्यायालय द्वारा अपराधी को दस साल की सजा तथा एक लाख रुपए का जुर्माना लगाया गया था।

महाराष्ट्र राज्य बनाम नागपुर डिस्टिलर्स, नागपुरः इस वाद मे उच्चतम न्यालय ने युवा पीढ़ी में बढ़ती नशाखोरी के प्रति चिंता व्यक्त की थी।

नशीली दवाओं की तस्करी और आतंकवाद संयुक्त घटक हैं, दोनों की पहचान के बारे में कोई संदेह नहीं है कि ये सुरक्षा की सीमा पर होने वाली गलतियों का फायदा उठा लेते हैं और इन गलतियों का फायदा उठाकर ही आतंकी देश में घुस जाते हैं इंस्टिट्यूट फॉर डिफेंस स्टडी एंड एनालिसिस(आईडीएसए) रिपोर्ट के अनुसार, पंजाब आतंकवाद के दौर में नशीली पदार्थों की तस्करी का एक बड़ा केंद्र बन गया। यह एक चिंता का विषय है कि यूथ में ड्रग का प्रयोग अत्यधिक तेजी से बढ़ रहा है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो(एनसीआरबी) का डेटा इसके परिणाम का समर्थन करता है। आज पंजाब में भारी मात्रा में ड्रग लेने वालों का कितना गंभीर रूप है। एनसीआरबी के आंकड़े इंगित करते हैं कि जो लोग नशीले पदार्थों की तस्करी के जुर्म में लिप्त थे वो पंजाबी जेलों में इन कैदियों की

हालत अच्छी नहीं है। लेकिन पूर्व में भी पठानकोट पर हमला, भारतीय नकली मुद्रा के बड़े केंद्र के रूप में मालदा है और मुर्शिदाबाद ड्रग मेडिसिन की बिक्री का केंद्र है।

ड्रग के दुरुपयोग एवं तस्करी पर नियंत्रण के तरीकेः वैसे तो नशा करना एक मानसिक समस्या ज्यादा है लेकिन इसकी उत्पत्ति समाज से ही होती है इसलिए इसका उपाय भीं समाज से ही निकलता है क्यूंकि हमारी संस्कृति में एक शब्द प्रयोग होता है संगत। व्यक्ति जैसी संगत में रहेगा वो वैसा ही आचरण अपनाएगा। रोकथाम के संबंध में सरकार की भूमिका की बात करें तो राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक ब्यूरो, आयोग, नियम– अधिनियम बनाए हुये हैं और उनमें सख्त कार्यवाही भी निहित है बावजूद इसके लोग नशे की आदतों को नहीं छोड़ पा रहे हैं। इसलिए अब समय आ गया है कि समाज को अपनी भूमिका को अधिक सक्रिय रूप से निभाना पढ़ेगा तभी हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को नशे जैसी आदतों से मुक्त रख सकते हैं। जिसमें माता–पिता, गुरुजन, रिश्तेदार,एवं समाज को आगे आकर अपनी भूमिका निभानी होगी।

निष्कर्ष : भारत में नशीली दवाओं के उपयोग के खतरनाक परिणामों से बचने के लिए भारत में कई सरकारी और गैर–सरकारी प्रयास चल रहे हैं। सबसे पहले भारत सरकार द्वारा नशीले ड्रग के उपयोग की जांच के लिए रॉयल कमीशन की स्थापना की गई। इसके बाद भारत सरकार ने ही नारकोटिक्स इंटेलिजेंस ब्यूरो की स्थापना की। और भारत सरकार ने द नारकोटिक्स ड्रग एण्ड सायकोट्रोपिक सबस्टेंस एक्ट 1985 को भी बनाया है। जिसके अनुसार, इन अपराधो में लिप्त लोगों को कम से कम 10 वर्ष की सजा तथा एक लाख रुपये तक का अर्थदण्ड का प्रावधान रखा गया है। इसमे कोई शक नहीं है कि सरकार को सामाजिक स्तर पर ड्रग के खिलाफ कार्यवाही करनी होगी और प्रशासकों एवं नीति निर्माणकर्ताओं को सख्त कदम उठाने होंगे, साथ ही ड्रग के सम्बंध में प्रशासन एवं सरकार को जागरूकता फाइलनी होगी। लेकिन ऐसा हो नहीं पा रहा है, जिससे वही पंजाब की स्थिति जैसी ही समस्या बनी हुयी है, लेकिन हमें ऐसे राज्यों से प्रेरणा लेनी होगी जहां यूथ ड्रग को छोड़ कर खेल जगत में देश का नाम गौरवान्वित कर रहा है। इसके लिए हम पूर्वोत्तर राज्यों जैसे मणिपुर आदि का उदाहरण देख सकते हैं। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने भी मन की बात कार्यक्रम के माध्यम से अपनी इच्छा भारत को ड्रग मुक्त बनाने के लिए व्यक्त की है। जिसके लिए इस समस्या के हर एक पहलू की और ध्यान देने की आवश्यकता है साथ ही समाज एवं शासन को ऐसे तरीके एवं उपाय अपनाने होंगे जिससे युवा वर्ग नशे से दूर रहे और एक स्वस्थ और विकसित देश का सपना साकार हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

- डॉ. परांजपेः अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन, सीएलपी, 2007, दिल्ली
- डॉ. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी एवं भारत अग्रवालः सामाजिक समस्याएँ, प्रथम संस्कारण, 2003
- डॉ. एम.एस. चौहानः अपराध शास्त्र एवं आपराधिक प्रशासन, सीएलए, 2008, इलाहाबाद
- डॉ. राम आहूजाः सामाजिक समस्याएँ, द्वितीय संस्कारण, 2009
- डॉ. एस.के. अवस्थीः कमेंटरीज ऑन स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम,1985, एएलए, 2008, इलाहाबाद
- डॉ. कोल्बः ड्रग एडिक्ट्स, वॉल्यूम 20,(1928), पेज 171
- श्री ईश्वर मोदीः ड्रग्सः एडिक्सन एंड प्रिवेंसन, रावत पब्लिकेसन, न्यू देलही, 1997

- श्री एस.वी. जोगरावः लॉ एंड पॉलिसी ऑन ड्रग–ट्रेफिकिंगः ए फिनोमिलोजिकलस्टडी, 35, जेआईएलआई, 1993 पेज 56–57
- भारत संघ बनाम कुलदीप सिंह, (2004) 2 एससीसी, 590
- महाराष्ट्र राज्य बनाम नागपुर डिस्टिलर्स, नागपुर, 2006(5) स्केल, 77 सुप्रीम कोर्ट
- https://indianexpress.com/article/india/ncrb-report-on-crime-in-indiawith-38-5crime-rate-punjab-tops-in-drags-cases-6653750
- https://www-unodc-org/unodc/en/data&and&analysis/wdr2021.html
- https://ncrb.gov.in
- The Hindu news paper
- दैनिक जागरण समाचार पत्र

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

ग्रामीण महिला–सशक्तीकरण : एक विमर्श

अजित कुमार भारती
शोधार्थी
राजनीति विज्ञान विभाग
सि०का०मुर्मू वि०,दुमका (झारखण्ड)

कुदरत ने हर चीज खुबसूरत बनायी और उसकी खुबसूरत कारीगरी की जीति–जागति मिसाल है नारी, लेकिन हमारे पुरुष प्रधान समाज में नारी को कई विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। महिलाओं के प्रति घर–परिवार, समाज, काम–काज के सार्वजनिक स्थल पर होने वाली मानवाधिकरों के हनन की घटना हर दिन सामने आती रही। वर्ष 2005 से 2012 के बीच 104 महिलाओं को डायन कहकर प्रताड़ित किया गया। 8 सितम्बर को जहानाबाद के पतियावाँ गाँव की दो दलित महिलाओं एवं 27 मार्च 2009 पटना जिले के डुमरिया गाँव की लालपरी देवी इसका ज्वलंत उदाहरण है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को नीची निगाहों से देखा जाता है, विधवा महिलाओं को नीची निगाहों से देखा जाता है तथा उन्हें किसी शुभ कार्य में शामिल नहीं किया जाता है।

बिहार सहित पूरे विश्व में महिलाएँ तीन स्तरों पर जीवन जी रही है। प्रथम, श्रेणी की महिला वह है, जो साधन सम्पन्न है और उन्हें विशिष्ट शक्ति चाहिए। दूसरी, श्रेणी की नारी वह है, जिनके कुछ सपने हैं और उन सपनों में पंख लगा कर उँची उड़ान भरना चाहती हैं। तीसरी, श्रेणी की महिला वह है, जिन्हें पता नहीं है कि सपने क्या है? अधिकार किसका नाम है? कानून क्या होता है? उन्हें दो वक्त की रोटी मिल जाए, उसे वह अपना नसीब मानती है। लेकिन, आज बदलते वक्त के साथ महिलाओं ने अपने इरादे को मजबूत बनाया है और घर से निकलकर सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में अपना योगदान दे रही हैं। सरकार ने भी महिलाओं को हर क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया है। आज महिलाओं का पारिवारिक और शैक्षिक स्तर दोनों में सुधार आया है और वे रोजगार के जरिए आत्मनिर्भरता की ओर अपना कदम बढ़ा रही है।

आज महिलाएँ पंचायत स्तर पर नेतृत्व भी कर रही हैं। 1983 में सर्वप्रथम कर्नाटक सरकार ने महिलाओं को 25 प्रतिशत आरक्षण देने की घोषणा की और लंबे समय के बाद 1987 में यह एक्ट लागू हुआ और 14 हजार महिलाएँ निर्वाचित हुईं। 1991 में उड़ीसा सरकार ने पंचायत समिति में एक तिहाई सीट महिलाओं के लिए आरक्षित करने का प्रावधान किया। बिहार सरकार ने महिलाओं को राजनीतिक रूप से सशक्त करने के लिए पंचायती राज में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की। अखिल भारतीय स्तर पर महिला प्रतिनिधियों की संख्या लगभग 28.18 लाख है जो कुल निर्वाचित

प्रतिनिधियों का 36.87 प्रतिशत है। भारत सरकार ग्रामीण महिलाओं को सशक्त करने के लिए प्रायोजित कार्यक्रम जैसे नाबार्ड राष्ट्रीय महिला कोष, केयर, यू.एन.डी.पी. आदि के माध्यम से सहायता उपलब्ध करा रही है। सरकार ने महिला–स्वाबलंबन की मंशा से मनरेगा में महिलाओं को वरीयता प्रदान की है।

केंद्र सरकार की ओर से संचालित स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना के लाभार्थी चयन में भी महिलाओं को वरीयता देने का निर्देश दिया गया है। इस योजना में अनुसूचित जाति एवं जन–जाति को 50 प्रतिशत, महिलाओं को 40 प्रतिशत, अल्पसंख्यकों को 15 प्रतिशत तथा विकलागों को 3 प्रतिशत आरक्षण देने का प्रावधान है। अनुसूचित जाति की महिलाओं को स्वावलंबी बनाने की दिशा में 2008 में एफ.के.आई. योजना शुरू की गई, जिसके तहत 5 प्रतिशत की ब्याज दर पर 50 हजार रूपए तक के ऋण का प्रावधान किया गया है। विकलांग महिलाओं को ब्याज दर में एक प्रतिशत की छूट का प्रावधान है।

'नेशनल हेण्डीकैप्ड फाइनेंस एण्ड डेवलपमेंट कॉपरेशन' एम.एस.वाई. के अन्तर्गत विकलांग महिलाओं को यह छूट प्रदान करता है।

महिला सशक्तीकरण और आजीविका के तहत प्रियदर्शिनी कार्यक्रम प्रायोगिक तौर पर उत्तर प्रदेश के साथ ही बिहार के दो जिलों में चलाई जा रही है। वर्तमान में इस परियोजना के लिए 6.06 करोड़ रूपए स्वीकृत किए गए हैं। महिला एवं बाल–विकास मंत्रालय भारत सरकार के द्वारा 2010 में 'इदिरा गाँधी मातृत्व सहयोग योजना' की शुरुआत की गई है, जिसका उद्देश्य गर्भावस्था तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति में सुधार लाना है। इसके अंतर्गत लाभार्थियों को मातृत्व एवं शिशु स्वास्थ्य से संबंधित खर्च के लिए 4,000 रूपये का भुगतान तीन किस्तों में किए जाने का प्रावधान है। वर्ष 2010–11 में इस योजना के तहत हजार करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं। सबला योजना के मद में 28 फरवरी, 2011 तक 328 करोड़ रूपये जारी किए जा चुके है। ग्रामीण महिला सशक्तीकरण की दिशा में किए जा रहे प्रयासों में 'जननी सुरक्षा योजना' एक कारगर उपाय के रूप में स्थापित हो चुका है। इसके अन्तर्गत गर्भवती महिलाओं की राजकीय अस्पताल या आँगनबाड़ी केन्द्रों पर निःशुल्क जाँच की जाती है।

सारांश स्वरूप, यह कहना गलत नहीं होगा कि भारतीय ग्रामीण परिवेश, जनजीवन तथा सामाजिक आयोजनों में आज के समय में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ हुई है तथा ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था सुदृढ़ीकरण में उनका योगदान उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। भारत में 2001 ई. को महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया गया। इस तरह सरकारी प्रयास से ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में संतोषजनक सुधार हुआ है। लेकिन, अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। खासकर, ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा, चिकित्सा एवं पोषण इत्यादि में सुधार हेतु और अधिक कारगर कदम उठाने की जरूरत है। इसमें सरकार एवं जनता, दोनों के सकारात्मक एवं रचनात्मक सहयोग अपेक्षित हैं।

संदर्भ :

1. कुमार, अशोक; वीमेन इन कान्टेम्पोररी इंडियन सोसाइटी, अनमोल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000.
2. वर्मा, एस.बी.; ग्रामीण महिला उत्थान, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001
3. आचार्य, रोहित; नारी और शिक्षा, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली, 2002
4. चटर्जी, शोभा; द इंडियन सोमेन : सर्च फॉर एन आइडेनटीटि, विकास पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2001.
5. कौशिक, सुशीला; वोमेन पार्टिशिपेशन इन पालिटिक्स, विकास पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2001.
6. अग्रवाल, बी.; वोमेन पावर एण्ड एग्रीकल्चरल ग्रोथ इन इंडिया, जनरल ऑफ पीजेन्ट स्टडीज, वोल्यूम–13, नई दिल्ली, 1986.
7. साहनी, एच.के.; डेवलपमेंट, सस्टेनेविलीटि, इक्यूलिटी एण्ड वुमेंश इशुज, श्री पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2006.
8. तोमर, पी.; इंडियन वुमेन, श्री पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2006
9. द्विवेदी, राकेश; महिला सशक्तिकरण रू चुनौतियाँ एवं राजीतियाँ, पूर्वाशा प्रकाशन, भोपाल, 2005.

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

मध्यकालीन राजस्थान में शिक्षा व्यवस्थाः एक विश्लेषाणात्मक अध्ययन

डॉ0 मनोज सिंह यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर–इतिहास,
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ज्ञानपुर, भदोही

देश के अन्य भागों की ही तरह राजस्थान में भी मध्यकाल में शिक्षा का काफी महत्व रहा है। इस काल में शिक्षा की विचारधारा तथा उद्देश्य आधुनिक शिक्षा से सर्वथा भिन्न था। शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक एवं बौद्धिक होने के साथ ही साथ नैतिक तथा आध्यात्मिक भी था। ''अर्थोपार्जन और बौद्धिक विकास के साथ ही साथ परम शान्ति प्राप्त करना उस युग की शिक्षा का लक्ष्य था। इन लक्ष्यों की पूर्ति विभिन्न स्तरों की शिक्षा संस्थाओं के द्वारा होती थी।''[1] तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में घरेलू शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहता था। एक प्रकार से यह अनौपचारिक शिक्षा की ही भाँति थी जिसमें पिता अपने पुत्र को आरम्भ से लेकर ऊँची से ऊँची शिक्षा घर में ही दे दिया करता था। ''वह उसके लिए तथा अपने शिष्यों के लिए पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ तैयार करता था और उनके माध्यम से पीढ़ी–दर पीढ़ी शिक्षा दी जाती थी। ऐसी पुस्तकें घर की सम्पत्ति समझी जाती थीं। जिनका बँटवारा भाइयों में स्थावर सम्पत्ति की तरह होता था।''[2] इतना ही नहीं घरेलू शिक्षा का प्रचलन व्यावसायिक क्षेत्र में भी बड़े पैमाने पर होता था। एक कुशल दस्तकार नैसर्गिक रूप से अपने पुत्र को अपने घर में ही अपने विशिष्ट कौशल को जिसे वह जानता था स्वयं सिखा देता था जिसके परिणाम स्वरूप परम्परागत हस्त कौशल में एक उच्च स्तर स्थापित हो जाता था। मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर स्वयं अपने ग्रन्थ बाबरनामा में ऐसी व्यवसायिक शिक्षा का वर्णन करता है। ''उस समय के बने हुए चित्र, जेवर, किले, महल, आदि उस युग की दक्षता का प्रमाण देते हैं। जिनको बनाने वाले वही कुशल कलाकार थे जिन्होने घर में रहकर पितृ–परम्परा विधि से शिक्षा प्राप्त की थी। खेती तथा वाणिज्य सम्बन्धी कुशलता इसी पद्धति से अर्जित की जाती थी।''[3]

मध्यकालीन राजस्थान में घरेलू अध्ययन विधि के अतिरिक्त उनकी बस्तियों के पास ही शिक्षा के केन्द्र होते थे जिनको एक गुरू की देख–रेख में चलाया जाता था। यह हमारे प्राचीन आश्रम या गुरूकुल की ही तरह थे जिसमें शिष्य दिनभर गुरू के सानिध्य में रहकर गुरू की सेवा करते, खेतों में काम करते, कुछ पारम्परिक हस्तशिल्प का कार्य करते और साथ ही साथ गुरू के चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरू इन शिष्यों से या इनके घरवालों से कोई शुल्क नहीं लेता था। ऐसे गुरू की आवश्यकताओं की पूर्ति समृद्ध लोग या राजा अथवा जमींदार कर दिया करते थे। ''एकलिंग महात्मय में सोम शर्मा का वर्णन मिलता है जिसके लिए प्रसिद्ध था कि वह सभी वेदों तथा शास्त्रों में अपने शिष्यों को पारंगत बनाता था। कभी–कभी ऐसे आचार्यों के निर्वाह के लिए दानी शासक गाँव की सम्पूर्ण उपज

इनको अर्पित कर दिया करते थे जिससे उन्हे पालन–पोषण की कोई चिन्ता नहीं रहती थी वे निरन्तर विद्या का वितरण पात्र शिष्यों में करते थे।''[4]

ऐसी संस्थाओं के अतिरिक्त राजस्थान के विभिन्न नगरों एवं कस्बों में जैन उपासर भी रहते थे। जहाँ रहने वाले साधू सन्त सतत् रूप से शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। यह जैनमुनि अपने–अपने शिष्यों के लिए उपयोगी ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार करते थे और इनके माध्यम से जनसामान्य को शिक्षित करने का कार्य करते थे। ''इन उपासरों में सभी विषयों की लिखित पुस्तकें रहती थीं जो जैन साधुओं के द्वारा लिखी गई थीं। समृद्ध व्यक्ति ऐसे उपासरों का निर्माण कराते थे जिनमें साधु निवास करते थे और शिष्य परम्परा को परिवर्धित करते थे। मठों में भी शिक्षा का प्रबन्ध रहता था जहाँ साधु और सन्त शिक्षा सम्बन्धी चर्चा, व्याख्यान आदि साधनों से शिक्षा का प्रचार करते थे। उदयपुर के सविनाखेड़ा तथा प्रागदास स्थल शिक्षा के प्रचार के केन्द्र थे।''[5] स्थानीय स्तर पर शिक्षा का प्रचार–प्रसार स्थानीय शिक्षक द्वारा होता था। इन शैक्षणिक संस्थाओं का वित्तपोषण स्थानीय जनता द्वारा किया जाता था जो अपने खेतों या व्यवसाय के उपार्जन का भारशिक्षक को फसल के कटने के समय ही दे दिया करते थे और अपने इस योगदान के द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा को प्रोत्साहित करते थे। हमें कई चित्रित ग्रन्थों तथा मंदिरों की तक्षण–कला के अवशेषों में स्थानीय पाठशालाओं में शिक्षा के क्रम को देखने का अवसर मिलता है। ''अध्यापक खुले मैदान या पेड़ या छोटे छप्पर के नीचे बैठकर विद्यार्थियों को पढ़ाता था और आवश्यकता पड़ने पर अपनी लम्बी बेंत से विद्यार्थियों को दण्ड भी देता था।''[6] 16वीं तथा 17 वीं शताब्दी के ऐतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि विद्यारम्भ 05 वर्ष से आरम्भ होता था और 15 से 18 वर्ष तक की अवधि में विद्यार्थी कई क्षेत्रों में पारंगत हो जाया करता था। इसका कारण यह था कि सतत् गुरू के सम्पर्क में रहने के चलते उसे दिन–रात पढ़ने और सीखने का अवसर प्राप्त होता रहता था। आमतौर पर त्योहार, पूर्णिमा तथा अमावस्या को छोड़कर कोई अवकाश नहीं रहता था। ''अष्टमी को पहले के पढ़े संदर्भों का पारण करना होता था जिससे शिक्षा की उपस्थिति बनी रहती थी। पढ़ने–पढ़ाने के विषयों में वेद, शास्त्र, नीति, मीमांसा, धर्मशास्त्र, कर्मशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, गणित, साहित्य, व्याकरण आदि प्रमुख स्थान पाते थे। संगीत, नृत्य, चित्रकला, चिकित्सा, आदि रोचक विषयों को भी शिक्षा क्रम में उचित स्थान दिया जाता था। सैनिक शिक्षा राजपरिवार के व्यक्तिओं को दी जाती थी। वाद–विवाद, तर्क–वितर्क, लेखन, कण्ठाग्र करना आदि पठन–पाठन के लिए साधन माने जाते थे। कथा वार्ता द्वारा सयानों को पढ़ाया जाता था जिससे कठिन से कठिन विषय भी सुगम हो जाते थे। ऊँची शिक्षा प्राप्त करने वाले को पण्डित, उपाध्याय, महा महोपाध्याय, आचार्य आदि उपाधियाँ दी जाती थी जिनकी बड़ी मान्यता होती थी।''[7]

मध्यकालीन राजस्थान में यदि स्त्री शिक्षा की बात करे तो देश के अन्य हिस्सों की ही भाँति राजस्थान में भी स्त्री शिक्षा की स्थिति संतोषजनक न थी। समाज के अभिजात्य वर्ग की स्त्रियाँ तो कहीं–कहीं विद्वुषी होती थीं।'' हमें ऐसे ग्रन्थ सैंकड़ो की संख्या में मिल जाते हैं जिनमें गीता, भागवत, रामायण तथा कथानकों के ग्रन्थ मुख्य हैं जिन्हें धर्मनिष्ठ स्त्रियों तथा विद्वुषियों के पठनार्थ लिखवाया गया था।''[8] किन्तु समाज के निचले हिस्से या यूँ कहिये कि आम जनमानस के घरों की स्त्रियों के लिए शिक्षा व्यवस्था नगण्य थी। मध्यकालीन राजस्थान में शिक्षा का विस्तार देश के अन्य भागों की तुलना में अधिक था। क्योंकि मध्यकालीन राजस्थान में राजदरबारों धर्मस्थानों, मठों, उपासरों आदि में बड़े–बड़े पुस्तकालय होते थे जिनमें समृद्ध लोग अपने निजी व्यय से पुस्तकें लिखवाकर पुस्तकों का अनुदान करते थे। ''इन पुस्तकों को जिल्दों में बंधवाया जाता था या लकड़ी की तख्तियों के बीच बाँधकर सुरक्षित किया जाता था। प्रत्येक विषय के अनेक बण्डल रहते थे जिन परक्रम संख्या लगा दी जाती थी।''[9] ''उदयपुर और कोटा के सरस्वती भण्डार, जोधपुर का पुस्तक प्रकाश, बीकानेर का अनूप संस्कृत

पुस्तकालय तथा आमेर शास्त्र भण्डार आदि पुस्तकों के संग्रह उस युग की निधि हैं जो आज भी हमारे लिए एक बृहदकोष के रूप में है।''[10]

ध्यान देने वाली बात यह है कि मध्यकालीन राजस्थान में राज्य की तरफ से कोई शिक्षा विभाग जैसा कोई व्यवस्थित विभाग रहा हो ऐसा भी नहीं था और न तो आधुनिक युग के समान बड़े–बड़े विश्वविद्यालय या महाविद्यालय ही थे और साथ ही मुद्रित पुस्तकों का सर्वथा अभाव था परन्तु बावजूद इसके तुलनात्मक तौर पर यदि देखा जाय तो शिक्षा का स्तर काफी ऊँचा था। ''उस समय के विद्धानों द्वारा लिखे गये ग्रन्थ आज भी मौलिक में स्थान पाते हैं जिनकी समानता के ग्रन्थ आज भी निर्मित नहीं हो पाते। गुरू शिष्य के सम्बन्ध का आदर्श जो आज हमें दुर्लभ दिखायी देता है उसका साकार रूप हमें मध्यकालीन राजस्थान में दिखाई देता है।''[11] मध्यकालीन राजस्थानी शिक्षा की सबसे बडी विशेषता यह थी कि शिक्षा का संरक्षण आधुनिक युग के समान सरकार द्वारा न होकर स्थानीय स्तर पर दानी तथा विद्या प्रेमीजनों द्वारा होता था। समाज के समृद्ध व्यक्ति विद्या की उन्नति में अपना योगदान देना अपना धर्म समझता था। सम्भवतः यही कारण था कि मध्यकालीन राजस्थान में गाँव–गाँव में पाठशालाएं थी। ''प्रत्येक कस्बे तथा नगर में विद्या के केन्द्र थे। जो कभी ऊपरीय उपकरणों का अभाव उस समय का समाज अनुभव करता होगा उसकी पूर्ति विद्या के प्रति अभिरूचित था तल्लीनता कर दिया करती थी।''[12]

मध्यकालीन राजस्थान की शिक्षा के विषय में बात करते समय प्रायः लोग आधुनिक शिक्षा व्यवस्था से उसकी तुलना करने लगते हैं जो सर्वथा अनुचित है। सम्भव है कि परिमाण में शिक्षा का विकास आज की भाँति न रहा हो परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि समकालीन अन्य स्थानों की तुलना में मध्यकालीन राजस्थान में शिक्षा की स्थिति संतोषजनक थी। मध्यकालीन राजस्थान के कई विद्वानों की प्रतिष्ठा आज भी महत्वपूर्ण रूप से विद्यमान है। ''विविध क्षेत्रों के विद्वानों में सोम शर्मा, वेद शर्मा, मदन, हीरानन्द, नैणसी, सदाशिव, बाँकीदास आदि उल्लेखनीय है जो राजस्थान के विद्वानों में अग्रगण्य थे।''[13] आज जबकि विविध प्रकार के संसाधन उपलब्ध हैं मुद्रित रूप से पुस्तकों की उपलब्धता है और सरकारें निरन्तर प्रयत्नशील हैं, सरकारों द्वारा शिक्षा के लिए भारी–भरकम बजट का आवंटन भी किया जा रहा है बावजूद इसके दूर–दराज के ग्रामीण अंचलों में अभी भी शिक्षा की पहुँच सभी तक उपलब्ध नहीं हो पार ही है ऐसे में मध्यकालीन राजस्थान में शिक्षा के प्रति वहाँ के लोगों की सामाजिक चेतना एवं शिक्षा के विकास में अपने महत्वपूर्ण योगदानदेने के लिए तत्पर रहने के कारण राज्य द्वारा प्रायोजित न होने के बावजूद गाँव–गाँव में विद्यालय और शिक्षा के अवसर उपलब्ध होना महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। वास्तव में आज के आधुनिक युगीन और मध्यकालीन शिक्षा के उद्देश्यों में बहुत अंतर थे। जहाँ मध्यकाल में शिक्षा का उद्देश्य नैतिक, धार्मिक, अध्यात्मिक उन्नति करके शांति की तलाश थी वहीं आधुनिक शिक्षा व्यवस्था वैज्ञानिकता, प्रौद्योगिकी आदि का विकास करके अधिक से अधिक भौतिक सुखों की प्राप्ति करना है। आधुनिक शिक्षा भौतिकतावाद एवं आर्थोपार्जेन के लक्ष्य को केन्द्र में रखकर दी जा रही है जबकि मध्यकालीन शिक्षा में नैतिकता एवं अध्यात्मिकता सर्वोच्च होती थी।

संदर्भ :

1. सोम सौभाग्य काब्य, काब्य सर्ग 2 श्लो–45–55
2. एकलिंग प्रशस्ति, श्लो0 91–96
3. बाबरनामा भाग–2, पृ0 518 ट्रैवर्नियर, पृ0 161
4. समिधेश्वर लेख वि0सं0 1485, गुणभाषा, पत्र 5, दक्षिणामूर्ति इन्सक्रिप्शन्स वि0 सं0 1770 उदधृत, राजस्थान का इतिहास, डॉ0 गोपीनाथ शर्मा, पृ0 420–21

5. बीकानेर जैनलेख संग्रह पृ0 56
6. बृहद गुरूवावली पृ0 12, शिवपुराणचरित्र, पत्र 44, उदधृत राजस्थान का इतिहास, डॉ0 गोपीनाथ शर्मा, पृ0 421
7. सोशल लाइफ इन मेडीवल राजस्थान, डॉ0 गोपीनाथ शर्मा, पृ0 271–278
8. वही, पृ0 278–279
9. राजस्थान का इतिहास, डॉ0 गोपीनाथ शर्मा पृ0 422
10. सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, डॉ0 गोपीनाथ शर्मा पृ0 281–282
11. राजस्थान का इतिहास, डॉ0 गोपीनाथ शर्मा पृ0 422
12. सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, डॉ0 गोपीनाथ शर्मा पृ0 285–286
13. वही, पृ0 286–287

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

उत्तर प्रदेश के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की योजना एक अभिनव भविष्योन्मुखी कार्यक्रम

संजय कुमार दुबे
असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षाशास्त्र)
एम.डी.पी.जी. कॉलेज प्रतापगढ़

मानव सभ्यता के उदयकाल से लेकर वर्तमान परिष्कृत काल तक निर्विवाद रूप से शिक्षा ही मानव सभ्यता के विकास की सूत्रधार रही है। शिक्षा तथा मानव जाति का जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध है। शिक्षा का वास्तविक कार्य मानव जीवन को प्रगतिशील, सांस्कृतिक एवं सभ्य बनाना है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपने विचार शक्ति तथा तर्क शक्ति को संवर्धित करता है। विद्यालय शिक्षा का सक्रिय एवं औपचारिक अभिकरण है। यह एक विशिष्ट साधन है जिसका उद्देश्य संस्कृतियों एवं सभ्यताओं की समस्या के समाधान की योग्यता उत्पन्न करना है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अच्छे मूल्यों तथा रुचियों को विकसित करता है तथा सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक प्राणी में परिवर्तित होता है। शिक्षा के भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण है। ऋग्वेद के अनुसार शिक्षा मनुष्य को आत्मविश्वासी तथा स्वार्थहीन बनाती है। आदि शंकराचार्य के अनुसार– ''शिक्षा स्वयं को जानना है।'' जब तक शिक्षा व्यक्ति को उसे स्वयं को जानने के योग्य नहीं बनाती है तब तक वह शिक्षा वास्तविक अर्थों में अर्थहीन ही मानी जायेगी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य बालक को 'आत्मबोध' के योग्य बनाना है।

बालक का मस्तिष्क कोरा कागज के समान होता है। यदि इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाये तो हमारे सम्मुख एक अति विस्तृत चुनौती उत्पन्न हो जाती है कि बालक के मस्तिष्क रूपी कोरे कागज पर क्या अंकित किया जाय? यह एक अहम प्रश्न होता है। बालक निष्कपट रूप से हमारे सम्मुख होता है और पूर्णतया समाज पर निर्भर होता है कि उसके मस्ष्कि पर क्या कुछ अंकित किया जायेगा। बालकृष्ण जोशी के अनुसार– ''किसी भी राष्ट्र की प्रगति का निर्माण विधान सभाओं, न्यायालयों और फैक्ट्रियों में नहीं, वरन् विद्यालयों में होता है।''

बालकृष्ण जोशी के शब्दों में– ''स्कूल ईंट और गारे की बनी हुई इमारत नहीं है, जिसमें विभिन्न प्रकार के छात्र और शिक्षक होते हैं। स्कूल बाजार नहीं है जहाँ विभिन्न योग्यताओं वाले अनेक अनिच्छुक व्यक्तियों को ज्ञान प्रदान किया जाता है। स्कूल रेल का प्लेटफार्म नहीं है जहाँ विभिन्न उद्देश्यों से व्यक्तियों की भीड़ जमा होती है। स्कूल कठोर सुधार गृह नहीं है जहाँ किशोर अपराधियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। स्कूल एक आध्यात्मिक संगठन है जिसका अपना स्वयं का विशिष्ट व्यक्तित्व है। स्कूल गतिशील सामुदायिक केन्द्र है जो चारों ओर जीवन शक्ति का संचार करता है। स्कूल एक आश्चर्यजनक भवन है जिसका आधार सद्भावना है। जनता की सद्भावना, माता–पिता की सद्भावना, छात्रों की सद्भावना। संक्षेप रूप से एक संचालित स्कूल एक सुखी परिवार, एक पवित्र मन्दिर, एक सामाजिक केन्द्र, लघु रूप में एक राज्य और मनमोहक वृन्दावन है, जिसमें इन सब बातों

का सुन्दर मिश्रण होता है।'' विद्यालयों में सबसे महत्वपूर्ण यह होता है कि अत्यन्त कोमल हृदय और बुद्धि रखने वाले नौनिहालों को शिक्षा वस्तुतः किस भाषा में दी जाए? इस सम्बन्ध में भारतेन्दु की यह पंक्तियाँ समीचीन प्रतीत होती हैं।

''निज भाषा उन्नत अहै, सब भाषा को मूल।

बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल।।''

वस्तुतः देखा जाए तो बालक को आत्मबोध तो केवल उसकी अपनी भाषा, जिसमें उसका जन्म हुआ है, उसी में ही हो सकता है। किसी अन्य भाषा में दी गयी शिक्षा बालक को हृदयंगम नहीं हो पाती है क्योंकि उक्त भाषा के शब्दों में वास्तविक अर्थ का यथोचित ज्ञान व समझ उसके भीतर विकसित नहीं हो पाती है। विभिन्न प्रकार के अर्थों को व्यक्त करने वाले शब्दों को लेकर वह दिग्भ्रमित हो जाता है और यह निर्णय नहीं कर पाता है कि उक्त शब्दों का उचित प्रयोग कैसे हो। उसके अपने जीने खाने की रीतियों व संस्कारों में मूलभूत अन्तर होने के कारण वह विदेशी अथवा अन्य भाषाओं में दिये जाने वाले ज्ञान को आत्मसात नहीं कर पाता है तथा भ्रमित हो जाता है। वह विदेशी भाषाओं के मर्म को समझ पाने में पूर्णतया अक्षम होता है क्योंकि भावनाओं की समझ तो उसे अपनी ही भाषा में रहती है। आखिर किसी अन्य भाषा में प्रस्तुत ज्ञान को, जिसकी बालक में समझ ही नहीं है, कैसे हृदयंगम कर पायेगा ? यह अहम प्रश्न है।

उपर्युक्त समस्त तर्कों को दृष्टिगत करते हुए हम इस तर्क को भी अस्वीकृत नहीं कर सकते कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक को अपनी आजीविका कमाने के योग्य भी बनाना है। महात्मा गाँधी के अनुसार सच्ची शिक्षा बच्चों के लिए एक प्रकार का बेकारी के विरुद्ध बीमा होना चाहिए। भारत आज बेरोजगारी, निर्धनता, अकाल आदि अनेक गम्भीर समस्याओं का सामना कर रहा है। हमारी आर्थिक समस्यायें हमारी सबसे बड़ी कठिनाइयां है। अतः आज के इस वर्तमान युग में तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि ऐसा ही प्रशिक्षण हमें देश की आर्थिक समस्याओं को हल करने में सहायक हो सकता है। व्यवसाय के बिना व्यक्ति बेसहारा और सामाजिक तौर पर आश्रित होता है। क्योंकि वह अपनी आजीविका के लिए अन्य लोगों पर निर्भर रहता है। उसे स्वतंत्र मनुष्य नहीं समझा जा सकता है। वह उसी समय स्वतंत्र अनुभव करेगा, जब वह आर्थिक तौर पर स्वतंत्र होगा। अतः व्यवसायिक शिक्षा मनुष्य के लिए अति आवश्यक है। व्यवसाय के लिए बच्चों को तैयार करना हमारी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण भाग है। व्यवसायिक शिक्षा एक बहुत प्रभावशाली प्रकार की शिक्षा है जिसके अभाव के कारण वह बच्चे जो सिर्फ स्कूल जाते हैं, आजीवन हानि उठाते हैं।

वस्तुतः प्राचीन भारतीय वाङ्मय में ज्ञान की कोई कमी नहीं है, फिर भी आधुनिक व्यवसायिक ज्ञान हेतु कहीं–न–कहीं उपयोगिता से परे है। जो ज्ञान जनमानस के लिए व्यवहारिक व उपयोगी नहीं होता, वह कालान्तर में विलुप्त प्राय हो जाता है। हमारे स्व0 राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि– ''भारत को अपने लिए ऐसी शिक्षा का चयन करना होगा जो हमारी प्राचीन संस्कृति में से जो कुछ अच्छा है, उससे प्रेरणा ले और साथ ही साथ वर्तमान युग की आवश्यकताओं की उपेक्षा न करे।'' एक ओर जहाँ प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता का संचार करना, चरित्र निर्माण करना, व्यक्तित्व का विकास करना, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों को पैदा करना, सामाजिक कुशलता तथा प्रसन्नता को उन्नत करना था वहीं मध्य युग में भारतीय शिक्षा के लक्ष्य इस्लाम का प्रचार, मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार, इस्लामी राज्यों का विस्तार आदि था। किन्तु, अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य भारत में पाश्चात्य संस्कृति का विकास करना था और ऐसे वर्ग का निर्माण करना था जो रक्त और रंग अंग्रेजों से भारतीय हो, परन्तु नैतिक एवं बौद्धिक रुचियों में।

''हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि देश में महान परिवर्तन आ चुके हैं, इसलिए शिक्षा प्रणाली उसके अनुसार होनी चाहिए।'' शिक्षा के सम्पूर्ण आधार में क्रान्ति लाने की आवश्यकता है। अब समय आ गया है जब हमें अपने संकुचित विचारों से ऊपर उठकर सोचना होगा और बच्चों को उस शिक्षा की दिशा में अग्रसर करना होगा जिसमें उन्हें विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का मार्ग प्रशस्त हो सके। हमें अपने प्राचीन ज्ञान ग्रंथों के महत्व को अक्षुण्य रखते हुए विदेश के ज्ञान भण्डारों की तरफ भी एक विहंगम दृष्टि डालनी पड़ेगी। इसलिए आवश्यकता है कि हम उन विदेशी भाषाओं की भी उपयुक्त जानकारी रखें जिनमें यह अपार ज्ञान सामग्री भरी पड़ी है। ऐसा नहीं है कि उनकी ज्ञान सामग्री प्राप्त कर लेने पर हम अपने ज्ञान सामग्री को भूल जाएं वरन् अपने ज्ञान सामग्री में क्या कुछ जोड़ देने पर हमारा ज्ञान और संवर्धित हो जाए, ऐसा उचित प्रयास करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में– ''आपको कार्य के सभी क्षेत्रों में क्रियात्मक होना होगा। सारा देश सिद्धान्तों की भरमार में नष्ट हो गया है।'' वास्तविक शिक्षा वह शिक्षा है जो सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक दोनों ज्ञान प्रदान करती है। शिक्षा नीति को ऐसा बनाना पड़ेगा जो पात्रता दे और इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में आजीविका कमाने की क्षमता दे। 70 वर्षों से अधिक गुजर जाने के बाद भी देश की मूलभूत शिक्षा नीति रोजगारोन्मुख नहीं है। समाज के प्रत्येक वर्ग में बेरोजगारी व्याप्त है। शिक्षा को रोजगारपरक बनाने के लिए निश्चित रूप से हमें कुछ चुनी हुई विदेशी भाषाओं का ज्ञान रखना ही होगा। यदि हम अपनी भाषा के नाम पर विदेशी भाषाओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखते रहेंगे तो हम ज्ञान व तकनीकी के बहुत विशाल भण्डार से अपने आपको सर्वथा दूर कर लेंगे। विश्व का समस्त ज्ञान किसी एक भाषा में सिमट नहीं सकता। विश्व के प्रत्येक कोने में अनुसंधानकर्ता तथा विचारक उत्पन्न हुए हैं और ज्ञान के अपार भण्डार का सृजन किये हैं। सभी की मातृभाषा अलग–अलग रही है। सुनियोजित विकास हेतु सभी प्रकार के ज्ञान की महत्ता है। इसलिए हमें सभी प्रकार की भाषाओं का समुचित ज्ञान होना अनिवार्य है।

भारत वर्ष आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ एक राष्ट्र माना जा सकता है, जिसमें इसके समस्त नागरिक अपने बच्चों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर पाने में सक्षम नहीं हैं। इसलिए सरकार का यह दायित्व होता है कि वह अपने नागरिकों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त सेवायें उपलब्ध कराये। स्वास्थ्य की स्थिति भी बहुत ही चिन्ताजनक है। किन्तु यदि शिक्षा की व्यवस्था बनाने में सरकार समर्थ रहती है तो आगे चलकर के स्वास्थ्य अथवा अन्य प्रकार की समस्त समस्यायें अपने आप हल होने के करीब आ जायेगी। इसलिए जनकल्याणकारी सरकार का सर्वप्रमुख दायित्व है कि वह अपने नागरिकों में शिक्षा का संचार करें और उनके लिए उस हर प्रकार के शिक्षा की व्यवस्था करें जो उनको उन्नत बनाने में सक्षम हो और समाज के अन्य लोगों के साथ प्रतिस्पर्धात्मक रूप से खड़ाकर सके।

वर्तमान समय में समाज में दो वर्गों का उदय हो चुका है। एक वह वर्ग है जो आर्थिक रूप से समुन्नत है तथा दूसरा वर्ग आर्थिक रूप से अत्यन्त ही कमजोर। समुन्नत वर्ग अपने बच्चों को मँहगें कान्वेंट स्कूलों में भेजकर उन्हें अच्छी शिक्षा प्रदान करने में सक्षम है और निर्धन वर्ग अपने बच्चों को उचित प्रकार की शिक्षा दे पाने में समर्थ नहीं है। इसलिए इन दोनों वर्गों के छात्रों में शिक्षा और बौद्धिक स्तर में काफी अन्तर देखने को मिलता है। एक ओर जहाँ कान्वेण्ट के एजूकेटेड छात्र सफलता की समस्त दिशाओं में अपना परचम फहराते हैं, वहीं आर्थिक रूप से पिछड़े हुए लोगों के बच्चे उस लक्ष्य तक पहुँच पाने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। इसलिए सामाजिक विषमता की खाँई निरन्तर बढ़ती जाती है और समाज में सामाजिक विद्वेष उत्पन्न होता है, जो संविधान की मूल भावना के बिल्कुल ही विपरीत होता है। वैसे भी सफलता पर सभी का समान अधिकार होना चाहिए और उस प्राप्त करने के लिए सभी

को समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। सरकारों को निश्चित रूप से उस प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था करनी होगी जिससे समस्त नागरिकों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो सके।

उत्तर प्रदेश सरकार ने इसी दिशा में कदम बढ़ाते हुए प्रदेश के लगभग 5000 सरकारी प्राथमिक विद्यालयों को अंग्रेजी माध्यम से संचालित करने का निर्णय लिया है जो निश्चित रूप से प्रशंसनीय है। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त छात्र एक ओर जहाँ अपनी मातृभाषा के सन्निकट रहेंगे, वहीं विदेशी भाषाओं के प्रति भी उनका रुझान बालपन से ही होता जायेगा, जिससे मातृभाषा में अपने ज्ञान संवर्धन के साथ–साथ विदेशी भाषाओं में पारंगतता को प्राप्त कर सकेंगे। उत्तर प्रदेश सरकार प्रदेश में गरीब और ग्रामीण बच्चों को शहरी पब्लिक स्कूलों के बच्चों की तरह स्मार्ट बनाने की योजना पर काम कर रही है। इसलिए शिक्षा व्यवस्था को सुधारने के लिए और गरीब बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने के लिए वह इन 5000 से अधिक विद्यालयों को अंग्रेजी माध्यम से संचालित कर रही है। यह पूरी तरह ग्रामीण शिक्षा में हो रहे बदलाव की दिशा में बड़ा कदम साबित होने वाला है। अब आर्थिक रूप से पिछड़े हुए व निचले तबके के वह लोग जो अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से नहीं पढ़ा पाते है, उनकी कसक अब उनके दिलों में नहीं रहेगी। सरकार की इस योजना का लाभ लेकर वह भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ा सकेंगे और उन्हें कान्वेंट स्कूलों के बच्चों के साथ प्रतिस्पर्धात्मक रूप से खड़ा कर सकेंगे। इस योजना की तरह ही राजकीय माध्यमिक विद्यालयों में भी अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई कराया जाना निश्चित ही लाभप्रद होगा। अंग्रेजी शिक्षा से निम्नवत लाभ हो सकते है–

- धन के अभाव में अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़कर विद्यालय से निकल जाने वाले छात्र अपनी शिक्षा को पूर्ण कर पायेंगे। जिससे विद्यालयी अवरोधन में कमी आयेगी।
- गरीबों और अमीरों के बीच की खाँई को कम करके सामाजिक समता और सौहार्द्र को स्थापित किया जा सकता है।
- मानसिक कुण्ठा से ग्रस्त रहने वाले गरीब तबके के छात्रों को इस कुण्ठा से निजात दिलाकर उन्हें समाज के अन्य वर्गों के साथ समुचित रूप से खड़ा किया जा सकेगा।
- अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित छात्र, मानसिक रूप से प्रबुद्ध होकर अपनी रोजी रोटी कमाने के योग्य बन सकेगा और स्वाभिमानपूर्वक अपना जीवन निर्वाहकर सकेगा।
- आर्थिक रूप से मजबूत होने पर उसे सामाजिक शोषण से मुक्ति प्राप्त होगी। वे अपने नागरिक अधिकारों के प्रति सचेत होकर अपने नागरिक कर्तव्यों का समुचित निर्वहन कर सकेंगे।
- शिक्षा प्राप्त कर लेने के उपरान्त विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर आसीन होकर राष्ट्र के आर्थिक उन्नयन में अपना समुचित योगदान दे सकेंगे और राष्ट्र की प्रगति में सहायक बन सकेंगे।

इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के मार्ग में निश्चित रूप से अभी भी अनेक कठिनाइयाँ विद्यमान हैं। एक ओर जहाँ उपयुक्त और योग्य शिक्षकों का अभाव है, वहीं भौतिक संसाधनों की स्थिति भी बहुत ही दयनीय है। इसलिए सरकार को अभी भी इस दिशा में बहुत ही सार्थक प्रयास करने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम विद्यालयों में रिक्त पड़े पदों को उच्च क्षमता के योग्य अभ्यर्थियों से भरना होगा, वहीं दूसरी ओर प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध संसाधनों में वृद्धि करनी होगी। यह निश्चित रूप से एक दुष्कर कार्य होगा और बहुत अधिक खर्चीला होगा। सरकार को इसके लिए अपने शिक्षा बजट में निश्चित रूप से वृद्धि करनी होगी अन्यथा यह योजना केवल कागजों में ही सिमटकर रह जायेगी और अपने वास्तविक लक्ष्य से दूर हो जायेगी।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सरकारी प्राथमिक विद्यालयों को अंग्रेजी माध्यम से संचालित करने की योजना उन गरीब तथा आर्थिक रूप से पिछड़े हुए लोगों के बच्चों के सपनों को भी पंख प्रदान करने में समर्थ हो पायेगी और उन्हें सफलता के उच्च आकाश की उड़ान के लिए तैयार कर पायेगी, जो कभी अच्छे विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई करने की सोच भी नहीं सकते थे। उनके जीवन को भी नया आयाम प्राप्त हो पायेगा। अतः निश्चित रूप से यह एक अभिनव कार्यक्रम है जिसका सुखद प्रतिफल भविष्य में प्राप्त होगा और पूर्णतया भविष्योन्मुखी है। राज्य सरकार का यह कार्य अत्यन्त ही प्रशंसनीय है।

सारांश :

शिक्षा व्यक्ति को स्वयं के जानने के योग्य बनाती है। एक ओर जहाँ शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति करना है, वहीं दूसरी ओर उसे अपनी आजीविका कमाने के योग्य भी बनाना है, नहीं तो उसका ज्ञान महज कोरा ज्ञान ही बनकर रह जायेगा, जिसका कोई उपयोग नहीं होगा और समय के साथ विलुप्त हो जायेगा। हमें अपनी प्राचीन ज्ञान सामग्री के साथ–साथ विश्व के अपार ज्ञान भण्डार से भी लाभान्वित होने के लिए विदेशी भाषाओं का भी ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। हमें कार्य के सभी क्षेत्रों में क्रियात्मक होना होगा। जिसके लिए विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा सहित कुछ अन्य भाषाओं का ज्ञान भी बालक को देना होगा।

आज समाज में दो वर्गों का उदय हो चुका है। आर्थिक रूप से समुन्नत और आर्थिक रूप से कमजोर। एक ओर जहाँ आर्थिक रूप से समुन्नत वर्ग अपने बच्चों को मँहगें कान्वेंट स्कूलों में शिक्षा दे रहा है वहीं कमजोर वर्ग के बच्चे आज भी प्राथमिक विद्यालयों में आधुनिक शिक्षा से सर्वथा दूर है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार ने प्राथमिक विद्यालयों को अंग्रेजी माध्यम से संचालित करने का निर्णय लिया है जिससे आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के बच्चों को भी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त हो पायेगी और उनके सपने भी साकार हो पायेंगे। उनके जीवन को भी नया आयाम प्राप्त होगा। इसका सुखद प्रतिफल भविष्य में प्राप्त होगा। अतः यह एक पूर्णतः अभिनव व भविष्योन्मुखी कार्यक्रम है। यह कार्य अत्यन्त ही प्रसंशनीय है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. दैनिक जागरण, अमर उजाला समाचार पत्र
2. उत्तर प्रदेश सरकार का सरकारी पत्र
3. जे0एस0 वालिया, शिक्षा के सिद्धान्त तथा विधियां
4. डॉ0 राजीव मालवीय, शिक्षा के मूल सिद्धान्त

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के महाकाव्यों का संक्षिप्त परिचय

डॉ0 प्रीति पाण्डेय
पूर्व शोधच्छात्रा–रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय,
जबलपुर (मध्य प्रदेश)

ऋतम्बरा महाकाव्य को कवि 'प्रभात' ने 16 सर्गों एवं 160 पृष्ठों में सन् 1957 ई0 में प्रस्तुत किया। इसे नवभारत प्रकाशन, पटना से प्रकाशित कराया गया। इसमें सृष्टि की आदि धारक चेतना को प्रस्तुत किया गया है। जो हमारे आधुनिक कवियों की चिंता का केन्द्रीय विषय रहा है। भूगोल, इतिहास, विज्ञान, मानव विज्ञान, समाजशास्त्र जैसे ज्ञान आने के पश्चात् लोगों में अपने अतीत को खोजने की जिज्ञासा पनपने लगी। मानव सभ्यता के कई सहस्राब्दियों का सफर तय करने के बावजूद मानव आज भी स्वार्थलिप्सा, महत्वाकांक्षा, पारम्परिक द्वेष, संघर्ष और युद्ध के कारण अभाव, यातना, घुटन, शोषण, उत्पीड़न और दमन की त्रासदियों से आक्रान्त है।

जिस प्रकार महाकवि जयशंकर प्रसाद ने कामायनी के सृजन में जलप्लावन और शतपथ ब्राह्मण की कथा ली है। उन्होंने 15 सर्गों में सम्पूर्ण कथा को प्रस्तुत किया है। उसी प्रकार केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने भी ऋतम्बरा में मानव सृष्टि और उसकी संस्कृति के विकास की कथा प्रस्तुत की है। इसमें सृष्टि के आदि पुरुष मनु और आदिम नारी शतरुपा की कथा के माध्यम से अब तक की मानव सभ्यता के विकास की काव्यमय कथा है।

'ऋत' को वैदिक धर्म में सही सनातन प्रकृतिक व्यवस्था और संतुलन के सिद्धान्त को कहते हैं, अर्थात् वह तत्व जो पूरे संसार और ब्रह्माण्ड को धार्मिक स्थिति में रखे या लाये। वैदिक संस्कृति में 'ऋत' का अर्थ ठीक से जुड़ा हुआ सत्य, सही या सुव्यवस्थित होता है। 'ऋते ज्ञानात् मुक्ति' शब्द का प्रयोग मोक्ष के सन्दर्भ में किया जाता है। 'ऋत' ऋग्वेद का सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक सिद्धान्त है। हिन्दू धर्म की शुरूआत इसी सिद्धान्त से जुड़ी हुई है। इसका वर्णन आधुनिक हिन्दू समाज में पहले की तुलना में कम होता है। 'ऋतम्बरा' वैदिक दर्शन 'ऋत' पर आधारित प्रबन्धकाव्य है जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति और विकास का निरूपण बौद्धिक और दार्शनिक धरातल पर हुआ है। प्रबन्ध की कल्पना भूमि अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। यहॉ रहस्यमय वैदिक और पौराणिक शब्दों के अमोघ जाल में छिपा अतीत वर्तमान में साकार होकर भविष्य की पंक्ति में खड़ा हुआ है।''[1]

प्रभात जी की कल्पना छायावादी कल्पना की भाँति स्थान और काल में सीमित न होकर एक व्यापकता लिये हुए है। जो अनन्त की परिधि में जा मिलती है। वह कल्पना युग–युगान्तर के भावों को उनकी अशेष सुषुमाओं को अपने में समेट लेती है। ''कवि की रचनाओं में ऋतम्बरा'' महाकाव्य को समीक्षकों ने हिन्दी का एक कोश शिलात्मक अवदान माना है। डॉ0 देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने तो यहाँ तक लिखा है कि ''शतरूपा तथा मनु के माध्यम से कवि ने इस कृति में कामायनी से भी एक पग आगे बढ़ने का साहस किया है। जहाँ प्रसाद कामायनी में समरसता और शैवागमों के आनन्दवाद का स्वर अलापते हैं, वहाँ प्रभात जी ने मानव संस्कृति के विकास की निरन्तर विकासोन्मुख श्रृंखला को साम्प्रतिक सन्दर्भों तक बढ़ाया है।''[2]

'ऋतम्बरा' महाकाव्य में सर्गों का नामकरण कामायनी के ढंग पर किया गया है। जिनमें ईक्षण, विकल्प, समाधि, पृथिवी, व्यवधान, मनु, शतरूपा, उल्लास, मिलन, जीवनगीत, कामना, विषाद, उद्‌बोधन, भविष्यदर्शन, मनु का आत्मबोध, अद्यापि इत्यादि सोलह सर्गों में कथा है। ''महाकवि प्रभात के सम्पूर्ण कवि कर्म की संभावनाओं का नवगीत 'ऋतम्बरा' महाकाव्य (1957 ई0) में परिलक्षित होता है। शतरूपा तथा मनु के माध्यम से कवि ने इस कृति में 'कामायनी' से भी एक पग आगे बढ़ने का साहस किया है। जहाँ 'प्रसाद' कामायनी में 'समरसता' और शैवागमों के आनन्दवाद का स्वर अलापते हैं। वहाँ प्रभात जी ने मानव–संस्कृति के विकास की निरन्तर विकासोन्मुखी शृंखला को साम्प्रतिक सन्दर्भों तक बढ़ाया है। आधुनिक जीवन के यथार्थपरक आसंगों के प्रति वह इस रचना में आद्योपान्त जाग्रत रहा है।''[3] यथा–

ग्राम नगर–सौ–सौ प्रदेश है, राष्ट्र देश है कितने।
भिन्न–भिन्न विश्लेष–वेष है, मल–निवेश है कितने।।
चकाचौंध है सभी ओर, सब ओर मची हलचल है।
सभी ओर है लगी होड़–सी, भीषण कोलाहल है।
रक्तांजलि देते मनुष्य वर माँग रहे हैं आह्व से।
अणु–परमाणु शक्तियाँ लेकर दौड़ रहे दानव–से।।
जहाँ दृष्टि पड़ती है मिलता वही ह्रदय का शव है।
मंत्रों से चालित जीवन का यही एक वैभव है।।

व्यापक और समग्रता से विद्वानों के विचारों को देखा जाय तो अनेक उद्‌भट विद्वानों ने ऋतम्बरा और कामायनी का तुलनात्मक अध्ययन और विश्लेषण करके यह प्रमाणित करनपे का प्रयास किया है। ऋतम्बरा, कामायनी से श्रेष्ठ या उच्चतर कृति है।

कवि 'प्रभात' का दृष्टिकोण 'ऋतम्बरा' महाकाव्य पर क्या है? उसे हम 'ऋतम्बरा' महाकाव्य के उद्‌बोधन सर्ग में मार्मिक ढंग से देख सकते हैं–

''भौतिक बल के चरणों में धर देता है
मानव भविष्य को,
वर्तमान को झुककर
कैसे कराहती मानवता बेचारी
वह नहीं देखता कहीं एक पल रूककर।''[4]

स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है कि आजादी के एक दशक बाद ही भारत में क्या भविष्य जनता जनार्दन का था? प्रभात जी का यहाँ वैश्विक दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई पड़ता है। 'विषाद' सर्ग में ये लिखते हैं–

''यंत्रों के जब मुँह खुलते हैं प्रलय मेघ घिर आते।
घूम–घूम कर दिशा–दिशा में उल्काए बरसाते।।
× × ×
बोल रही सभ्यता इन्हीं यंत्रों के क्रूर स्वरों में।
और मुग्ध तिरती फिरती है, शोणित की लहरों में।''
× × ×
''इसी चाह की तृप्ति हेतु कितने नर मेघ रचाते
देश–देश से टकराते ज्यों ग्रह से ग्रह टकराते
रक्तांजलि देते मनुष्य वर माँग आहव से

अणु परमाणु शक्तियाँ लेकर दौड़ रहे मानव–से,
जहाँ दृष्टि पड़ती है मिलता वही हृदय का शव है
यंत्रों से चालित जीवन का यही यह वैभव है।''

× × ×

''पूँजी जाती है प्रवंचना, यंचक की ही जय है
कपट गीत है कपट रागिणी और कपट ही लय है।
त्यागी वही न जिसका परिचय लू से और लपट से
वही श्लाघ्य जो भरा हुआ है मत्सर और कपट से।''[5]

स्वाभाविक तौर पर देखा जाय तो प्रभात जी ने गाँधी, लोहिया, पाश्चात्य विचारक डीन इंज, ई0एम0 फॉस्टर के समान ही वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति के घोर विरोधी थी। वैश्विक अणु–परमाणु शक्तियों पर उन्हें आस्था नहीं थी, मानवता की सृष्टि, मानव की रक्षा, उसके आत्म सम्मान में अभिवृद्धि ही कवि प्रभात को कायल करती थी।

'ऋतम्बरा' के कथानक में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। ऋतम्बरा में 'मनु' और शतरूपा की कथा है; जिसमें मनु फल के अधिकारी हैं और वह फल (आत्मज्ञान) ब्रह्मा के उद्‌बोधन द्वारा उन्हें प्राप्त होता है। इसकी कथावस्तु के दो भाग है। पूर्वार्द्ध में 'प्रथम सर्ग' से 'सप्तम सर्ग' तक सृष्टि की उत्पत्ति मनु और शतरूपा का आविर्भाव होता है। दूसरा (उत्तरार्द्ध) की कथा अष्टम–सर्ग से प्रारम्भ होकर षोडश सर्ग तक है। इसमें मनु शतरूपा के मिलन सहयोग एवं सृष्टि क्रम के विकास, पृथिवी और मनु की भेंट, मनु की विषण्णता, शतरूपा मनु का विच्छेद और फिर मिलन, आत्मबोध आदि प्रसंग आते हैं। जिसमें कहीं भी परस्पर अन्विति नहीं है।

कवि प्रभात जी का विश्वास है कि सर्जनात्मक शक्ति का ह्रास संक्रमणकालीन अस्त व्यस्तता से नहीं होता। वस्तुतः यह ह्रास कला के पतन और कलाकार की हीनता का परिणाम है। कामायनी की भाँति ऋतम्बरा में भी प्रभात ने स्वप्न दर्शन की योजना की है। इसमें फ्लैशबैक पद्धति द्वारा कुछ मधुर चित्रों की सुन्दर कल्पना हुई है। ''परन्तु कामायनी का स्वप्न दर्शन कथानक की अन्विति को तोड़ता है। अवान्तर और प्रासंगिक कथाओं के अभाव में कथानक में पर्याप्त परिधि विस्तार नहीं आ पाया है। पृथिवी एवं मनु सम्बन्धी प्रसंग क्षेपक सा जान पड़ते हैं। जो मूल कथा से नितान्त असम्पृक्त है।''[6]

महाकवि प्रभात का यह दृढ़ विश्वास है कि महातिमिर की भयंकर लहरों से ऋत् तत्व कुंठित होने वाला नहीं है। मानव संस्कृति के उत्थान के साथ जो महत् तत्व आविर्भूत हुआ वह मानवीय मूल्यों की भयंकर ढाही के बावजूद टूटा नहीं है। कृति के आरम्भिक 'ईक्षण', 'विकल्प' और 'समाधि' सर्गों में कथा का प्रारम्भ है। प्रलय के उपरान्त पृथिवी सर्ग में सृष्टि के विकास क्रम की कथा है। जिसे कथानक का विकास कहा जा सकता है। तत्पश्चात् व्यवधान, मनु, शतरूपा, उल्लास, मिलन सर्गों में बिखरित होकर कामना सर्ग में कथा चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है। इसके बाद कथा में उतार आता है। और 'विषाद' सर्ग से आगे उद्‌बोधन, भविष्य दर्शन, मनु का आत्मबोध, अद्यापि सर्ग आते हैं। मनु के आत्मबोध में कार्य सिद्धि हो जाती है। आदि पुरुष ने आदि नारी शतरूपा की प्रेरणा से जो मंगल दीप जलाया था, जो आलोक–लोक का प्रहरी था, वह आज तक जल रहा है, जिसे 'ऋतम्बरा' के अंतिम सर्ग में देख सकते हैं–

''मनु ने दीप जलाया/वह बुझा नहीं जलता है
मर्त्यलोक यह मृत्यु खड़ी है,/पर मानव चलता है।''[7]

कैकेयी महाकाव्य :

भारतीय महाकाव्यों की एक अविरल परम्परा रही है। संस्कृति में बाल्मीकि, वेदव्यास, अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष रहे तो हिन्दी में चन्दबरदायी, तुलसी, केशव, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध आदि रहे। सभी ने किसी न किसी रूप में राम का स्मरण किया है। आधुनिक काल में नारी उत्थान या नारी जागरण की शुरूआत द्विवेदी युग से मानी जाती है। आचार्य द्विवेदी ने 'उर्मिला विषयक उदासीनता' लेख लिखकर कवियों का आह्वान किया कि, वे उपेक्षित स्त्री पात्रों को काव्य में जगह दे। इसका परिणाम यह रहा है कि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य लिखा। आगे चलकर छायावादी परिदृश्य में केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने कैकेयी महाकाव्य लिखा। इसमें कैकेयी के प्रति कालुष्यपूर्ण चरित्र को एक नव्यरूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है।

कैकेयी महाकाव्य तेरह सर्गों और 137 पृष्ठों में है। इसके प्रथम तीन सर्गों में कैकेयी को आर्य राष्ट्र में अनार्यों द्वारा किये गये उत्पात एवं उत्पीड़न से चिंतित और व्याकुल दिखाया गया है। भविष्य के अन्तर में झाँक लेने में समर्थ कैकेयी अनार्यों द्वारा नष्ट होते हुए आर्य धर्म की सुरक्षा के लिए चिंतित हैं। साथ ही वह धर्म की रक्षा, राष्ट्र की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। चतुर्थ सर्ग में यह राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर भाव विह्वल हो हर्षोल्लास मनाती है, लेकिन उसी समय उसके अन्तर्मन मं ममता और कर्तव्य का द्वन्द्व छिड़ जाता है।

पंचम सर्ग में राष्ट्र प्रेम–ममता तथा कर्त्तव्य भावना का संघर्ष दिखाया गया है। षष्ठ सर्ग में उषा वर्णन, सप्तम् सर्ग में युग–धर्म का चित्रण है। अष्टम सर्ग में दशरथ और कैकेयी संवाद है। विक्षिप्तता सी म्ला सी कैकेयी को पड़े देखकर दशरथ एकदम चौंक पड़ते हैं। कैकेयी कारण बताती है, साथ ही राष्ट्र देवता के चरणों में सेवा के लिए राम को समर्पित करने का दशरथ से आग्रह भी करती है। मोह में आसक्त दशरथ, प्रारम्भ में निषेध या नकार की मुद्रा में थे लेकिन अपने राष्ट्र धर्म, कर्त्तव्य को पहचान कर युग के राम को युग को समर्पित कर देते हैं–

''युग के रहे रहे मिल युग को
आज तोड़ नाता दशरथ से
किन्तु न दशरथ विचलित होता
हे कर्त्तव्य! तुम्हारे पथ से।''[8]

नवम् सर्ग में सेवा, शासन, कर्त्तव्य, चेतना, ज्ञान की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गयी है। दशम् सर्ग में ममता का वर्णन है।

''जीवन वीणा की झंकार
ममते! तेरी शक्ति अपार
तू स्नेह की तन्द्रिल रात
तू भावुकता शोभा–रनात।''[9]

एकादश सर्ग में दशरथ के परलोक का वर्णन है जिसे कारुणिक बनाने का प्रयास किया गया है–

''मेरे सुहाग को लूट ले चला
निठुर कौन
जागो नारी की महाशक्ति!
मत रहो मौन।।''[10]

द्वादश सर्ग में भरत का अयोध्या–आगमन, भरत–कैकेयी संवाद, कर्त्तव्य और भावना का विवेचन हुआ है–

''वत्स! राम के पद–चिह्नों का
स्वर सुना, क्यों सोता है
जाग, देख, कर्त्तव्य क्षेत्र
कैसा दुर्गम होता है।''[11]

त्रयोदश सर्ग में चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा और रमणीयता का चित्रण है–

''चित्रकूट सब जिसे मानते
स्वर्ग–खण्ड भू तल का
चित्रित है सौन्दर्य जहाँ, नभ
जल, थल, अनिल, अनल का।[12]
× × ×
प्रकृति कुंज में गूँज रही थी,
उस दिन बीन निराली
कण–कण कल उल्लासपूर्ण
चल किरण–किरण मतवाली।''[13]

शास्त्रीय दृष्टि से कैकेयी महाकाव्य को महाकाव्य की कसौटी पर परखा जाये तो यह महाकाव्योचित गरिमा से युक्त नहीं है। तथापि इसमें तेरह सर्गों में प्रस्तुत कथा को प्रबंधकीय दृष्टि से रखा जा सकता है। कथा का विस्तार अनावश्यक रूप से तेरह सर्गों में है, जबकि यह पाँच या 6 सर्गों की ही कथा है। कथानक में अवान्तर कथाओं का नितान्त अभाव है। बावजूद इसके ''कैकेयी का कथानक पौराणिक और ऐतिहासिक होते हुए भी युगीन भावबोध, नवीन जीवन मूल्यों, संवेदनाओं और वर्तमान समस्याओं को साकारता देता है। उसका आख्यान पौराणिक होते हुए भी वातावरण साम्प्रतिक है। वस्तुतः कैकेयी स्वातंत्र्य संग्राम के प्रति जागृति प्रस्तुत करने वाली कृतियों में महत्वपूर्ण है।''[14]

मैथिलीशरण गुप्त की कैकेयी और कवि प्रभात की कैकेयी के चरित्र की तुलना करें तो प्रभात की कैकेयी का चरित्र कहीं अधिक मानवीय मौलिक और आधुनिक है। प्रसिद्ध आलोचक श्रीपाल सिंह क्षेम के अनुसार ''प्रभात जी ने कैकेयी को अपनी सहानुभूति, मानवीयता, बौद्धिकता एवं आधुनिकता का पात्र बनाया है। वाल्मीकि की कैकेयी में मानवीयता है और तुलसी ने भी मानस की कैकेयी के अपराध को देवमाया की छाया से कुछ न्यूनतम किया है। पर फिर भी वह जगकुत्सा की पात्र एक कलंकिनी के रूप में ही उपस्थित हुई है। मैथिलीशरण गुप्त ने मातृत्व एवं पुत्र–स्नेह के मनोविज्ञान को सहानुभूति देकर कैकेयी के चरित्र को मनःशास्त्रीय स्तर पर उठाने का प्रयास किया है। प्रभारत जी ने कैकेयी को एक सर्वथा नवीन दृष्टि से देखा है। राष्ट्रप्रेम, सभ्यता, संस्कृति के अभिरक्षण, धर्म प्रतिष्ठा, युग धर्म की पुकार, लोकसेवा के आदर्श, राष्ट्र के लिए वात्सल्य के संवरण एवं युग कल्याण के लिए सर्वोत्सर्ग की उत्कट चेतना का परिप्रेक्ष्य देकर कवि ने कैकेयी के व्यक्तित्व को एक क्रांतिकारिणी युग दर्शिका का स्वरूप प्रदान किया है।''[15]

कवि प्रभात ने इस महाकाव्य में 'कैकेरी' के परम्परागत लांछित और गर्हित चरित्र को परिष्कृत करके उसे उदात्त एवं राष्ट्रमाता का रूप दिया है। राम के राज्याभिषेक को सन्निकट देखकर कैकेयी सोचती है कि जिस राम को मनुष्य जाति को असुरों के अत्याचार उत्पीड़न से मुक्त करना था, वही

राजसत्ता के सिंहासन का बंदी बनने जा रहा है; क्या यह मानव जाति के हित में होगा? कह सोचने लगती है–

वह राम बने अब/बंदी सिंहासन का
पर्याय न क्या यह/राजतिलक बंधन का
क्या मूल्य न कोई/जन–जन के क्रंदन का
मानवता की आहों का/आँसू कण का।''[16]

कवि प्रभात के 'कैकेयी' से समूची रामायण पर कहीं आँच नहीं आ पाती। विरोध यह भी कह सकते हैं कि काव्यकार को यदि कैकेयी की गुणवृत्ति का प्रदर्शन करना था तो, क्यों नहीं उसने अपने उद्देश्य–निर्वाह के निमित्त किसी दूसरी सबल पात्रों की सृष्टि की?

कैकेयी महाकाव्य की भूमिका के लेखक पी0 चिंतामणि ने इसे महाकाव्य माना है। उनका कथन है कि– ''यदि बिल्कुल शास्त्रीय ढंग से लाक्षणिक विधियों को समक्ष न रखकर कैकेयी की परख करें तो उसमें वे अन्य सारी विशेषताएँ पाई जायेगी जो महाकाव्य की परिभाषा के अन्तर्गत आती है। प्रभात जी ने इसे महाकाव्य घोषित किया है।''[17] रामकाव्य काल में राष्ट्रीयता की अवधारणा नहीं थी। यद्यपि राष्ट्रीयता की अवधारणा या राष्ट्र शब्द प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। परन्तु राष्ट्रीयता प्रधान प्रवृत्ति के रूप में भारतेन्दु युग में ही मूर्त रूप लेती है। ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारत में जो जन जागरण, नवजागरण की धारा बही उसके भौतिक कारण थे। इसी भावना के चलते कैकेयी यहाँ यह कैकेयी नहीं है, जो बाल्मीकि अथवा तुलसी की रही है। यह राष्ट्र माता है, प्रभात जी ने कैकेयी के मुख से कहलवाया– 'वैधव्य मुझे स्वीकार, राष्ट्र की जय हो।'

कैकेयी आधुनिक युगबोध को प्रतीकित करती हुई आम उत्पीड़ित लांछित वीरत्व भाव से भरी नारी है। इसलिए यहाँ राष्ट्र शब्द का प्रयोग सर्वथा उचित है।

प्रभात जी ने 'कैकेयी' महाकाव्य में अपनी उदात्तता का परिचय दिया है। सच्चा कवि साधारण व्यक्ति नहीं होता है– साधारण होते हुए भी उनमें विशेषज्ञता और विशिष्टता के गुण होते हैं। इसीलिए सच्चा कवि असाधारण होता है दर्पणकार कहते हैं–

''नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।''[18]

कवि प्रभात ने 'कैकेयी' महाकाव्य में कैकेयी के चरित्र को उजागर करने का ही आद्यन्त प्रयास किया है। कवि का ध्यान इसी उद्देश्य पर दिखाई पड़ता है। इसे एकार्थकाव्य भी इसी आधार पर कह सकते हैं। इसमें कैकेयी के रूप स्वरूप, उदात्तता को राष्ट्रमाता के रूप में ही सारे काव्य का प्राण स्वरूपा ही प्रस्तुत किया है। नारी का ऐसा उदात्त चित्रण विश्व साहित्य में दुर्लभ है। यद्यपि इस महाकाव्य का सृजन 1951 ई0 में किया जो छायावादी सीमा की अवधि में नहीं आता। परन्तु, छायावाद की सम्पूर्ण विशेषताएँ इसमें परिलक्षित होती हैं। चित्रात्मक भाषा, उल्लेख अलंकार का अबाध प्रवाह काव्य सौष्ठव का प्रमुख गुण है। राष्ट्रीय भावनाओं की चिंतनपूर्ण प्रतीकात्मक अभिव्यंजना शीतल शांति विधात्री क्रांति का स्वीकार और मानवता की रक्षा के लिए उत्सर्ग का सन्देश उसका स्पृहणीय भाव पक्ष है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ0 सूरजपाल शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' उनकी प्रतिभा और कला, ईशान प्रकाशन, शिवपुरी, मेरठ, संस्करण– 2004, पृ0 63
2. महाकवि प्रभात साहित्य शोध संस्थान, इलावर्त, राजेन्द्र नगर, पटना, पृ0 32
3. वही, पृ0 58
4. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', ऋतम्बरा महाकाव्य, नवभारत प्रकाशन, पृ0 127
5. वही, पृ0 118
6. वही, पृ0 119
7. डॉ0 सूरजपाल शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' उनकी प्रतिभा और कला, पृ0 65
8. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', ऋतम्बरा महाकाव्य, नवभारत प्रकाशन, पृ0 160
9. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', कैकेयी महाकाव्य, नवभारत प्रकाशन, पृ0 95
10. वही, पृ0 107
11. वही, पृ0 121
12. वही, पृ0 132
13. वही, पृ0 133
14. डॉ0 सूरजपाल शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' उनकी प्रतिभा और कला, पृ0 69
15. नंदकिशोर नंदन, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' सांस्कृतिक चेतना के कवि, पृ0 20
16. वही, पृ0 23
17. डॉ0 सूरजपाल शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' उनकी प्रतिभा और कला, पृ0 70
18. महाकवि प्रभात साहित्य शोध संस्थान, इलावर्त, राजेन्द्र नगर, पटना, पृ0 72

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

''हिंदी में आगत स्वनों का व्यतिरेकी विश्लेषण''

(Contrastive analysis of borrowing phones in Hindi)

कपिलदेव कुमार पासवान

संपर्क सूत्रः 0091–9911287664

'आगत'[1] शब्द हिंदी में संस्कृत से लिया गया है जो एक विशेषण के रूप में प्रयोग होता है और इसका शाब्दिक अर्थ होता है– ''बाहर से आया हुआ या बाहर से प्राप्त'' अंग्रेजी में इसे ''Borrowing[2]'' कहा जाता है। किंतु कहीं–कहीं इसके लिए 'Loan' शब्द भी प्रयोग में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार हिंदी में आगत ध्वनियों से तात्पर्य है– 'किसी दूसरी भाषा या विदेशी भाषा से आई हुई विशेष ध्वनियों का प्रयोग जो हिंदी भाषा और समाज में अपनी जगह सहज रूप से स्थापित कर ली है।'

इन आगत ध्वनियों से हिंदी भाषा का संवर्धन और विकास हुआ है और अधिक से अधिक सूक्ष्म विचारों की अभिव्यक्ति हेतु हिंदी भाषा की सामर्थ में भी वृद्धि हुई है।

बेहतर समझ हेतु आई.पी.एल. (Indian Primier League) का दृष्टांत लिया जा सकता है। 2008 से आयोजित इस किक्रेट प्रतियोगिता के लिए विभिन्न दलों (Teams) हेतु खिलाड़ियों (Players) की खुली निलामी होती है जिसमें फार्म, पिछला रिकार्ड और शारीरिक रूप से फिट खिलाड़ियों का चयन उच्च कीमतों पर किया जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इतने पैसे खर्च करने के पीछे 'Team Owner' की मनसा क्या होती है? इसका सीधा और आसान जवाब है 'Strenghthen the Team' अर्थात अपनी टीम को सभी दृष्टियों से मजबूती प्रदान करना। ताकी विपक्षी दल के खिलाफ अच्छा प्रदर्शन कर जीत दर्ज कर सके।

ठीक इसी प्रकार भाषा को अधिक, सामर्थ्य, सशक्त और अभिव्यक्तिपरक बनाने के लिए विदेशी शब्दों को लिया जाता है और इसके द्वारा ध्वनियों का भी आगमन स्वतः हो जाता है। क्योंकि बिना ध्वनियों के संयोग से शब्द का निर्माण संभव नहीं। इस प्रकार एक भाषा से दूसरी भाषा में ध्वनियों का स्वतः आगमन होता है और उस भाषा में स्वभाविक रूप से रच–बस जाती है। इस दृष्टि से हिन्दी की पाचन प्रणाली बहुत ही उपयोगी है। परिणामतः अरबी–फ़ारसी और अंग्रेज़ी की कुछ महत्वपूर्ण ध्वनियाँ हिंदी में घुल–मिल गयी। जैसे– [क़], [ख़], [ग़], [ज], [फ़]।

''अरबी–फ़ारसी में अनेक ध्वनियाँ हिन्दी से भिन्न हैं, परन्तु उनमें पाँच ध्वनियाँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग हिन्दी लेखन में पाया जाता है, अर्थात् क़, ख़, ग़, ज़, फ़।[3]

ठीक इसी प्रकार एक अन्य महत्वपूर्ण ध्वनि अंग्रेज़ी से भी हिंदी में आयी है जो हिंदी को और भी शक्ति प्रदान करती है और साथ–साथ हिन्दी भाषा का इसके माध्यम से संवर्धन भी हुआ।

''खड़ी बोली हिन्दी को अंग्रेज़ी की एक स्वर ध्वनि और दो व्यंजन ध्वनियाँ अपनानी पड़ी है क्योंकि बहुत से ऐसे शब्द हिन्दी ने उधार में लिए हैं जिनमें ये ध्वनियाँ आती हैं। शुद्धतावादी इनका कड़ाई से प्रयोग करते हैं– ऑ, डॉक्टर, ऑफिस; ज़ जैसे ज़ेबरा, ज़िप; फ जैसे फीस, फिटर।''[4]

इन स्रोत भाषाओं में अरबी–फ़ारसी और अंग्रेज़ी से आयी ध्वनियों में तीन ध्वनियाँ ऐसी हैं जो बिल्कुल समान हैं। जैसे– क़ फ़ और ज़ ये तीनों ध्वनियाँ अरबी–फारसी और अंग्रेज़ी में सामान रूप से मिलती हैं। यहाँ एक मुख्य बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि हिंदी भाषा में केवल ध्वनियाँ ग्रहण की गयी हैं और वर्ण या संकेत का विकास या निर्माण विद्वजनों ने हिंदी के स्वाभावानुसार ही किया है।

उदाहरणः–

हिंदी	**अंग्रेज़ी**
[क़]	[q]
[ज़]	[z]
[फ़]	[f]

इससे स्पष्ट होता है कि एक ही ध्वनि के लिए अलग–अलग भाषाओं में अलग–अलग वर्णों या संकेतों की व्यवस्था की गई है जो यह स्पष्ट करता है कि जिस तरह शब्द और अर्थ के बीच कोई ताार्किक संबंध नहीं होता ठीक उसी प्रकार ध्वनि और उसको प्रतिनिधित्व करने वाले संकेत या वर्ण व्यवस्था के बीच भी कोई तार्किक या स्वभाविक संबंध नहीं होता; जो भाषा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यादृच्छिकता (Arbitrariness) को दर्शाता है। यादृच्छिकता का शाब्दिक अर्थ होता है इच्छानुसार या माना हुआ। इस प्रकार सभी ध्वनि को दर्शाने वाला वर्ण या संकेत इस यादृच्छिकता का ही परिणाम है।

"It is generally the case that there is no 'natural' Connection between a Linguistic form and its meaning. You cannot change the Arabic word كلب, and form its shape, for example, determine that it has a natural meaning, any more than you can with (its English translation form dog. The Linguistic forms have no natural or "iconic" relationship with the four - legged barking object out in the world. Recognizing this general fact about language leads us to conclude that a property of Linguistic signs is their arbitrary relationship with the objects they are used to indicate."[5]

अगर ध्यानपूर्वक देखें तो हिंदी में आगत स्वनों (Borrowing phones) की तरह पहले से ही इससे मिलती–जुलती ध्वनियाँ थीं और हैं। किंतु सुनने और दिखने में समान लगने वाली इन ध्वनियों में बारीक व महत्वपूर्ण अंतर है। इन अंतरों के आधार हैं– उच्चारण स्थान, उच्चारण की प्रक्रिया और अर्थभेद की क्षमता। इन एक जैसी ध्वनियों में प्राप्त अंतरों को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (Applied Linguistics) में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है; विशेषकर अनुवाद (Translation) और भाषा–शिक्षण (Language Teaching) के लिए। इन अंतरों को अनुवादकों और भाषा सीखने वाले विद्यार्थियों के बीच व्यतिरेकी विश्लेषण (Contrastive Analysis) का प्रयोग कर स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है जो दोनों ही अर्थात अनुवादकों और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है।

''व्यतिरेक का अर्थ है अंतर या विरोधात्मक स्थिति। विभिन्न स्तरों पर दो भाषाओं की संरचनाओं की परस्पर तुलना कर उनमें समान और असमान तत्वों का विश्लेषण करना व्यतिरेकी विश्लेषण कहलाता है। भाषा के ये विभिन्न स्तर या अंग हैं– ध्वनि, लिपि, व्याकरण, शब्द, अर्थ, वाक्य और संस्कृति। इस विश्लेषण के फलस्वरूप दो भाषाओं के विभिन्न अंगो के बीच समान और असमान संरचनाओं का विश्वसनीय और व्यवस्थित विवरण प्राप्त होता है जिसका उपयोग मुख्यतः भाषा–शिक्षण और अनुवाद में किया जाता है।''[6]

इस प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण सभी महत्वपूर्ण स्तरों पर किया जाता है किंतु यहाँ विवेच्य विषय ध्वनियों पर आधारित है जो व्यतिरेकी विश्लेषण हेतु भाषा की मूल इकाई है। आगत ध्वनियों का व्यतिरेकी विश्लेषण हम निम्नलिखित आधार पर कर सकते हैंः–

1. **उच्चारण स्थान (Place of articulation)**ः– ध्वनियों के उच्चारण स्थान के बारे में हम स्वनविज्ञान (Phonetics) की महत्वपूर्ण शाखा उच्चारणात्मक स्वनविज्ञान (Articulatory Phonetics) में अध्ययन करते हैं। यहाँ उच्चारण स्थान से तात्पर्य है किसी विशेष ध्वनि का उच्चारण करते हुए मुख विवर (Vocal Tract) के किसी स्थान विशेष से जब हमारी जीभ छू जाती है; परिणामस्वरूप उस स्थान विशेष से विशेष ध्वनि का उच्चारण होता है। उसी स्थान विशेष के आधार पर उस ध्वनि का नामकरण किया जाता है।

   जैसेः– कण्ठ्य (Velar), ओष्ठ्य (Bilabial), दन्तोष्ठ्य (Labio-dental) आदि। ''The location in the vocal tract where an articulation occurs is called the place of articulation.''[7]

2. **उच्चारण–प्रक्रिया (Manner of articulation)ः–** स्वनों के उच्चारण के लिए मुखविवर से आनेवाली वायु उच्चारण अवयवों से अवरूद्ध या परिवर्तित होकर बाहर आती है जो अलग–अलग स्वनों के उच्चारण में सहायक होता है। स्वरतंत्रियों से लेकर ओष्ठ तक होने वाली सभी प्रक्रिया इसी के अन्तर्गत आती हैं।

जैसे– स्पर्श (Stop/plosive), स्पर्श–संघर्षी (Affricate), संघर्षी (Fricative) आदि।

"A manner of articulation label, such as 'plosive' or 'fricative', refers to the way in which the airstream used for a speech sound is modified by the primary and secondary articulators."[8]

उपर्युक्त उच्चारण स्थान (Place of articulation) और उच्चारण प्रक्रिया (Manners of articulation) के आधार पर आगत स्वनों का व्यतिरेकी विश्लेषणः–

उच्चारण स्थान	उच्चारण प्रक्रिया
1. **[क]** यह कण्ठ्य (Velar) स्वन जीह्वापश्च के द्वारा कोमल–तालु को छूने पर उच्चारित होता है। इसके साथ–साथ (क) स्वन अल्पप्राण और अघोष भी है। इसे ''IPA (International Phonetic Alphabet)''[9] में [k] द्वारा दर्शाया गया है। यह स्वन हिंदी और अंग्रेजी भाषा में मिलता है।	**1. [क]** उच्चारण प्रक्रिया के आधार पर यह स्पर्श (Stop) स्वन है। इसके उच्चारण प्रक्रिया के तीन चरण देखे जाते हैंः– (i) दो उच्चारण अवयव एक दूसरे के संपर्क में आता हैः– (ii) संपर्क में आए उच्चारण अवयव मुख विवर से आ रही हवा को रोक देता है। (iii) संपर्क में आए उच्चारण अवयव एक–दूसरे से दूर हो जाते हैं और हवा स्फोटित रूप से बाहर निकल जाती है। इस प्रक्रिया के तीनों चरणों को डायग्राम के द्वारा भी दर्शाया जा सकता हैः– 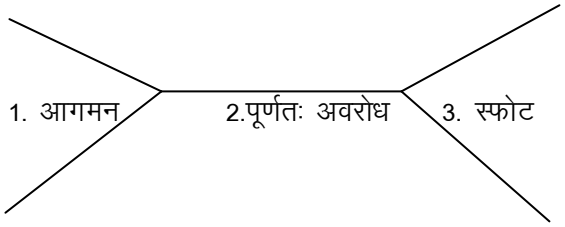

	पहला चरण आगमन (Articulators come together) दूसरा चरण अवरोध (Hold) और तीसरा चरण स्पफोट (Release या Explosion) कहलाता है।
2. [क़] अलिजिह्वीय (Uvular) स्वन है जो अलिजिह्वा (Uvula) और जिह्वापश्च (Back of the tongue) के संपर्क मे आने से उत्पन्न होता है। इसके साथ–साथ [क़] स्वन अल्पप्राण और अघोष भी है। IPA (International Phonetic Alphabet) में इसे [q] द्वारा दर्शाया गया है। यह स्वन अरबी–फ़ारसी, उर्दू, अंग्रेजी और हिंदी में मिलता है। हिंदी में इस स्वन को अरबी–फ़ारसी से ग्रहण किया गया है।	**2. [क़]** की उच्चारण प्रक्रिया बिल्कुल [क] की तरह है और बिल्कुल समान हैः– 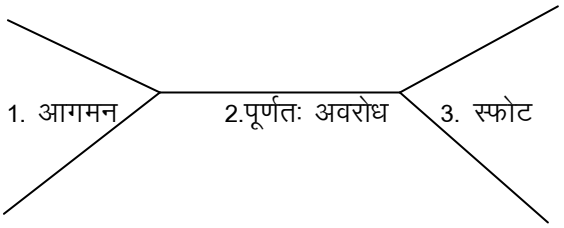
3. [ख] इस स्वन का उच्चारण स्थान [क] जैसा ही है; किंतु यह [क] का महाप्राण (Aspirated) रूप है। ''इसकी उच्चारण विधि [क] की तरह है इसमें अन्तर यह है कि यह महाप्राण ध्वनि है, अतः इसमें आन्तरिक वायु प्रवाह अधिक होता है।''[10] यह स्वन हिन्दी और संस्कृत में मिलता है। यह हिंदी और संस्कृत में स्वनिम (Phoneme) के रूप में प्रयोग होता है। क्योंकि यह अर्थ परिवर्तन की क्षमता रखता है। जैसे– क़ल–ख़ल जबकि अंग्रेजी में यह (क) के ही संस्वन (allphone) है और अर्थ परिवर्तन की क्षमता नहीं रखते।	**3. [ख]** स्वन की उच्चारण प्रक्रिया बिल्कुल [क] स्वन की तरह ही है। 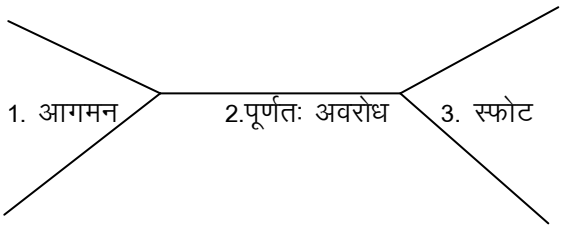
4. [ख़] इस स्वन का उच्चारण स्थान कण्ठ्य (Uvular) है। यह स्वन अघोष है यह अरबी–फ़ारसी के साथ–साथ हिंदी में भी प्रयुक्त होता है। इसे IPA में [x] द्वारा दर्शाया गया है।	**4. [ख़]** उच्चारण प्रक्रिया के आधार पर यह स्वन संघर्षी (Fricative) है। इस स्वन के उच्चारण में वायु दो उच्चारण अवयवों के बीच बहुत संकड़े मार्ग से संघर्ष करती हुई मुख विवर से बाहर आती है। इसलिए इस स्वन को संघर्षी (Fricative) कहा जाता है। 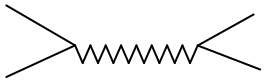

5. [ग] इस स्वन का भी उच्चारण स्थान वही है जो [क] स्वन का अर्थात कण्ठ् (Velar) है। इन दोनों में अंतर सिर्फ इतना है कि [क] स्वन अघोष (Voiceless) जबकि [ग] सघोष (Voiced) है। इसे IPA में [g] से दर्शाया गया है।	**5. [ग]** स्वन की उच्चारण प्रक्रिया में [क] और [ख] की तुलना में अंतर है। इस स्वन का उच्चारण करते समय स्वरतंत्रियाँ (Vocal folds) बंद रहती है और परिणामस्वरूप कंपन के साथ वायु बाहर निकलती हैं। "Voiced produced with accompanying vocal fold vibration"[11]
6. [ग़] स्वन का उच्चारण स्थान अलिजिह्वीय (Uvalar) है जबकि [ग] स्वन का उच्चारण स्थान कण्ठ्य (Velar) है और दोनों सघोष (Voiced) है। IPA में इसे [G] द्वारा दर्शाया गया है। इसका प्रयोग अरबी–फ़ारसी में होता है किंतु हिंदी में जागरूक वक्ता भी इसका प्रयोग करते हुए सुने जाते हैं। यह अंग्रेजी में नहीं मिलता है। हिंदी में अरबी–फ़ारसी से ही इस स्वन को ग्रहण किया गया है।	**6. [ग़]** स्वन की उच्चारण प्रक्रिया बिलकुल [ग] स्वन की तरह ही है। इस प्रकार दोनों स्वन [ग] और [ग़] में सिर्फ उच्चारण स्थान के आधार पर भिन्नता है। "The active articulator is the back of the tongue and the passive articulator is the very back part of the velum, where the uvula is located. Uvular sounds do not occur in English, but can be found in some varieties of Arabic. They sound like very far back velar sounds. For example, [q] is the Uvular equivalent of [k] and [G] is the Uvular equivalent of [g]"[12]
7. [ज] इस स्वन का उच्चारण स्थान वर्त्स्य–तालव्य (Alveo-palatal) है। जिहव्ा के अग्र भाग के द्वारा वर्त्स (ऊपरी दाँत का पीछे वाला हिस्सा) और कठोर– तालव्य के बीच के हिस्से से जिह्वा का जब संपर्क होता है तब इस स्वन का सही उच्चारण संभव हो पाता है। यह स्वन अल्पप्राण (Unaspirated) और सघोष (Voiced) भी है। भाषाविज्ञान में इस स्वन को **[dʒ]** के	**7. [ज]** उच्चारण प्रक्रिया के आधार पर यह [ज] स्वन स्पर्श–संघर्षी (Affricate) कहलाता है। यह स्वन स्पर्श–संघर्षी इसलिए कहलाता है क्योंकि इसके उच्चारण प्रक्रिया में पहला चरण स्पर्श (Stop) और दूसरा चरण संघर्षी (Fricative) का होता है। इस प्रक्रिया में वायु का मुख विवर से निकलना स्पर्श की तरह एक झटके में न होकर

रूप में दर्शाया जाता है। इसका हिंदी और अंग्रेजी आदि भाषाओं में प्रयोग होता है।	धीरे–धीरे होता है। परिणामस्वरूप वायु धीरे–धीरे घर्षण के साथ निकलती है। इस प्रकार इस स्वन के उच्चारण में स्पर्श और घर्षण दोनों होता है। अतः इसे स्पर्श संघर्षी कहा जाता है। इसे डायग्राम द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है:– 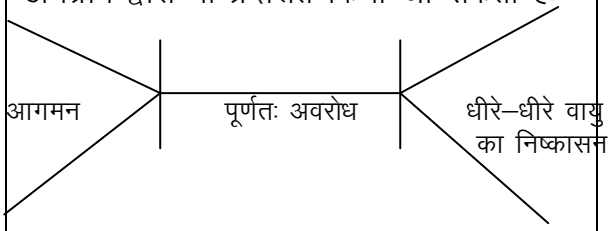
8. [ज़] यह स्वन उच्चारण स्थान की दृष्टि से वर्त्स्य (Alveolar) है। इसके उच्चारण में जीभ का अग्र भाग (Tip of the tongue) वर्त्स (Alveolar ridge) से आकर मिलता है, तब उस स्वन का सही उच्चारण होता है। यह अल्पप्राण (unaspirated) और सघोष (Voiced) भी है।) IPA में इस स्वन को (Z) से दर्शाया गया है। इसका हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी और अरबी–फ़ारसी आदि भाषाओं में प्रयोग होता है।	**8. [ज़]** यह स्वन उच्चारण प्रक्रिया की दृष्टि से मध्य–संघर्षी (Median-Fricative) है। क्योंकि इस स्वन के उच्चारण में उच्चारण अवयव इस स्थिति में होता है; जहाँ मुख विवर के मध्य से वायु का निकलना बंद हो जाता हैं। (किंतु जीभ के दोनों किनारों और ऊपर वाले दाँतों और मसूड़ों के बीच संकीर्ण स्थान (Narrow Space) के पार्श्विकता से वायु निसृत होती है। इसलिए इसे मध्य–संघर्षी (Median-fricative) स्वन कहते है। इसे डायग्राम के द्वारा भी दर्शाया जा सकता है। 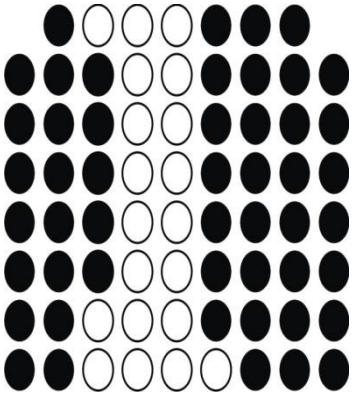

	प्लेटोग्राम – ज़ "the articulators are arranged so that air flows only through a narrow channel in the centre of the cavity. This is why an articulation of this type is termed median. The sides of the tongue are in firm contact with the upper side teeth and gums, preventing airflow passing that way."[13]
9. [फ] उच्चारण स्थान के आधार पर यह स्वन ओष्ठ्य (bilabial) है। क्योंकि इसके उच्चारण में हमारे नीचे का ओष्ठ और ऊपर के ओष्ठ एक दूसरे से आकर मिलता है। परिणामस्वरूप यह स्वन उच्चरित होता है। यह [प] का महाप्राण (Aspirated) रूप है और अघोष (Voiceless) स्वन है। यह हिंदी और अंग्रेजी में प्रयोग होता है। IPA में इसे अलग से स्थान नहीं दिया गया है। क्योंकि यह [P] का ही महाप्राणत्व रूप है। इसे [p^h] से भाषाविज्ञान में दर्शाया जाता है।	**9. [फ]** स्वन की उच्चारण प्रक्रिया बिल्कुल [क] या [प] स्वन की तरह ही है। क्योंकि यह भी स्पर्श या स्फोट (Stop /Plosive) स्वन है। अंतर सिर्फ इतना है कि [क] के उच्चारण में जीभ का पश्च भाग और कण्ठ संपर्क में आता है, जबकि [फ] या [प] के उच्चारण में दोनों ओष्ठ एक दूसरे के संपर्क में आता है। अन्य सभी प्रक्रिया [क] के तीनों चरणों की तरह ही होती हैं:– 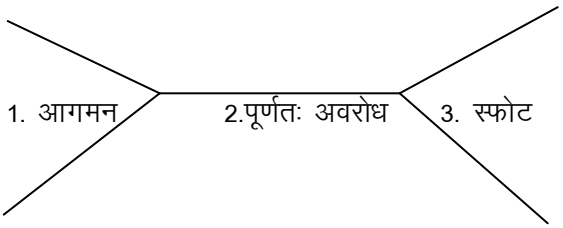
10. [फ़] यह स्वन उच्चारण स्थान के आधार पर दन्तोष्ठ्य (Labio-dental) है। क्योंकि इसके उच्चारण में नीचे के ओष्ठ (Lower Lip) और ऊपर के दाँत (Upper teeth) एक दूसरे के संपर्क में आता है। परिणामस्वरूप दन्तोष्ठ्य स्वन का उच्चारण होता है। यह स्वन अघोष (Voiceless) है और IPA में इसे [f] द्वारा दर्शाया गया है। अरबी–फ़ारसी, उर्दू, हिंदी और अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में प्रयोग होता है। इस प्रकार [फ़] स्वन [फ] से उच्चारण स्थान के आधार पर भिन्न है। [फ] जहाँ ओष्ठ्य (Bilabial) है वहीं [फ़] दन्तोष्ठ्य (Labio-dental) है।	**10. [फ़]** यह स्वन उच्चारण प्रक्रिया के आधार पर भी [फ] से भिन्न है। [फ] जहाँ स्फोट या स्पर्श स्वन है वहीं [फ़] संघर्षी (Fricative) स्वन है। क्योंकि ऊपर के दाँत और नीचे के ओष्ठ संपर्क में आने से छोटे–छोटे छिद्रों के निर्माण होते हैं। परिणामतः वायु संघर्ष करती हुई उन्हीं छिद्रों से बाहर आती है इसलिए इसे संघर्षी (Fricative) स्वन कहा जाता है। "Labio-dentals (lower lip and upper front teeth) most people, when saying words such as "fie, vie" raise the lower lip until it nearly touches the upper front teeth." [14]

हमने व्यंजनों के संदर्भ में उसके उच्चारण स्थान और उच्चारण प्रक्रिया को देखा किंतु स्वर के संदर्भ में हम उच्चारण प्रक्रिया को देखेंगे। क्योंकि स्वर के उच्चारण में वायु में कोई उच्चारण अवयव वायु के निकलने में कोई बाधा या रूकावट उत्पन्न नहीं करता है।

11. **[आ]** :– स्वर की उच्चारण प्रक्रिया के चरण–

(i) **ऊँचाई**:– [आ] स्वन के उच्चारण में जीभ बिलकुल भी ऊपर नहीं उठती है और हमारे मुख विवर में तालु और जीभ के बीच एक बड़ा रिक्त स्थान बनता है। इस स्थिति में हम इसे विवृत (open) या निम्न (low) स्वर कहते हैं।

(ii) **स्थान**:– इसके उच्चारण में जीभ का पश्च (back of the tongue) भाग कोमल तालु (Soft palate) की ओर आ जाती है। इस स्थिति में हम इसे पश्च स्वर (Back vowel) कहते हैं।

(iii) **ओष्ठ की स्थिति–** स्वरों के उच्चारण में ओष्ठ की स्थिति का विशेष महत्व होता है। इसके आधार पर [आ] स्वर अवर्तुलित (Unrounded) है; क्योंकि इसके उच्चारण में ओष्ठ वर्तुलित (round) नहीं होता।

(iv) **मात्रा:–** उच्चारण में लगे समय की मात्राा की दृष्टि से [अ] की तुलना में [आ] के उच्चारण में अधिक समय लगता है। इसलिए इसे दीर्घ (Long) कहा जाता है।

अतः [आ] स्वर स्वन को 'दीर्घ अवर्तुलित पश्च विवृत' कहेंगे। इसे IPA Diacritic (विशेषक) की सहायता से [ɑ:] के रूप में दर्शाया गया है। यह स्वर हिंदी–अग्रेज़ी आदि भाषाओं में प्रयोग होता है।

12. **[ऑ]** :– स्वर की उच्चारण प्रक्रिया के चरण –

(i) ऊँचाई:– इस स्वर के उच्चारण में [आ] की तुलना में जीभ थोड़ी ऊपर उठकर इस स्थिति में आ जाती है कि ना तो वह उच्च (High) स्थिति में रहती है और ना ही निम्न (Low) स्थिति में परिणामस्वरूप मध्य (Mid) स्वर की निर्मिति होती है। इसे दूसरे शब्दों में अर्ध–विवृत (half-open) भी कहा जाता है।

(ii) **स्थान:–** इसके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग (Back of the tongue) कोमल तालु (Soft Palate) की ओर आ जाती है। इस स्थिति में हम इसे पश्च स्वर (Back vowel) कहते हैं।

(iii) **ओष्ठ की स्थिति:–** [आ] की तुलना में थोड़ा वर्तुलित (Little rounded) होता है।

(iv) **मात्रा:–** बिल्कुल [आ] की तरह ही दीर्घ है। अतः [ऑ] स्वर स्वन को दीर्घ अर्ध अवर्तुलित पश्च विवृत कहेंगे। इसे IPA Diacritic (विशेषक) की सहायता से [ɔ:] के रूप में दर्शाया जाता है। यह स्वर हिंदी–अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में प्रयोग होता है।

इन दोनों स्वर स्वनों को डायग्राम में निम्न तरीके से दर्शाया जा सकता है:–

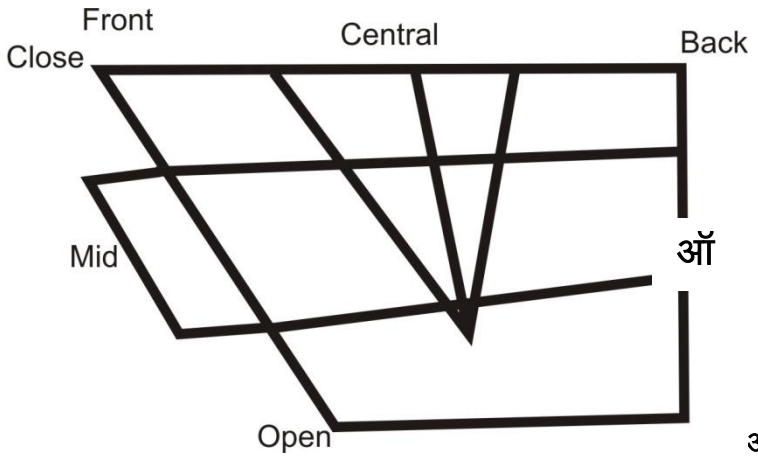

आ ;ɑ:द्ध

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि [अ–ऑ], [क–क], [ख–ख], [ग–ग़], [फ–फ़], [ज–ज़] आदि सभी युग्मों में अपनी स्वाभाविक विशेषताओं के आधार पर मौलिक, महत्वपूर्ण व सूक्ष्म अंतर है। इन स्वनों के उच्चारण मे अंतर होने से शब्दों के अर्थ में भी परिवर्तन और भेद आ जाता है। लेखन व्यवस्था में भी अंतर स्पष्ट करने के लिए इसे **नुक्ता (.)** की सहायता से भिन्न रूप में संकेतित करने का सफल प्रयास किया गया है। भाषाविज्ञान में ऐसे स्वन को जो अर्थभेदक ईकाई होती है या जो अर्थभेद की क्षमता रखती है; उसे स्वनिम (Phoneme) कहा जाता है। स्वनिम को स्लैश (/ /) के अन्दर दर्शाया जाता है और इसका निर्धारण व्यतिरेकी विशलेषण (Contrastive Analysis) के आधार पर किया जाता है।

"Each one of these meaning - distinguishing sounds in a language is described as a phoneme …….. An essential property of a Phoneme is that it functions contrastively we know that there are two phonemes /f/ and /v/ in English because they are the only basis of the contrast in meaning between the forms ***fat*** and ***vat*** or ***fine*** and ***vine***"[15].

इस आधार पर अगर हम विवेच्य स्वनों का मूल्यांकन करें तो स्पष्ट होता है कि ये सभी स्वन (Phone) स्वतंत्र स्वनिम (Phoneme) की सभी विशेषताओं से युक्त हैं।

जैसेः–

आ	–	ऑ	काल–कॉल, काफ़ी–कॉफ़ी, हाल–हॉल, माल–मॉल
क	–	क़	ताक–(देखना), ताक़ (दीवार का आला या रखने का स्थान)
ख	–	ख़	खैर (एक पेड़), ख़ैर (कुशल)
ग	–	ग़	गौर (वर्ण) , ग़ौर (ध्यान)
ज	–	ज़	जरा (बुढापा), ज़रा (थोड़ा)
फ	–	फ़	फन (साँप का), फ़न (कला या हुनर)

इस प्रकार आगत स्वन हिंदी को और भी अभिव्यक्ति हेतु अधिक सशक्त बनाते हैं किंतु इसे प्रयोग करने के लिए इनकी बारिकियों का ध्यान रखना आवश्यक है। क्योंकि ये ध्वनियाँ अर्थ–भेदक हैं, इसके प्रयोग में छोटी सी गलती अर्थ का अनर्थ कर सकता है। विशेषरूप से अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (Applied Linguistics) की महत्वपूर्ण शाखा अनुवाद (Translation) और भाषा शिक्षण (Language teaching) के क्षेत्र में। ये भाषा चाहे द्वितीय भाषा के रूप में हो या विदेशी भाषा के रूप में।

संदर्भ :

1. बृहत हिन्दी कोश– सम्पादक–कालिका प्रसाद, राधावल्लभ सहाय मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी पृष्ठ–118
2. Oxfrord Concise Dictionary of Linguistics- P.H. MATTHEWS- Oxford University Press, page-43
3. हिन्दी भाषा– डॉ. हरदेव बाहरी, अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहबाद, पृष्ठ 63
4. हिन्दी भाषा– डॉ. हरदेव बाहरी, अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहबाद, पृष्ठ 65
5. The Study of language – George Yule, Cambridge University Press, Page 21
6. अंग्रेजी–हिंदी अनुवाद व्याकरण– प्रो. सूरजभान सिंह, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 27
7. Introducing Phonetic Science: MICHAEL ASHBY AND JOHN MAIDMENT, CAMBRIDGE UNIVERSITY PRESS Page 36
8. Introducing Phonetic Science- MICHAEL ASHBY AND JOHN MAIDMENT CAMBRIDGE UNIVERSITY PRESS page 52
9. Introducing Phonetic Science- MICHAEL ASHBY AND JOHN MAIDMENT CAMBRIDGE UNVERSITY PRESS page-3
10. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 172
11. Introducing Phonetic Science- MICHAEL ASHHBY AND JOHN MAIDMENT, CAMBRIDGE UNIVERSITY PRESS Page-40
12. Introducing Phonetic Science- MICHEL ASHBY AND JOHN MAIDMANT, CAMBRIDGE UNIVERSITY PRESS, PAGE- 38
13. Introducing phonetic science MICHAEL ASHBY AND JOHN MAIDMENT COMBRIDGE UNIVERSITY PRESS page-57
14. A Course in Phonetics Peter Ladefoged, Publisher Earl Mcpeek, page-6
15. The Study of Language- George Yule, CAMBRIDGE UNIVERSITY PRESS, Page 54-55

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

बच्चन सिंह की इतिहास दृष्टि सन्दर्भ 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास'

डॉ. मिथिलेश कुमार शुक्ल

नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में आचार्य शुक्ल का इतिहास हिमालय की तरह खड़ा है। इतिहास लेखन की परंपरा गार्सा–दा–तासी (1839), शिवसिंह सेंगर (1883), जार्ज ग्रियर्सन (1888), मिश्रबन्धु (1913) से होकर आचार्य शुक्ल तक पहुँची थी, जिसका आगे भी विकास हुआ। आगे के इतिहासकारों ने शुक्ल जी को ही कहीं काटा है और कहीं पाटा है। इसी क्रम में एक प्रयास डॉ. बच्चन सिंह ने भी किया है, जिसका नाम 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' है। यह इतिहास ग्रंथ सन् 1996 ई. में प्रकाशित हुआ। बच्चन सिंह जानते हैं कि पहला कौन है इसलिए उन्होंने 'दूसरा' लिखा और 'तीसरे', 'चौथे' की संभावना छोड़ गये। बच्चन जी के इतिहास की भूमिका की पहली पंक्ति है कि ''आरंभ में ही कह दूँ कि न तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिन्दीसाहित्य का इतिहास' (1929) को लेकर दूसरा नया इतिहास लिखा जा सकता है और न उसे छोड़कर।"[1] इस कथन से कौन–सा 'मध्यर्म मार्ग' निकलता है? अगर आप समझ रहे हैं तो बेहतर है। इसी परिच्छेद में वे आगे कहते हैं– "नए इतिहासके लिए शुक्ल जी का इतिहास एक चुनौती है। उनसे बहुत कुछ सीखने के साथ ही अनेक ऐतिहासिक पैटर्न को तोड़ना होगा। (क्यों?) जब रचनात्मक साहित्य पुराने पैटर्न को तोड़कर नया बनता है तो साहित्य के इतिहास पर वह क्यों न लागू हो? (अच्छा सिर्फ इसलिए) नया पैटर्न बनाना खतरे से खाली नहीं है। 'नया इतिहास' लिखने के लिए यह खतरा उठाना होगा।" और बच्चन सिंह ने कफन बाँधकर जोखिम उठा लिया। अगले परिच्छेद में वे कहते हैं "यह भी ध्यातव्य है कि शुक्ल जी का इतिहास औपनिवेशिक भारत में लिखा गया। अब देश स्वतंत्र है, उसमें लोकतांत्रिक व्यवस्था है। भारतीय लोकतंत्र की अपनी समस्याएँ हैं, सांस्कृतिक सामाजिक संघर्ष है, इन्हें देखने समझने का बदला हुआ नजरिया है।"[2] लगता है कि बच्चन सिंह ने भारतीय लोकतंत्र के इस बदले परिदृश्य को ध्यान में रखकर नए संदर्भों में अपनी व्याख्या प्रस्तुत की होगी लेकिन ऐसा नहीं है। उनकी मंशा अगली पंक्ति में स्पष्ट हो जाती है जब वे कहते हैं कि "इस नये संदर्भ में यदि पिष्टपेषण नहीं करना है तो नया इतिहास ही लिखा जाएगा।" बच्चन सिंह का पूरा जोर सार्थक इतिहास लेखन की अपेक्षा 'नया इतिहास' लिखने पर है।

बच्चन सिंह के 'दूसरा इतिहास' का अन्तर्वस्तु के स्तर पर भी एक पड़ताल आवश्यक है। क्या बिना किसी सुचिंतित और सुव्यवस्थित दृष्टिकोण के साथ सार्थक इतिहास लिखा जा सकता है कि नया इतिहास लिखना है! सवाल है कि उसका आधार क्या है? बिना किसी सुव्यवस्थित धारणा, आलोचनात्मक विवेक और ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि के अभाव में साहित्येतिहास–लेख का ऐसा कोई भी प्रयास आचार्य शुक्ल से 'होड़' लगाने की कोशिश मात्र बनकर रह जाएगी। रामस्वरूप चतुर्वेदी के संवेदना के विकास में एक दृष्टि, एक विचारधारा देखने को मिलती है लेकिन बच्चन सिंह के इतिहास में मुक्त दृष्टिकोण के कारण किसी विचारधारा का या दृष्टि की समझ विकसित नहीं हो पाती।

चाहे वह किसी भी भाषा का साहित्येतिहास ग्रंथ हो वह केवल साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने वाला नहीं होना चाहिए। पाठक उसमें भाषा का इतिहास, समाज का इतिहास और उसके राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सरोकारों को भी तलाशता है। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाला प्रत्येक इतिहासकार को कम से कम अपने इतिहास का ढाँचा खड़ा करने के लिए इतनी कच्ची सामग्री तो चाहिए होगी कि वह काल विभाजन और उसका नामकरण कर सके। रचनाकारों और युग के मूल्यांकन और मूल्यनिर्णय के पश्चात अपनी मान्यताओं को व्यक्त कर सके। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कालविभाजन में कहीं–कहीं वर्षों को घटा बढ़ाकर मूलतः आचार्य शुक्ल के काल विभाजन और नामकरण को ही स्वीकार किया है। लेकिन बच्चन सिंह ने यह खतरा मोल लिया है आखिर 'नया इतिहास' जो लिखना है, पैटर्न तोड़ना है। अगर नामकरण और कालविभाजन वही रह गया तो न ऐतिहासिक पैटर्न टूटेगा और न नया इतिहास लिखा जायेगा।

काल विभाजन और नामकरण

इस उपविभाग के अन्तर्गत बच्चन सिंह ने अपनी काल–विभाजन और नामकरण के लिए जो तर्क दिए हैं उस पर एक दृष्टि डाली जा रही है। शुक्ल जी के 'आदिकाल' के दोष को बताते हुए बच्चन सिंह कहते हैं, इससे बाबा आदम के जमाने का आभास होता है। भाषा की दृष्टि से 1000 स 1400 ई. का समय महत्त्वपूर्ण है। महत्त्वपूर्ण इसलिए नहीं है कि इसमें विभिन्न जातीय भाषाएँ निःस्सृत हुई बल्कि इसलिए है कि उसमें अनजाने ही देशी भाषाएँ अपनी जगह बनाने के लिए प्रयत्नशील थी। अतः इस काल को 'अपभ्रंश काल' जातीय साहित्य का उदय कहना अधिक संगत प्रतीत होता है। क्या इस नामकरण से उस काल की युगीन प्रवृत्ति का कुछ पता चलता है और अगर भाषा को ही किसी युग के नामकरण का आधार बनाया जाये तो बच्चन सिंह को 'रीतिकाल' को भी 'ब्रजकाल' कहना चाहिए।

'भक्तिकाल' भक्तिकाल है, मध्यकाल नहीं। मध्यकाल सामान्यतः जकड़ी हुई मनोवृत्ति का परिचायक है। इसे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जबदी हुई मनोवृत्ति कहते हैं। मतलब यह कि विरोध के लिए विरोध अपने पास तर्क नहीं तो दूसरे की हाँ में हाँ मिला दिए।

'रीतिकाल' अपने आप में स्वतंत्र काल है। इसे उत्तर–मध्यकाल कहना गणितीय भ्रमोत्पादन है। बच्चन सिंह रीतिकाल के संदर्भ में तर्कसंगत बात करते हुए आचार्य शुक्ल पर हल्ला बोल देते हैं और फिर उनके ही नामकरण को उलट कर रखते हुए उसकी कुछ शाखाएँ निकालकर 'नया इतिहास' लिखते हैं, जो कितना नया है? पाठक से छिपा नहीं है। बच्चन सिंह की मुख्य आपत्तियाँ आचार्य शुक्ल से रीतिकाल के संदर्भ में यह है कि "शुक्ल जी इसे दो भागों में बाँटते हैं– रीति ग्रंथकार कवि और अन्य कवि। अन्य कवि एक गोल शब्द है। इस कोटि में अर्थ की दृष्टि से हल्के कवि आयेंगे। घनानंद को शुक्ल जी रीतिकाल के सर्वोत्कृष्ट कवियों में मानते हैं। फिर उन्हें अन्य कवियों की बिरादरी में क्यों बिठाया जाता है? यहाँ पर उनकी इतिहास दृष्टि में खोट दिखाई पड़ती है। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में तो कोई खोट नहीं है वह इसलिए कि विभाजन केवल प्रवृत्ति के आधार पर अध्ययनगत सुविधा प्रदान करता है। लेकिन क्या आचार्य शुक्ल घनानंद के मूल्यांकन में चूकते हैं? क्या वहा उनकी दृष्टि में खोट नजर आता है? हिन्दी साहित्य और आलोचना घनानंद के मूल्यांकन में आचार्य शुक्ल से आगे कितना जोड़ सकी है? इसे भी ध्यान में रखना चाहिए। प्रकृति की दृष्टि से वे एक को रीतिबद्ध और दूसरे को रीतिमुक्त कहते हैं। इसके आधार पर रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध आदि मानते हैं। वास्तविकता तो यह है कि रीतिनिर्युक्त कोई नहीं है। रीतिमुक्त होकर कोई रीतिकालीन कैसे होगा? (बच्चन सिंह बच्चों से तर्क करते नजर आते हैं रीतिबद्ध का अविधा नहीं लक्षणा ग्रहण कीजिए?) बच्चन सिंह ने इस अवैज्ञानिक उपविभाजन को वैज्ञानिक उपविभाजन में बदलने के लिए एक 'भारी उलटफेर' किया। उन्हीं के शब्दों में

"रीतिबद्ध और रीतिमुक्त को मैंने उलट दिया है यानी रीतिबद्ध को बद्धरीति और रीतिमुक्त को मुक्तरीति कहा है।"[1] नया इतिहास लिखने में वाकई जोखिम उठाये हैं।

'छायावाद' नामकरण को बच्चन सिंह खारिज करते हुए उसके लिए 'स्वच्छंदतावाद–युग' नाम देते हैं और उसके पूर्व भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के काल को संयुक्त रूप से 'नवजागरण–युग' कहते हैं। रही बात काल–विभाजन की तो इसे भी तुलनात्मक रूप में देख लेना चाहिए।

आचार्य शुक्ल	बच्चन सिंह
आदिकाल (वीरगाथाकाल 993–1318 ई.)	अपभ्रंशकाल (1000–1400 ई.)
पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल 1318–1643 ई.)	भक्तिकाल (1400–1650 ई.)
उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल 1643–1843 ई.)	रीतिकाल (1650–1857 ई.)
आधुनिक काल (गद्यकाल 1843–1927 ई.)	नवजागरण–युग (1857–1920 ई. ई.)
	स्वच्छन्दतावाद–युग (1920–1938)
	उत्तर स्वच्छन्दतावाद–युग (1938–अद्यतन)

काल–विभाजन की रूपरेखा हमारे सामने हैं कुछ वर्षों के घटाव–बढ़ाव को छोड़ दिया जाय तो बच्चन सिंह के नवजागरण युग तक का कालविभाजन ढाँचा आचार्य शुक्ल से प्रभावित देखा जा सकता है। आदिकाल जिसे बच्चन सिंह अपभ्रंश काल कहते हैं उसकी समय सीमा इन्होंने 1400 ई. तक दिखायी है और अमीर खुसरो, मुल्ला, दाऊद, ज्योतिरिश्वर ठाकुर सबको अपभ्रंश काल के अंतर्गत हिन्दी कवि के अन्य खाते (फुटकर खाते) में डाल दिया है। इन बातों के अतिरिक्त एक अच्छी बात यह है कि रीतिकाल के समापन और नवजागरण युग के आरंभ के मध्य 'हिन्दी की उर्दू शैली का काव्य' की इन्होंने चर्चा की है। इसके पूर्व हिन्दी भाषा, जाति और साहित्य अध्याय की अंतिम पंक्तियों में बच्चन सिंह ने विचार प्रकट किये हैं कि "उर्दू साहित्य के इतिहास को भी हिन्दी साहित्य के अंग के रूप में देखना तर्कसगत और वैज्ञानिक है।"[2]

रचना, रचनाकार एवं रचनाकाल की व्याख्या तथा मूल्यांकन

बच्चन सिंह ने अपने इतिहास–ग्रंथ की भूमिका में कहा है कि 'पूर्ववर्ती साहित्य तो वही रहता है पर उसे पढ़ने की दृष्टि बदल जाती है।' भक्तिकाल को शुक्ल जी ने एक ढंग से पढ़ा और द्विवेदी जी ने दूसरे ढंग से। आज के परिवेश में, जो अंतर्राष्ट्रीय हलचलों से जुड़ गया है, नये सिरे से पढ़ने की जरूरत है। किसी हद तक हिन्दी साहित्य को इसी दृष्टि से पढ़ने और इतिहासबद्ध करने का प्रयास किया गया है।" पाठक के मन में इसे पढ़कर जो आशा जगती है वह जल्द ही बेबुनियाद साबित होती है। ऐसी किसी दृष्टि का पता इस इतिहास ग्रंथ से नहीं चलता और दूसरी बात यह कि मूल्यांकन के क्रम में कौन–सी बातें बच्चन सिंह ने अपनी ओर से कही हैं इसका संदेह लगातार बना रहता है। बच्चन सिंह न तो संदर्भ ग्रंथ का उल्लेख करते हैं और न उद्धरण चिन्हों का (बहुत कम आचार्य शुक्ल और द्विवेदी के संदर्भ में कहीं–कहीं देखने को मिलता है।)

भक्ति आंदोलन के चरित्र और स्वरूप की बात करते हुए बच्चन सिंह कहते हैं कि "देश के अन्य अंचलों की अपेक्षा हिन्दी भाषा–भाषी प्रदेश का भक्ति आंदोलन अपने वैविध्य और अंतर्विरोध में नाना रूपात्मक है।" "भक्ति आंदोलन के साथ देश के विभिन्न अंचलों में जातीय संघटन की शुरुआत भी हो जाती है। संस्कृत और अपभ्रंश का पल्ला छोड़ भक्तों ने देश भाषा में लिखना आरंभ कर दिया।"[3]

इसके बाद वे आचार्य शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी और ग्रियर्सन के भक्ति आंदोलन के उदय संबंधी मतों की व्याख्या करते हुए आगे बढ़ते हैं। गुरु नानक को एकलौता भक्त कवि मानते हैं जिन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध लिखा है। भक्तिकाव्य और भक्ति आंदोलन के संदर्भ में मुक्तिबोध ने एक सवाल उठाया था कि क्या कारण रहे कि सगुण काव्यधारा (रामाश्रय शाखा) में मुसलमान कवि नहीं हुए। बच्चन सिंह ने इसका जवाब तो नहीं दिया है लेकिन कृष्णकाव्यमें मुसलमानों के होने को यह कह कर संकेतित किया है कि "चूँकि कृष्णभक्ति में उनकी लीला का ही वर्णन था इसलिए यह मुसलमान भक्तों के छंदों में भी बंधी।" तुलसी के काव्य और रामराज्य की एक नयी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि "अकबर की राजनीतिक सांस्कृतिक व्यवस्था और राजकीय आदर्श का रूप खड़ा कर रहे थे। उनके मन में 'जवन महामहिपाल' कहीं न कहीं चुभ रहा था। अकबर के 'दीन–ए–इलाही' के प्रति वे शंकालु रहें हो तो आश्चर्य नहीं। उन्होंने समझा कि विदेशी संस्कृति की स्थापना के विरुद्ध वर्णाश्रम की पुरानी व्यवस्था को नये सिरे से खड़ा किया जाये। अकबर के साम्राज्यवादी विस्तारवाद के विरुद्ध उन्होंने रामराज्य का आदर्श भी प्रस्तुत किया।"

कबीर को बच्चन सिंह मुसलमान मानते हैं और फिर कबीर के 'ना हिन्दू ना मुसलमान' की व्याख्या भी करते हैं कि जिन नाथपंथियों ने मुसलमान धर्म स्वीकार किया था उनकी एक नयी जाति बन गई 'ना हिन्दू ना मुसलमान'। और आज इसी पद के आधार पर डॉ. धर्मवीर कबीर को ना हिन्दू ना मुसलमान मानते हैं बल्कि दलित सिद्ध करते हैं।

बच्चन सिंह कबीर को सुधारक की अपेक्षा क्रांतिकारी रूप में देखने की प्रस्तावना करते हैं तथा उनके शिल्प के लिए नये काव्यशास्त्र की जरूरत को रेखांकित करते हैं। जायसी की बात विजयदेव नारायण शाही से प्रभावित है। भक्तिकाल की व्याख्या का यह संदर्भ बच्चन सिंह की इस दृढ़ मान्यता के साथ समाप्त होता है कि "आश्चर्य है सगुणोपासकों में एक भी शूद्र नहीं मिलेगा। निर्गुणोपासकों में शूद्रों और निम्न जाति के मुसलमानों की भरमार है। ऐसी स्थिति में वर्ण–भेद के आधार पर ही भक्ति आंदोलन की इतिहाससम्मत व्याख्या संभव है।"

बच्चन सिंह रीतिकाव्य के संदर्भ में पर्याप्त सहानुभूतिशील लगते हैं। रीतिकालीन काव्य के पक्ष में कहते हैं कि "सारे इतिहास ग्रंथों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यथार्थ एवं जीवंत चित्रण कहीं नहीं मिलेगा।"[4] फिर रीति काव्य का डिफेंस करते हुए कहते हैं चूँकि रीतिकालीन कवि सचेत रूप से कविता लिख रहे थे इसलिए उन्होंने उसे काव्य–परंपरा से जोड़ा और भक्ति की उपेक्षा की।" और जो कवि रीति की धरातल से मुक्त होने की कोशिश कर रहे थे उनमें 'वैयक्तिकता' और 'संवेदना' उतनी ही घनीभूत मात्रा में पायी गयी। घनानंद के संदर्भ में बच्चन सिंह कहते हैं "स्वच्छंद काव्यधारा के कवि दरबार में रहते हुए भी दरबारी नहीं थे। अपनी स्वतंत्र विचारधारा के कारण घनानंद को दरबार छोड़ देना पड़ा था।" आगे वे स्वयं उस घटना का उल्लेख करते हैं जिसके कारण घनानंद को दरबार छोड़ देना पड़ा था लेकिन पता नहीं क्यों यह बात कह गये? आलम के संदर्भ में भी जो कहते हैं वह विचारणीय जान पड़ता है।

'माधवानल कामकंदला' और 'आलमकेलि' के रूप और शैली में जो अंतर है वह सिद्ध करता है कि उनके रचयिता अलग–अलग हैं। आज ऐसे कई उदाहरण हमारे समक्ष है जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि अंतर्वस्तु रूप और शैली को प्रभावित करता है। सिर्फ रूप और शैली के आधार पर रचनाकार की पहचान आश्वस्तिसूचक नहीं है। यदि 'कायाकल्प' में लेखक का नाम नहीं होता तब तो वे यही कहते कि यह प्रेमचंद की रचना नहीं हो सकती है। नवजागरण युग के संदर्भ में बच्चन सिंह इस धारणा का लगातार खंडन करते नजर आते हैं कि आधुनिक काल आने का श्रेय अंग्रेजों को है। "ऐतिहासिक प्रक्रिया के तहत उसे आना ही था। किन्तु अंग्रेजी उपनिवेश ने इस प्रक्रिया को तेज कर

दिया। अनजाने ही सही नये परिवर्तन का श्रेय उसे ही दिया जाता है।"[5] या फिर इसलिए यह कहना कि पाश्चात्य शिक्षा के कारण नवजागरण आया सही नहीं है। हाँ अनेक कारणों में से एक कारण वह भी था। छायावाद नामकरण से अपनी असहमति का कारण बताते हैं कि छायावाद से केवल कविताओं का बोध होता है उस काल में लिखे जाने वाले गद्य का नहीं इसलिए इस काल को 'स्वच्छन्दतावाद–युग' कहने की ऐतिहासिक आवश्यकता है। इससे दो समस्याएँ हल हो जाती हैं– एक तो तत्कालीन गद्य–पद्य को एक ही शीर्षक के अंतर्गत अधिक सार्थक ढंग से विवेचित किया जा सकता है, दूसरे यह कि यह अन्य भारतीय साहित्यों और भारतीयेत्तर साहित्यों के स्वच्छन्दतावादी आंदोलनों (रोमैंटिक मूवमेण्ट्स) से जुड़ जाता है।

छायावाद के संदर्भ में आगे वे कहते हैं कि "छायावादी काव्य में सामान्यतः कथा तत्त्व की कमी है। बिखराव उसकी विशेषता है।" इस सामान्य कथन के बाद वे छायावादी कवि चतुष्टय की चर्चा करते हैं। प्रसाद के 'ले चल मुझे भुलावा देकर' में पलायन का मूड देखते हैं वही उनकी कामायनी की मुक्तिबोध द्वारा की गयी आलोचना को 'फूहड़ मार्क्सवाद का नमूना' मानते हैं तो दूसरी ओर रामस्वरूप चतुर्वेदी के कामायनी संबंधी मूल्यांकन को शुद्ध रूपवादी दृष्टि से ग्रस्त मानते हैं।

निराला की पर्याप्त चर्चा बच्चन सिंह ने की है। पंत के बारे में कहते हैं "पंत जटिल संरचना के कवि नहीं है।" महादेवी के संदर्भ में धमाका करनेवाली मुद्रा में कहते हैं, "वास्तविकता तो यह है कि वे और चाहे कुछ हो, रहस्यवादी नहीं है।" लेकिन कुछ आगे चलकर जो कहते हैं वह भी गौरतलब है "महादेवी की रचनाओं में वैविध्य नहीं मिलेगा। स्त्री की रचनाओं में पुरुष रचनाकारों की विविधता का अभाव अस्वाभाविक नहीं है। उनकी सामाजिक सीमा भी है और प्राणिशास्त्रीय भी।"

आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में छायावाद तक की चर्चा की है। बच्चन सिंह उससे आगे बढ़ते हैं (1938 से अद्यतन) इस अद्यतन में 1975 तक का काल शामिल है जिसका नामकरण इन्होंने उत्तरस्वच्छन्दतावाद किया है हालाँकि यह 'अद्यतन' कहाँ तक जायेगा इसकी ओर उन्होंने संकेत नहीं किया है। यह नामकरण प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की जगह पर प्रस्तावित है लेकिन प्रगति और प्रयोग से यह पूरी तरह मुक्त न हो सके हैं। बच्चन सिंह लिखते हैं कि "सन् 1952 के आसपास इन दोनों के द्वन्द्व से नयी कविता तथा साहित्य के अन्य रूप सामने आये। अतः छठे दशक और उसके बाद की रचनाओं को उनके द्वन्द्वों का उत्पादन समझना चाहिए।"[6] द्वन्द्व से तात्पर्य प्रगति–प्रयोग के द्वन्द्व से है। प्रयोगवाद की विशेषता बताते हुए बच्चन सिंह प्रयोगवादी वैयक्तिकता में बौद्धिकता की प्रधानता मानते हैं और छायावादी वैयक्तिकता में भावुकता का मार्क्सवादी आलोचकों द्वारा प्रयोगवादी काव्य में यथार्थ की खोज पर बच्चन सिंह आश्चर्य व्यक्त करते हैं।

नाटकों की बेहद अच्छी व्याख्या बच्चन सिंह ने रखी है कि "इस देश को भाग्यवाद में गहरा विश्वास रहा है। पर इस नाटक में भारत–भाग्य आत्महत्या कर लेता है। ऐसी स्थिति में कुछ लोग इसे ट्रेजिडी मानते हैं। भाग्यवाद के विदा होने पर जागरण की संभावनाएँ बढ़ जाती है। अतः यह दुखान्त न होकर सुखान्त ठहरता है। 'भारत–दुर्दशा' हिन्दी का पहला राजनीतिक नाटक है।"

भारतीय परिवेश में उपन्यास के उद्‌भव काल पर विचार करते हुए बच्चन सिंह कहते हैं कि "इस काल में व्यापारियों और पढ़े–लिखे लोगों का एक मध्य वर्ग पैदा हो गया था। उपन्यास का आविर्भाव मध्यवर्गीय आकांक्षाओं और समस्याओं को लेकर हुआ। चंद्रकांता की भयंकर लोकप्रियता के कारणों की तलाश करते हुए राजेन्द्र यादव ने जो इनकी समाजशास्त्रीय व्याख्या की है उससे बच्चन सिंह खफा हैं। कहते हैं– "कुछ ऐसे कथाकार ऐयार आलोचक हैं जो अपने रंगीन चश्मे से इसमें (चन्द्रकान्ता में) उसी प्रकार राष्ट्रीयता ढूँढ निकालते हैं जिस प्रकार एक पंडित वर्ग वेदों में

वायुमान–निर्माण की विधि अन्वेषित कर लेता है। मेरे विचार से यह मध्यकालीन सामंती परिवेश का ध्वंस विशेष है, जिसमें झूठी लड़ाइयाँ लड़ी जाती हैं, झूठे वैभव और कृत्रिम शौर्य का प्रदर्शन होता है। अंग्रेजी राज की पूर्ण स्थापना के विगत की प्रभावहीन जुगाली की जा सकती है। अपनी हार को तिलस्म की भूल–भूलैया में भुलाया जा सकता है।"

प्रेमचंद के 'गोदान' में नगर कथा की 'ठूँस–ठूँस' बच्चन सिंह को नहीं भाती। जैनेन्द्र को बच्चन सिंह पहले आधुनिकतावादी कथाकार मानते हैं क्योंकि इन्होंने 'उपन्यास के एस्थेटिक्स' को बदला है। उपन्यास और उपन्यासकारों की सूची काफी लम्बी है। फिरहाल अमृत लाल नागर के उपन्यास के संदर्भ में बच्चन सिंह के उद्‌गार के साथ इसे विराम देती हूँ– "मानस का हँस राम और काम के द्वन्द्व में डूब गया है और खंजन नयन भारतीय मानस के सूरदास की छवि धूमिल करता है। वास्तविकता तो यह है कि उनके (नागर जी) उपन्यासों में विस्तार है, गहराई नहीं हैं, दृष्टिकोण तो है, दृष्टि नहीं है।"[7]

अन्य साहित्यिक विधाओं जैसे निबंध, यात्रावृत्त, संस्मरण, रेखाचित्र और कहानी आदि पर चर्चा के लिए अवकाश नहीं है। इसलिए बच्चन सिंह द्वारा प्रयुक्त आलोचनात्मक शब्दावली और इस इतिहास ग्रंथ की तथ्यसंबंधी भूलों की तरफ संकेत कर लेखन को विराम देना उचित होगा। जहाँ तक आलोचनात्मक शब्दों के प्रयोग की बात है तो बच्चन सिंह इस मामले में पाश्चात्य आलोचनात्मक शब्दावली से प्रभावित है हालाँकि इन शब्दों का अपने इतिहास ग्रंथ में उन्होंने जो प्रयोग किया है वह अपने अर्थ को सम्प्रेषित कर पाने में सफल रहे हैं। फिर भी उन चंद शब्दों को जानना बेहतर होगा। मुख्य हैं– 'पास्टिश' (भूमिका vii), 'आइकनोक्लास्ट' (पृ, 88), 'जक्सटापोजीशन' (पृ. 98), 'कैटेलिक एजेंट', 'सेकेंड्री सेक्सुअल कैरक्टर्स' (पृ. 277), 'ओरियंटलिस्ट' (पृ. 283), 'डाइकोटोमी' (पृ. 305) इसके अलावा टेक्स ऐस्थेटिक्स आदि बहुप्रयुक्त शब्द हैं।

जिस समय बच्चन सिंह का इतिहास प्रकाशित हुआ, उस समय का सबसे ज्वलंत मुद्‌दा है दलित विमर्श और स्त्री–विमर्श। जिसे थोड़े ही स्थान में समेट लेते हैं, जबकि यह समकालीन साहित्य का सबसे ज्वलंत मुद्‌दा है। दूसरे संस्करण में उन्हें अपनी कमियों का एहसास हुआ है या शायद किसी आलोचक ने उन्हें उनकी कमियों को बताया है, जानबूझकर मैं इसलिए लिख रही हूँ, क्योंकि दूसरे संस्करण की भूमिका में उनके शब्दों में बहुत तिलमिलाहट दिखाई देती है। अतः दूसरे संस्करण में स्त्री–लेखन संबंधी थोड़ी जगह उन्होंने जरूर बढ़ा दी है। किन्तु स्त्री लेखन में नया बदलाव लाने वाली महत्त्वपूर्ण स्त्री लेखिका 'कृष्णा–सोबती' का नाम ही नहीं लिया गया है। बच्चन सिंह स्त्री सत्ता को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। केवल 'बोल्ड' कहकर स्त्री लेखन की वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता है।

कुछ तथ्य संबंधी भूलें हैं वह हिन्दी 'साहित्य का दूसरा इतिहास' के संशोधित परिवर्द्धित संस्करण वर्ष 2004 पर केन्द्रित है। पृ. 55 पर बच्चन सिंह पृथ्वीराज रासो की भाषा के संबंधी में कहते हैं। "सब मिलाकर इसकी भाषा ब्रज मिश्रित राजस्थानी या डिंगल है।" जहाँ तक मैं जानती हूँ ब्रजमिश्रित अपभ्रंश की पिंगल और राजस्थानी मिश्रित अपभ्रंश को डिंगल भाषा कहा जाता है। बच्चन सिंह ने यहाँ धालमेल कर दिया है। पृ.सं. 275 पर नवजागरण युग की समय सीमा (1957–1920) बतायी गयी है। पृ.सं. 292 पर भी मुद्रण संबंधी असावधानी के कारण भारतेन्दु की 'हिन्दी नयी चाल में ढली' लेख का प्रकाशन काल 1873 ई. के बजाए 1837 ई. छप गया है। पृ.सं. 316 पर हरिऔंध जी के मृत्यु का वर्ष 1941 बतलाया गया है, जिसे 1947 होना चाहिए।

पृ.सं. 405 पर एक भारी भूल है। बच्चन सिंह कहते हैं, "यशोधरा (1946) के प्रकाशन ने दिनकर को आवेशमयता से मुक्त करके गंभीर कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया है। आगे चलकर पता चलता है

कि वे 'कुरुक्षेत्र' की बात कर रहे हैं लेकिन 'यशोधरा' का नाम ले रहे हैं। परवर्ती रचना और रचनाकार के संदर्भ में भी भूलों की भरमार है। जिन्हें सुधारा जाना चाहिए। तीसरे और चौथे इतिहास ग्रंथ लिखे जाने की संभावना से इनकर नहीं किया जा सकता।

संदर्भ सूची

1. भूमिका : 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली–110051
2. भूमिका : वही
3. बच्चन सिंह : 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', पृ. संख्या 181, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली–110051
4. वही, पृष्ठ संख्या 237
5. वही, पृष्ठ संख्या 75
6. वही, पृष्ठ संख्या 182
7. वही, पृष्ठ संख्या 277
8. वही, पृष्ठ संख्या 143
9. वही, पृष्ठ संख्या 476

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

''वर्तमान समय में ऑनलाइन शिक्षा के सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष''

रीना कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार

कोविड–19 ने पूरे विश्व को प्रभावित किया है समाज का कोई भी वर्ग इससे अछूता नहीं रहा है। वायरस ने विगत वर्षो से कक्षा शिक्षण को ऑनलाइन शिक्षा में बदल दिया। शिक्षा में तकनीकी का प्रयोग होना हमें विकास की ओर ले जाता है, पर कोरोना वायरस के कारण जहाँ वैश्विक आबादी मंदी की ओर बढ़ रही हैं। ऐसे में ऑनलाइन शिक्षण में बहुत सी चुनौतियाँ हैं।

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा के शिक्ष धातु में 'अ' प्रत्यय लगने से बना है जिसका अर्थ है सीखना या सीखाना। शिक्षा मनुष्य के लिए एक ऐसा आधार है जिसमें मनुष्य के व्यक्तित्व का मानसिक सामाजिक, चारित्रिक तथा सामाजिक यानि कि सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा मनुष्य के लिए एक ऐसा प्रकाशरूपी ज्ञान है जो मनुष्य के जीवन के प्रत्येक अन्धकार क्षेत्र को प्रकाशरूपी चमक प्रदान करती है तथा मनुष्य को इतना अधिक समझदार बनाती है कि वह विशालकाय संसार को समझने में भी सक्षम हो जाता है ''विद्याविहिनः पशु समानः'' अर्थात विद्या के बिना मनुष्य पशु के समान होता है। प्रचीन भारतीयों का विचार था कि शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा व्यक्ति के बुद्वि विवेक एवं कुशलता में वृद्धि होती है। शिक्षा ही जीवन यथार्थ के महत्व को समझने की क्षमता प्रदान करती है।

कोरोना वायरस महामारी के दौरान सम्पूर्ण विश्व में लॉकडाउन की स्थिति बनी हुई है, सभी संस्थान जैसे स्कूल कॉलेज सब बन्द है, परन्तु शिक्षा का माहौल निरंतर चला रहा है। सभी स्कूल, कॉलेज और शिक्षा संस्थान ऑनलाइन स्टडी के रूप में कर रहे है, हालॉकि ऑनलाइन शिक्षा को लेकर बहुत से नकारात्मक और सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे है। मुख्य बिन्दु – कोविड–19, शिक्षण, ऑनलाइन शिक्षण प्रणाली, दूर संचार, नेटवर्क, सकारात्मक, नकारात्मक निष्कर्ष।

प्रस्तावना –

कोरोना वायरस दिसम्बर 2019 के मध्य चीन के हुबेई प्रान्त के वुहान शहर से शुरू हुआ। यह वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे कोविड–19 का नाम दिया तथा इसको महामारी घोषित किया। इस वायरस ने अपने प्रकोप से दुनिया को बदल दिया है। सारी आर्थिक सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, औद्योगिक गतिविधियाँ रूक गई, तालाबँदी के कारण लाखों लोग बेरोजगार हो गए और बेरोजगारी के कारण अपने गाँवों की ओर लौटने लगे। मजदूर लोग हजारों कि0मी0 दूरी पैदल ही तय की इस वायरस ने समाज में बहुत से परिवर्तन किए उनमें से एक बहुत बड़ा परिवर्तन शिक्षा व्यवस्था में भी किया। इस वायरस ने क्लास कोचिंग को डिजिटल शिक्षा में परिवर्तित कर दिया। टी.वी, रेडियो गुगल क्लासरूम, जूम, गूगल मिट, यूट्यूब, व्हाट्सएप आदि माध्यमों से ऑनलाइन शिक्षण प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक किया जा रहा है। ऑनलाइन कोचिंग से छात्रों

ने ही नहीं बल्कि शिक्षकों ने भी डिजिटल ज्ञान प्राप्त किया और ऑनलाइन शिक्षण की चुनौतियों का सामना किया। एक आँकडे के अनुसार शैक्षिक क्षेत्र में तालाबन्दी के कारण दसवीं और बारहवीं के क्रमशः 18.89 लाख और 12 लाख छात्र प्रभावित हुए है। देश भर के 200–300 सरकारी स्कूलों में नौनिहालों का बस्ता बंद हो गया है। ऑनलाइन कोचिंग के माध्यम से बच्चे अपने घरों से पढ़ रहे हैं, पर कई बच्चों के पास स्मार्ट फोन, नेट कनेक्टिविटि व डाटा की समस्या से ऑनलाइन शिक्षण में समस्या उत्पन्न हो रही है।

महामारी कोविड–19 के कारण आज सारा विश्व वैश्विक महामारी से गुजर रहा है। इस महामारी के कारण भारतीय शिक्षा प्रणाली भी प्रभावित हुई है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा शिक्षक संस्थानों को बंद किया गया है। इस स्थिति में शिक्षक छात्र दोनों को ही अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। क्योंकि भारत में अधिकांश छात्र आज इस माहामारी के कारण अपने गाँवों में जा रहे हैं। गाँवों में दूरसंचार एवं नेटवर्क की सुविधाएँ आज भी कम हैं। इस कारण शिक्षण एवं छात्रों के बीच संपर्क स्थापित होने में बहुत कठिनाइयाँ आ रही है।

ऑनलाइन कक्षाओं को पढ़ाने के लिए आज शिक्षक स्वयं पहले ऑनलाइन शिक्षण को सीखना आवश्यक है। आज शिक्षक को ऑनलाइन क्लास लेने में बहुत समस्याएँ आ रही है। प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तर तक के छात्र छात्राओं को ऑनलाइन कक्षायें पढ़ाने से मासिक तनाव भी बढ़ रहा है। इस महामारी बढ़ने के कारण बार–बार परीक्षाओं को टाला जा रहा है। जिससे छात्रों का भविष्य लटक रहा है। ज्ञान के निर्बाध प्रसार को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक समस्त शैक्षणिक संस्थानों को वैकल्पिक शैक्षणिक ऑनलाइन अधिगम अपनाना पड़ा है जिसे डिजिटल लर्निंग, ई–लर्निंग, वेबबेस्ड लर्निंग, वर्चुअल स्पेस लर्निंग, रिमोट लर्निंग, दूरस्थ शिक्षा या गृह शिक्षा इत्यादि नामों से भी जाना जाता है।

ऑनलाइन शिक्षण प्रणाली की आवश्यकता

ऑनलाइन शिक्षा विभिन्न तकनीकी माध्यमों से दी जाने वाली ऐसी शिक्षा है जिसमें घर बैठे ही विद्यार्थियों को शिक्षित करने का प्रयास किया जाता है। ऑनलाइन शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है जो तकनीकी पर आधारित है। घर बैठे–बैठे इंटरनेट व अन्य शिक्षा कहा जाता है। ऑनलाइन शिक्षा हमारी पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था से थोड़ा सा अलग है। पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था में बच्चे स्कूल की क्लास रूम में बैठकर अपने शिक्षक से प्रत्यक्ष रूप से जुड़कर पुस्तकों के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते है। जबकि ऑनलाइन शिक्षा में कम्प्यूटर और इंटरनेट कनेक्शन के माध्यम से शिक्षक छात्रों से जुड़कर कर शिक्षा देते है।

घरों मे रह रहें बच्चों के लिए लॉकडाउन के दौरान शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन समय की मांग है। डिजिटल इंडिया का सपना पूरा करने के लिए शिक्षा जगत की परम्परागत शिक्षण अधिगम पद्धतियों में नवोन्मेषण करना होगा। डिजिटल इंडिया को सार्थक करने का बड़ा उपाय है ऑनलाइन शिक्षण अधिगम प्रणाली। देश में बिछा केबल टी.वी का नेटवर्क, इन्टरनेट के फाइबर लाइन सबकी मुट्ठी में एंड्राइड फोन, घरों में उपलब्ध कम्प्यूटर लैपटॉप और इन्टरनेट सुविधा एक रचा रचाया ढाँचा है।

इस प्रकार 'कोरोना' ने हमें परम्परागत रियल–वर्ल्ड प्लेटफार्म के स्थान पर वर्चुअल प्लेटफार्म से कार्य करने को विवश कर दिया है। कई सीमाओं के बावजूद ऑनलाइन शिक्षा के नये तरीके को अपनाने में उत्साह दिखाया है। परिचर्चा, गृह कार्य डिजिटल अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने और कुछ सीमा तक मूल्यांकन आदि करने में ऑनलाइन शिक्षण से जुड़ रहे है। कोरोना वायरस महामारी के

दौरान सम्पूर्ण विश्व में लॉकडाउन की स्थिति बनी हुई है, सभी संस्थान जैसे स्कूल कॉलेज सब बंद है, परन्तु शिक्षा का माहौल निरंतर चल रहा है, सभी स्कूल, कॉलेज और शिक्षा ऑनलाइन स्टडी के रूप में काम कर रहे है, हालांकि ऑनलाइन शिक्षा को लेकर बहुत से नकारात्मक और सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं।

ऑनलाइन शिक्षा के सकारात्मक परिणाम :

ऑनलाइन शिक्षा के सकारात्मक प्रतिभायें सभी छात्रों में कुछ न कुछ निकलकर सामने आ रही है जैसे, पेंटिग, चित्रकला, कुकिंग, डांसिंग, सिंगिंग आदि के द्वारा छात्र अपनी पढ़ाई के साथ–साथ अन्य रचनात्मक कार्य भी कर रहें है।

(1) ऑनलाइन शिक्षा के जरिए कई छात्र डिजिटल हुए है, जिससे कि उनको टेक्नोलॉजी की समझ हुई है।

(2) ऑनलाइन शिक्षा के द्वारा छात्र कहीं से, कभी भी शिक्षा प्राप्त कर सकते है।

(3) यह विद्यार्थियों के अन्दर जिम्मेदारी और आत्मानुशासन के गुण विकसित करने में सहयोगी है। विधर्थी अपने साथियों से डिस्कशन बोर्ड और चैट के माध्यम से अपनी बात साझा करते हुए अपने संदेहों का निवारण कर सकते है।

(4) ऑनलाइन शिक्षा का सुविधा–कर फेस–टू–फेस शिक्षा की अपेक्षा अधिक अच्छा है। यह माध्यम सस्ता है क्योंकि इसमें विद्यार्थी के आवासीय व परिवहन खर्च में कमी आती है और उन्हें अनजान शहर की विपरीत परिस्थितियों में रहनें से मुक्ति मिलती है।

(5) इसमें लाइव सेशन में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है, कोई भी, कही भी, कभी भी, इन ई–लर्निंग संसाधनों का उपयोग कर सकता है। यदि किसी को दिन में घर और बच्चों की देखभाल करनी होती है तो वह रात में भी सीख सकता है। ऑनलाइन मंच जीवन–पर्यन्त अधिगम का अवसर भी उपलब्ध कराता है।

(6) ऑनलाइन शिक्षा में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने विद्यार्थियों में समानता, पहुँच तथा जीई आर में वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए उन्हें विविध ई–कंटेट्स और पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराने में सराहनीय प्रगति की है।

(7) सतत–विकसित हो रही आई.सी.टी तकनीक अधिक उपयोगिता और उपकरण उपलब्ध कराएगी जिससे ऑनलाइन शिक्षा न केवल समृद्ध होगा बल्कि प्रभावी भी होगा।

(8) ई–लर्निंग environment की दृष्टि से भी लाभदायक है, क्योंकि यहां जानकारी को किताब के बजाय वेब में स्टोर किया जाता है, जिससे हमारे पर्यावरण को बचाने मे मदद मिलती है।

ऑनलाइन शिक्षण के नकारात्मक परिणाम :

यदि देखा जाए तो ऑनलाइन शिक्षण के जहाँ एक ओर लाभ है तो वही एक ओर इस नए प्रयोग से कुछ हानियाँ, भी हो रही है। ऑनलाइन शिक्षण वर्चुअल अधिगम मंच पर होता है जो कभी भी वास्तविक शिक्षण–मंच का स्थान नहीं ले सकता, क्योंकि इसमें मानवीय संवाद की संभावना कम होती है–

(1) वास्तविक शिक्षण–मंच का स्थान नहीं ले सकती क्योंकि इसमें परस्पर मानवीय संवाद की संभावना कम है, और इसीलिए यह विद्यार्थियों में अलगाव का भाव पैदा करती है।

(2) आभासी दूनिया में प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति का मूल्यांकन करना असम्भव है और यह टालमटोल की प्रवृत्ति को जन्म देती है। चूँकि यह बड़े समूहों में परिचर्चा आयोजन प्रभावी तरीके से नहीं कर सकती इसीलिए यह विद्यार्थियों के छोटे समूह पर ही उपयोगी है।

(3) परिसरों में संचालित ऑफलाइन शिक्षण में विद्यार्थी आधारभूत मानवीय गुण जैसे मित्र बनाना, धैर्यवान बनना, निराशा से मुक्त होना आदि विकसित करता है।

(4) ऑनलाइन शिक्षा सुविधाजनक एवं लचीली है और युवाओं को अधिक स्वतन्त्रता देती है इसलिए इसमें विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता विकसित होने की बहुत संभावना है।

(5) ऑनलाइन कक्षाओं के लिए विद्यार्थी को काफी समय तक कम्प्यूटर, टैबलेट या स्मार्टफोन के सामने रहना होता है, इससे नजर कमजोर होने, तनाव तथा अन्य शारीरिक समस्याएँ आ रही है।

(6) इसके साथ–साथ इंटरनेट सुविधा और इलेक्ट्रॉनिक गैजेट रिचार्ज कराने जैसी समस्याएँ भी है। अधिकांश ई–लर्निंग संसाधन अंग्रेजी माध्यम में होने के कारण भाषा भी एक बड़ी रूकावट है।

ऑनलाइन शिक्षण को बढ़ाने हेतु सरकारी प्रयासः–

(1) मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने विद्यार्थियों में समानता, तथा जी.ई.आर में वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए उन्हें विविध ई–कंटेट्स और पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराने में सराहनीय प्रगति की है।

(2) स्वयं प्रभा के अंतर्गत 32 चैनलों के माध्यम से 24 घंटे सातो दिन श्रव्य–दृश्य व्याख्यान प्रसारित किए जा रहे हैं जिन्हें DTH सुविधा से देखा जा सकता है।

(3) डिजिटल लर्निंग को और अधिक प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार ने 17 मई 2020 को आत्मनिर्भर भारत अभियान के अन्तर्गत पीएम ई–विद्या कार्यक्रम का श्रुभारम्भ किया है।

(4) ई–कंटेट कोर्सवेयर इन UG सब्जेक्ट्स सीईसी वेबसाइट पर 87 स्नातक विषयों का ई–कंटेट उपलब्ध कराता है।

निष्कर्ष :

कोरोना महामारी का आज सबसे अधिक प्रभाव भारतीय शिक्षा प्रणाली पर पड़ा है। इस महामारी के कारण प्राथमिक स्तर की शिक्षा से लेकर विश्वविधालय शिक्षा तक प्रभावित हुई है। इस महामारी के कारण शिक्षक और छात्रों का शिक्षण अधिगम भी बाधित हुआ है।

ऑनलाइन शिक्षण होने से कई छात्र इसका लाभ उठा रहे है तो कई छात्र को नुकसान भी हो रहा है। कोरोना महामारी के दौरान भी ऑनलाइन शिक्षण के माध्यम से पढ़ाई हो रही है। ऑनलान शिक्षण बड़े शहरों में तो सफल हो सकती है पर छोटे शहरों विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में यह सफल कैसे होगी जहाँ ज्यादातर अभिभावकों के पास स्मार्ट फोन नहीं है। आर्थिक रूप से संकट में महंगा स्मार्टफोन और इन्टरनेट कहाँ से लाएगे इस प्रकार यह वर्ग तो शिक्षा से वंचित ही रह जाएगा। अरस्तु ने कहा है कि ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।'' पर क्या ऑनलाइन शिक्षा से ष्शरीर स्वस्थ हो पाएगा?

संदर्भ ग्रंथ

1) www.The hindu.com
2) https://m.jagran.comviewed
3) www.wefourm.org
4) बिहारी, रमनलाल, शर्मा कृष्णा कांत, भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्याएँ, 2013–14
5) योजना मार्च (2020) पृष्ठ संख्या–71
6) दैनिक जागरण पृष्ठ संख्या–7
7) हिन्दुस्तान समाचार पत्र मई माह
8) जागरण पत्रिका 22 अप्रैल 2020
9) https://satyaketemsomachar.com
10) https://keepinspiringme.in/online-education.in.indin.in.hindi
11) https://www.orfonline.org/hindi/research

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

शिक्षक–शिक्षा में इण्टर्नशिप की भूमिका एवं उपादेयता

प्रहलाद सिंह यादव
शोधार्थी, शिक्षा विभाग,
OPJS विश्वविद्यालय चूरू, राजस्थान

प्रशिक्षुता या इण्टर्नशिप शब्द अक्सर नया व्यवसाय या नौकरी आरम्भ करने वाले उन महाविद्यालयी या विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए प्रयोग किया जाता है, जो इस क्षेत्र में नये उतरे होते हैं और प्रशिक्षण के साथ ही व्यवसाय शुरु करते हैं। इन्हें हिन्दी में प्रशिक्षु भी कहा जाता है। इण्टर्न एक अंग्रजी शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है – कैद।

इस क्रिया को इण्टर्नशिप कहते हैं। यह उनके लिए एक ऐसा अवसर होता है, जो उनके लिए आकर्षक व्यावसायिक की राह को सुगम बनाता है। इस दौरान उन्हे व्यावसायिक कार्यो का व्यावहारिक अनुभव मिलता है। जिसे वे अभी तक अपनी पाठ्यपुस्तकों में ही पढे हुए होते हैं। अधिकांश नियोक्ताओं का मत है कि मात्र कॉलेजों में पढ़ायी गयी पाठ्यपुस्तकों की सामग्री कार्य के लिए उस व्यावहारिक दक्षताको पैदा करने में पूर्णरूपेण समर्थ नहीं रहती, जो किसी व्यक्ति के लिए कार्यस्थल पर आवश्यक होता है। उन्हें व्यावहारिक ज्ञान के साथ ही विषय की बारीकियों को समझने का अवसर भी मिलता है। इण्टर्नशिप की अवधि में सीखी गई मूलभूत उनके भविष्य निर्माण में सहायक सिद्ध होती हैं। इसीलिए इण्टर्नशिप व्यावसायिक क्षेत्र के नवागन्तुकों के अति उपयोगी सिद्ध होती है। इण्टर्नशिप की अवधि 6 से 12 सप्ताह या 06 माह से 01 वर्ष तक हो सकती है।

कॉलेज में पढ़ायी गयी पाठ्यपुस्तके और सत्र के गृहकार्य छात्रों को वास्तविक कार्य स्थिति का अनुभव प्रदान करने में असमर्थ रहते हैं। इनकी कमी को इण्टर्नशिप द्धारा ही पूरा किया जाता हैं। किसी संगठन में इण्टर्न के रुप में यह सीखने को मिलता है कि दूसरे सहकर्मी किस भाँति अनेक उत्पादों पर कार्य करते है।

इस तरह कक्षा में सीखे गये सिद्धान्तों को व्यवहार में लागू करने का मौका मिलता है। इण्टर्नशिप कार्यक्रम के तरह व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करने में उन्हे सहायता मिलती है। व्यवसाय के बाद के वर्षो में यह बात अधिक लाभदायक सिद्ध होती है।

मुख्य बिन्दु– इण्टर्नशिप का अर्थ, इण्टर्नशिप की भूमिका, आवश्यकता, महत्व, गतिविधयाँ, नियम प्रकार, सुझाव।

शालाइण्टर्नशिप : एक नजर में – शिक्षक शिक्षा एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें व्यावसायिक रुप से शिक्षकों को तैयार किया जाता है। इण्टर्नशिप शिक्षक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण क्रियात्मक भाग है जिसमें छात्राध्यापक व्यावसायिक रुप से शिक्षण की ऊँचाइयों तक पहुँचने का प्रयास करता है।

कोठारी आयोग (1964–66) के अनुसार शिक्षण में गुणवत्ता सुधार के लिए शिक्षकों की बतौर पेशेवर तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की समीक्षा करते वक्त आचार्य राममूर्ति रिव्यू कमेटी की रिपोर्ट (1990) में कहा कि शिक्षक शिक्षा में इण्टर्नशिप का ढ़ाँचा अपनाया जाना चाहिए, क्योंकि प्रशिक्षुता का ढ़ाँचा पूर्णरुपेण वास्तविक परिस्थिति में किये गये व्यावहारिक अनुभव के प्राथमिक मूल्य पर आधारित होता है। जिसमें कुछ समय के लिए शिक्षण का अवसर देकर अध्यापन के गुणों के विकास का अवसर दिया जाता है।

यशपाल समिति की रिपोर्ट ''शिक्षा बिना बोझके'' (1993) में लिखा गया है कि शिक्षण प्रशिक्षण कमी के कारण स्कूलों में शिक्षण की गुणवता असन्तोषजनक रही है। शिक्षक शिक्षा में सुधार एवं नवाचार हेतु IN-STEP कार्यक्रम (India Support For Teacher Education) Programme) मानव संसाधन एवं विकास मन्त्रालय (MHRD) तथा यू.एस.एड. (Usaid) के तत्वाधान में वर्ष 1012–14 में चलाया गया।

इण्टर्नशिप कार्यक्रम की आवश्यकता – स्कूल शिक्षा की बदलती हुई आवश्यकताओं के सन्दर्भ में प्रचालित अध्यापन– अभ्यास क्षेत्र अनुभव कार्यक्रम औपचारिकता मात्र रह गये हैं। पाठ्–योजनाएँ संख्या पूर्ण होने तक केन्द्रित रहती है जो परम्परावादी तरीके से केवल संकीर्ण उद्देश्यों की पूर्ति मात्र कर रही है। साथ ही पाठ् योजनाए वास्तविक चिन्तनके अभाव में केवल मशीनीकृत रुप से बनायी जाने लगी हैं। शिक्षक–शिक्षा के गुणवत्ता का स्तर दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। NCFTE (2009) द्वारा–यज्ञ शाला इण्टर्नशिप कार्यक्रम के रुप में एक ऐसे प्लेटफार्म की आवश्यकता महसूस की गई, जिसमें प्रशिक्षु अपने अनुभवों के आधार पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया करवा सके साथ ही वह शाला, समुदाय व परिवेश से निन्तर सीखता रहे और उसमें स्वतन्त्र–चिन्तन की क्षमता विकसित हो सके। NCF (2005) के अनुसार, आज का अध्यापक भविष्य में भावी शिक्षक के रुप में समाज और विश्व को बेहतर बनाने की दिशा में अपनी भूमिका को सुविधादाता के रुप में निभाने वाला होना चाहिए।

इण्टर्नशिप कार्यक्रम का महत्वः– शाला इण्टर्नशिप कार्यक्रम द्वारा भावी शिक्षक अपने व्यवसाय से परिचित होते है, जहाँ उन्हें शाला की वास्तविक परिस्थितियों में कार्य करने का अनुभव प्राप्त होता है। वह अपने कार्यो का स्वमूल्यांकन व विश्लेषण कर आगामी शिक्षण कार्य योजना बनाता है, जिससे बच्चों को आधेगम के अधिक से अधिक अवसर प्राप्त होंगे, इस प्रकार इण्टर्नशिप कार्यक्रम मात्र डिग्री के अधीन न रहकर छात्राध्यापकों को एक योग्यताधारी एवं व्यावसायिक रूप से भावी शिक्षक बनाने की दिशा में मील का पत्थर साबित होगा।

इण्टर्नशिप कार्यक्रम एवं गतिविधियों:– इण्टर्नशिप कार्यक्रम में छात्राध्यापक सीधे शालाकी समस्याओं के सम्पर्क में आते है, उन्हें व्यावसायिक रुप में कक्षा शिक्षण की गातिविधियों से जुड़कर अवलोकन, विश्लेषण एवं चिन्तन के अवसर मिलते हैं। शाला में बच्चों की आवश्यकताओं को पहचाचने की अन्तः दृष्टि मिलती है। जिसके आधर पर छात्राध्यापक अपनी भावी शिक्षण योजना बनाते हैं। विशेष अधिगम परिस्थितियाँ छात्राध्यापक को एक शिक्षक के रुप में अपनी भूमिका को निर्धारित करने में मदद करती हैं।

इण्टर्नशिप का नियमः–

(1) व्यक्तिगत विश्वविद्यालय/संस्थान/कॉलेज से अधिकतम 10 छात्रों को ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण/इण्टर्नशिप कार्यक्रमों की अनुमति दी जाती है।

(2) छात्रों को अपने प्रायोजन प्राधिकरण का पूर्ण सम्पर्क विवरण प्रदान करना होगा यह जानकारी महत्वपूर्ण है क्योंकि अनुमोदन पर छात्र को एक प्रति साथ प्रायोजन प्राधिकारी को भेजे जायेंगे।

(3) छात्रों को अपने समर प्रशिक्षण/शोध प्रबन्ध इण्टर्नशिप कार्यक्रमो की पूरी अवधि के लिए अपने बोर्डिंग लॉजिग और परिवहन का प्रबन्ध करना है।

(4) ग्रीष्म कालीन प्रशिक्षण/शोध इण्टर्नशिप कार्यक्रमों के लिए न्यूनतम अवधि 1 माह की है।

इण्टर्नशिप के प्रकार– मुख्य रूप से इण्टर्नशिप दो प्रकार के होते हैं। (I) पेड इण्टर्नशिप (II) अनपेडइण्टर्नशिप।

पेड इण्टर्नशिप– इसमे आपको किसी भी इंडस्ट्री या कम्पनी द्वारा तय की गई धनराशि दी जाती हैं। और इसके साथ इसमें कुछ प्रोफेशनल फील्ड भी शामिल होते हैं। जैसे – इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी, मेडिसीन, बिजनेस, एडवरटाइजिंग आदि।

अनपेड इण्टर्नशिप– इस इण्टर्नशिप में आपको किसी भी कम्पनी या संस्था द्वारा जिससे आप इण्टर्नशिप कर रहे होते हैं, किसी भी प्रकार की धनराशि नहीं दी जाती है अनपेड इर्ण्टनशिप करने से आपको सिर्फ सर्टिफिकेट ही मिलता है।

इण्टर्नशिप कार्यक्रम का उद्देश्य–

(1) शाला में कार्य करते हुए शाला को तथा उसमें कार्य करने के तरीकों को समग्र रूप से समझने हेतु अवसर प्रदान करना।

(2) विद्यालय सम्बन्धी अनेक कार्यो को समीप से देखने के अवसर उपलब्ध कराना ताकि वे प्रत्येक समस्या एवं चुनौती को पहचानकर, हल कर पाने की क्षमता स्वयं में विकसित कर सकें।

(3) बच्चों की समझ के अनुरूप प्रभावी शिक्षण कार्य के लिए स्वयं को तैयार करना।

शाला अवलोकन एवं शाला अनुभव कार्यक्रम –

शिक्षक–प्रशिक्षक द्वारा सुदृढ़ीकरणः–

(1) **शिक्षा के प्रति नजरिये का आधार –** शिक्षा के लक्ष्यों और NCF– 2005 के निर्देशों में इस बात पर काफी जोर है कि बच्चें में सृजनशीलता, कल्पनाशीलता विचार–चिन्तन आदि हो तथा विकासमूलक सिद्वान्तों से परिचित हो सकें। इसके लिए यह जरुरी है कि बच्चे को सृजनात्मक अभ्यास दिये जाए तथा स्थानीय एवं परिवेशीय ज्ञान से उन्हें जोड़ा जाए।

बच्चों के प्रति नजरिये का आधारः– पहली पीढ़ी के विद्यर्थियों के हिसाब से भाषा सरल व उनके परिवेश के शब्दों को समावेशित करती हुई हो। पुस्तक में विषय को रोचक बनाये जाने की आवश्यकता है और नये सन्दर्भो को लाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत की गयी अवधाराणएँ बच्चों के सीखने के स्तर और आयु कें अनुरुप होनी चाहिए लेकिन, सरल करने के चक्कर में उसकी प्रस्तुति सूचनात्मक ही न हो जाए इसका ध्यान रखना चाहिए। साथ ही पहली पीढ़ी के विद्यार्थियों के लिए सहायक सामग्री व पाठ्यपुस्तकें बच्चों के सामाजिक सन्दर्भ को समाहित करते हुए होना चाहिए। यह बात अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि गरीब वर्ग से आये बच्चे, खासकर पहली पीढ़ी के बच्चों के पास घर में सीखने के लिए कोई सहयोगी व्यवस्था नहीं होती है। किसी भी बालक की सीखने की धीमी गति से सीखने, घर के कार्यो व पैसा कमाने की जिम्मेदारी होने के कारण समय पर न आ पाने या भाषा न समझ पाने, या शारीरिक, मानसिक विकलांगता होने की वजह से उसे स्कूल से बाहर नहीं निकालना चाहिए। उसके साथ सम्मान एवं संवेदनशीलता के साथ बर्ताव करें ताकि वह प्रत्येक दिन स्कूल आने के लिए प्रोत्साहित हो।

विषय की प्रकृति व कौशलः– किसी भी विषय की एक खास प्रकृति होती है जिसको समझकर और उस विषय के अध्ययन से विकसित होने वाले कौशलों के आधार पर पाठ्यपुस्तक में दी जानी चाहिए। कई बार सिर्फ विषय वस्तु के आधार पर ही सामग्री विकसित कर दी जाती है, जो सीखने–सीखाने की प्रक्रिया के दौरान विषय की प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने में समस्या पैदा करती है। जैसे सौरमण्डल विषय पर सामग्री विकसित करते समय विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और हिन्दी में हमें विषय की प्रकृति व कौशलों के आधार पर ही सामग्री विकसित करनी होगी।

परिवेशः–

परिवेश विषय को सीखने–सीखाने के सम्बन्ध में अनुभव को अधिक महत्व दी जाती है। जिसमें बालक अवलोकन करें, अभ्यास करें और पुस्तकों में दी गयी जानकारी से इनको जोड़कर देख सके। पाठ में अवलोकन करने के अवसर हों और बातचीत के अवसर हो। अवधारणात्मक समझ को देखने के लिए आवश्यकतानुसार बोध प्रश्नों का समावेश किया गया हो। सतत् व व्यापक मूल्यांकन के पर्याप्त अवसर हों। विषय वस्तु रहने के बजाय समझ विकसित करने व ज्ञान निर्माण के अवसर देने पर आधारित होनी चाहिए। बच्चों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश को ध्यान में रखकर ही दैनिक व व्यवहारिक उदाहरणों का उपयोग किया जाना चाहिए।

एन.सी.एफ.–2005 के मार्गदर्शी सिद्धान्तः–

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेख – 2005 में जिन सिद्धान्तों की बात की गई वो इस प्रकार है–

(1) ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना (2) पढ़ायी रटन्त प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चित करना (3) पाठ्यचर्या को इस तरह सवंर्धन करें कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया कराये, जिससे कि वह पाठ्यपुस्तक – केन्द्रित बन कर न रह जाए। (4) परीक्षा को अपेक्षाकृत आधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना (5) एक ऐसी पहचान का विकास हो जिसमें प्रजातान्त्रिक राज्य–व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय चिन्ताएँ समाहित हों। सभी बालकों का एक ऐसे कार्यक्रम के जरिये स्कूलों से जोड़ना तथा उन्हें वहाँ रोके रखना जो हर बच्चे की महत्ता को फिर से दृढ करने को महत्वपूर्ण समझें और सभी बच्चों को उनकी गरिमा का एहसास करायें तथा उनमें सीखने का विश्वास पैदा करें। पाठ्यचर्या की रूपरेखा में सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा (यू.ई.ई.) के लिए प्रतिबद्धता भी दिखनी चाहिए, केवल सांस्कृतिक विविधता के प्रतिनिधित्व के रूप कें नहीं बल्कि यह सुनिश्चित करे भी कि अनेक सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमियों से आये अनेक शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व बौद्धिक विशेषताओं वाले बालक स्कूल में सीखने व सफलता प्राप्त करने में समर्थ हों। इस सन्दर्भ में लिंग, जाति, भाषा, संस्कृति, धर्म या असमर्थता से जनित समस्याओं के परिणाम स्वरूप शिक्षा में आयी प्रतिकूलताओं को सीधे सम्बोधित करने की आवश्यकता है।

कोर कम्पोनेंटः– पाठ्यपुस्त में विषय वस्तु का परीक्षण करते समय 10 कोर कम्पोनेंट को ध्यान में रखकर किया जा सकता है। ये इस पंकार है। – भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन, संवैधानिक जिम्मेदारियाँ व राष्ट्रय अस्मिता से सम्बन्धित तत्व, सांस्कृतिक परम्परा, लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता, लिंग समानता, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समता, सीमित परिवार का महत्व वैज्ञानिक दृष्टिकोण।

शिक्षण शास्त्र का आधरः– विषय वस्तु में बातचीत के बिन्दुओं में तारतम्यता नजर आना चाहिए साथ ही इस तरह से प्रश्न पूछे जाने चाहिए कि वो ठीक से संवाद स्थापित कर पाएँ। जैसे एक पेड़ का प्रति माह अवलोकन करना और उसमें आये बदलावों का अवलोकन करना साथ ही इस बदलाव के साथ अन्य बदलाओं का भी अवलोकन करना सब्जी और फल में आये अन्तर या मौसम के अनुसार कपड़े

पहनने में आये अन्तर आदि को बच्चों को अपने परिवेश को जानने समझने के अवसर देता है। पर्यावरण अध्ययन विषय को सीखने–सीखने के सम्बन्ध में अनुभव को आधिक महत्ता दी जाती है, जिसमे बच्चा अवलोकन करे, अभ्यास करे एवं पुस्तक में दी गयी जानकारी से इनको जोड़कर देख सके। अतः पाठ्यपुस्तक में ऐसी विषय वस्तु हो जिससे सीखने–सीखाने की प्रक्रिया को पोषित करने के अवसर हो।

प्रस्तुतीकरण का आधारः– पाठ्यपुस्तक में प्रस्तुतीकरण को आकर्षक बनाया जा सकता है जैसे कुछ चीजें बॉक्स में दी जा सकती है। बोल्ड किया जा सकता है या बार्डर बनाया जा सकता है आदि विषय वस्तु के साथ चित्रों का संयोजन और बेहतर तरीके से किया जा सकता है। प्रस्तुत किये गये पाठों और अभ्यास कार्यो में क्रमबद्धता दिखाई देनी चाहिए। साथ ही शब्दों का फान्ट साइज, पृष्ठ संख्या, चित्रों की संख्या व रंग संयोजन व प्रिंट की गुणक्ता ऐसी हो कि वह बच्चों में सीखने की प्रक्रिया में मदद करने के साथ ही रोचकता बनाए रखें।

पाठ्यपुस्तक समीक्षा के लिए एक सुझावात्मक फेमवर्कः–

पाठ्यपुस्तक समीक्षा का प्रारूप विकासित करने के लिए चर्चा करते हुए शिक्षक प्रशिक्षक छात्र–शिक्षकों की मदद से पाठ्यपुस्तक समीक्षा के लिए एक प्रारूप कर सकते है।

पाठ्यपुस्तक विश्लेषण प्रपत्र का प्रारूप

कक्षाः– ..... अध्याय का एक शीर्षक .....

विषयः– ..... अध्याय का शीर्षक .....

छात्राध्यापक का नामः– .....

	पाठ्यपुस्तक समीक्षा के बिन्दु	**विस्तृत विश्लेषण**
1	पाठ्यपुस्तक के उद्देश्य की पूर्ति एवं विषय की प्रकृति एवं कौशल के मुताबिक विषय वस्तु का होना	
2	10 कोर कम्पोनेंट के अनुकूल विषय वस्तु है या नहीं अध्यायवार समीक्षा करना	
3	विषयवस्तु की प्रस्तुति बच्चों के सीखनें के स्तर के अनुकूल है जैसे– क्या विषयवस्तु स्थानीयता व जीवन के सन्दर्भो से जुड़ाव रखती है एवं क्या भाषा सरल व प्रभावी है।	
4	विविधता को प्रोत्साहन देने व आत्मीयता स्थापित करने हेतु क्या क्षेत्रीय भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है या नहीं परीक्षण करना।	
5	विषय वस्तु लिंग संवेदन शील है या नहीं समीक्षा कीजिए	
6	चित्रों का विषय वस्तु से तालमेल व प्रस्तुति, चित्र के आकार व स्पष्टता, चित्रों का रंग संयोजन आदि कैसा है।	
7	बाल केन्द्रित व बालसुलभ तरीकों से शिक्षण कराने के	

	अवसर उपलब्ध कराती है या नहीं समीक्षा कीजिए।	
8	विषय वस्तु की प्रवृत्ति चिन्तनशीलता व ज्ञान सृजन में सहायक है या रटन प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाली है।	
9	प्रस्तुतीकरण की शैली	
10	सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के अवसर	
11	फॉन्ट साइज व प्रिंटिंग एवं कागज की गुणवत्ता	
12	तथ्यात्मक त्रुटि व भाषागत त्रुटियों का ब्यौरा	

हस्ताक्षर .....

छात्राध्यापक का नाम .....

सुझाव –

(1) परीक्षा में उत्तीर्ण या अनुतीर्ण होना वार्षिक परीक्षाओं पर निर्भर न रहे। वरन् विद्यार्थी के कार्य की मासिक प्रगति के विवरण के आधार पर उसे उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण किया जाए।

(2) बालकों का सामान्य ज्ञान बढ़ाने के अधिक से अधिक साधन उपस्थित किये जाएँ।

(3) लड़कियों की शिक्षा में उनके भावी जीवन से संम्बन्ध रखनेवाली जानकारियों का आवश्यक समावेश रहे।

(4) औधोगिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्यक्रम शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को वास्तविक शिक्षण कार्य के बारे में प्रशिक्षित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह इण्टर्नशिप कार्यक्रम विद्यार्थी शिक्षकों को यह अवसर देता है कि अपने शिक्षण की योजना बनाकर उसका अभ्यास करें। अपने शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाने हेतु प्रयास करें एवं अपने प्रदर्शन में सुधार करें।

अतः हम कह सकते है कि इस कार्यक्रम के द्वारा शिक्षण के अनेक पक्षों को समझने और अपनी कौशल व क्षमताओं कां विकसित करने में मदद मिलती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

I. https://him.wikipldia.org/wiki
II. https://www.csmcri.res.in
III. https://sidhajawab.info
IV. शाला अवलोकन एवं ष्शाला अनुभव कार्यक्रम, राज्य शौक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, शंकनगर, रायपुर, छत्तीसगढ़
V. https://literaturl.awgp.org

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

डाक बंगला : मानवीय संवेदना को उकेरती 'इरा' की कहानी

कु. रश्मि
शोध छात्रा
हिंदी विभाग, कला संकाय
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सार-

स्वतंत्रता के बाद देश में हुए परिवर्तन का अधिकतर शिकार मध्यम वर्ग को होना पड़ा। स्वतंत्रता के पश्चात मध्यमवर्गीय जीवन का स्वरूप बिल्कुल बदल गया। इस संबंध में कमलेश्वर का कथन है-

"इन सबका मूल्य मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग को चुकाना पड़ रहा था"।[१] कमलेश्वर मूलतः कहानीकार है किंतु उन्होंने अपने आपको सशक्त उपन्यासकार के रूप में भी स्थापित कर अपनी कृतियों में मध्यमवर्गीय जीवन के अनुभवों का यथार्थ परक चित्रण किया है। नई दृष्टि एवं नए मूल्यों को महत्व देते हैं। उन्हें जीवन में नवीन संदर्भों की तलाश है। जिससे उन्होंने अकेलेपन, अजनबीपन, भटकन तथा अन्य तनावपूर्ण मन:स्थितियों का सफल चित्रण किया है। डाक बंगला उपन्यास कमलेश्वर का एक लघु उपन्यास है। 'डाकबंगला' उपन्यास की नायिका बीसवीं सदी के समस्त भारतीय समाज का सजीव किंतु दयनीय चित्रण प्रस्तुत करती है। 'डाक बंगला' उपन्यास में कमलेश्वर द्वारा संवेदनात्मक वैविध्यता का चित्रण किया गया है। 'इरा' की कहानी मानवीय संवेदना के अधिक समीप ज्ञात होती है।

कमलेश्वर सदैव अपने युग की समस्याओं के मानवीय पक्षों को अपने कथाकृतियों का आधार बनाते हैं। संवेदनात्मक रूप से कमलेश्वर के उपन्यास विविध संवेदनाओं से परिपूर्ण है। 'डाक बंगला' उपन्यास संवेदनात्मक रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण लघु उपन्यास है।

मेरी जिंदगी बगैर मंजिलों के चलती रही-मैं चीर पथिक हूं! मेरा पडाव कहीं भी नहीं है। इन पहाड़ी रास्तों में जैसे लोग पैदल चलते हैं, वैसे ही मैं आज तक चलती रही हूं।

रास्ते में कोई गंदी चाय की दुकान आ गई तो लोग वहां भी रुककर एक प्याली पी लेते हैं, क्योंकि और कोई चारा नहीं है.....[२] इराके कथन मनोवैज्ञानिक रूप से अत्यधिक गहरी छाप छोड़ते हैं, या यूं कहें कि उसके कथन का अर्थ अत्यधिक गहरा एवं अंतर्मन तक पहुंचने वाला होता है। इराके कहने भर से ही हमें उसके दुख की अनुभूतिया उसकी नैराश्य भावना का पता चल जाता है। कमलेश्वर ने 'इरा' का चरित्र इस प्रकार गढ़ा है कि उसकी संवेदना हमें संवेदित कर ही लेती है। डाक बंगला की इरा सच्चे प्रेम की तलाश में भटकती रहती है। उसका स्त्रीत्व सिर्फ काम भावना और बंधन हिन प्रकृति की तमन्ना नहीं रखता बल्कि वैसे पुरुषत्व की तलाश में व्याकुल रहता है जो शरीर के साथ-साथ संवेदना के स्तर पर भी उसे प्यार दे।

कमलेश्वर ने 'इरा' के द्वारा जिस मानवीय संवेदना का चित्र प्रस्तुत किया है, उसके बारे में जानने के लिए हमें संवेदना तथा मानवीय संवेदना के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है। जैसा कि स्पष्ट है संवेदना मूलतः मनोविज्ञान का शब्द है। मनोविज्ञान में संवेदना का अंग्रेजी पर्यायी शब्द सेंसेशन है जिसका अर्थ ज्ञानेंद्रियों का अनुभव है। संवेदना ही मानव के अंतर्मन की सर्वाधिक पवित्र भावना है। संवेदना शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है सम + वेदना अर्थात दूसरों को जो दु:ख या वेदना है उसकी हमको बिल्कुल वैसे ही अनुभूति होना।

संवेदना शब्द साहित्य और मनोविज्ञान के दोनों विषयों में अंतर्निहित है। विशेषत: जब हम मानवीय संवेदना की बात करते हैं तो उसका तात्पर्य मात्र ज्ञानेंद्रियों के अनुभव तक सीमित न रहकर मानव मन की गहराइयों में छिपी करुणा, दया एवं सहानुभूति की उदात्त वृत्तियों तक हो जाता है। विस्तार में कहा जाए तो दृढ़ अर्थ में संवेदना शब्द 'अनुभूति' का भी व्यंजक है।

मानवीय संवेदना एक ऐसा सार्वभौमिक परंतु व्यक्तिनिष्ठ मनोभाव है जिसका उद्देश्य केवल मनुष्य समाज का ही नहीं अपितु समस्त जीवो का हित है जिसकी मूलभावना वसुधैव कुटुंबकम की व्यवहारिक जीवंतता है। मानवीय संवेदना भौतिकवादी समाज की स्वार्थपरक पहुंच से मीलों दूर व्यक्ति की मार्मिकता, परानुभूति और प्रत्येक मानवीय मूल्यों में समाहित ऐसा मूल तत्व है, जिसकी अभिव्यक्ति हमारे भाव, भाषा, धारणा, प्रेरणा, आचरण और व्यवहार में होती है।

इरा अन्यत्र कहती है-मेरी जिंदगी की त्रासदी सिर्फ यही है मुझे निरर्थक प्यार ही मिला…….. जो भी मेरी जिंदगी में आया उसने यही विलास किया मेरे साथ-क्यों कोई भी मुझसे खुलकर नहीं कह पाया कि जिंदगी की शर्ते प्यार से बड़ी होती हैं…….. सब यही कहते रहे कि प्यार जिंदगी से बड़ा होता है…… लेकिन प्यार को जिंदगी के मुताबिक काटते, सिलते और उधेड़ते रहें……..[३]

'इरा' के इस कथन से उसके भीतर व्याप्त एक लालसा जीवन जीने के प्रति, जीवन में प्यार पाने के प्रति एवं एक निराशा की भावना दिखाई पड़ती है, क्योंकि उसे वो नहीं मिला जो वह चाहती थी। उसे सिर्फ संवेदनात्मक स्तर पर प्रेम की तलाश थी। जो कि शायद कहीं ना कहीं प्रत्येक स्त्री की एक चाहत होती है। इराकी यहीं नैराश्य भावना धीरे-धीरे वासनात्मकता रूप ले लेती है। और यह तलाश इतने आगे बढ़ जाती है कि उसके जीवन में तीन चार पुरुषों का आगमन होता है। सबके साथ उसका अलग तरह का अनुभव होता है, लेकिन फिर भी वह नहीं प्राप्त होता जिसकी उसे तलाश थी।

कमलेश्वर ऐसे रचनाकार है जो पात्र के हृदय के अंदर झांककर उसके मन की वेदना, दुःख, एवं उसकी भावनाओं को अपनी लेखनी के द्वारा उकेरते हैं। इसका एक कारण यह भी है की स्वतंत्रता के पश्चात समाज में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई थी, जिसमें संबंधों का टूटना, बिखरना यानी कि रागात्मक संवेदना का आधिक्य था। रागात्मक संवेदना में भी वियोगात्मक पक्ष अधिक सबल था। और इरा के संबंध में भी उसके संबंध का टूटना उसके दुःख का कारण है क्यों कि इरा कहती है- "मुझे लगा था कि दादी की सुनाई कहानियां मेरे जीवन में ही चरितार्थ होंगी। कोई एक राजकुमार आएगा और रंगभरी दुनिया के किसी एकांत में मुझे उठा ले जाएगा…… एक नया संसार मेरे सामने होगा और मैं पंख पसार कर उसमें मुक्त विहार करूंगी।"[४]

जैसा की स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति की संवेदना समान नहीं होती। उनके सामान ना होने के कारण कई हो सकते हैं जैसे कि उनकी शिक्षा, सामाजिक संरचना, आर्थिक स्तर, पारिवारिक स्तर या फिर व्यक्तिगत स्तर भी। कमलेश्वर ने भी डाक बंगला उपन्यास में इरा के चरित्र द्वारा आर्थिक स्तर पर भी संवेदना का चित्रण किया है।

इरा ने जब बतरा के यहां नौकरी की और विमल इराके प्रति शंकालु होकर, रुष्ट होकर इरा को छोड़कर मुंबई चला गया इरा बतरा के यहां रहने लगी। बिना मां की बेटी अनेक विषम परिस्थितियों से गुजरती रही। जीवन के अनेक विचित्र मोड़ इराकी जिंदगी में

आए उसे गिनाते हुए कहती है कि-"तिलक! मैं गवाह हूं इस बात की कि जब आदमी का विश्वास टूटता है तो वह दृश्य कितना दारुण होता है। मैं शुरू-शुरू में समझ ही नहीं पाई थी कि विमल के भीतर कौन सा ज्वालामुखी उबल पढ़ने के लिए मचल रहा था"।[५] इरा अन्यत्र कहती है-"तिलक! तुम्हारी दुनिया बहुत कमीनी है यहां औरत बगैर आदमी के रही नहीं सकती। चाहे उसके साथ उसका पति हो, या भाई, या बाप कोई ना हो तो नौकर ही हो पर आदमी की छाया जरूर चाहिए। यह विधान कैसा है? तुम इसे नहीं समझ सकते क्योंकि तुम औरत नहीं हो। पर मैंने बड़ी गहराई से यह महसूस किया है किसी भी आदमी की आड़ में चाहे वह आदमी काठ का ही हो अच्छी से अच्छी और बुरी से बुरी जिंदगी शान से चल सकती है, पर बगैर आदमी के न वह अच्छी जिंदगी जी सकती है और न बुरी।"[६]

डाक बंगला उपन्यास में आर्थिक स्तर पर इरा कि मन:स्थिति की बात की जाए तो हमें यह देखने को मिलता है कि इरा का वैयक्तिक प्रेम एवं सामाजिक जीवन इसके इर्द गिर्द भी घूमता है। कमलेश्वर ने आर्थिक स्तर पर इरा के लिए जिस परिस्थिति की रचना की है वह अत्यंत गंभीर एवं दयनीय है। एक तरफ कमलेश्वर इरा को एक संघर्षशील नारी के रूप में प्रस्तुत किया है जो कि हार नहीं मानती है वह अंत तक अपनी तलाश जारी रखती है और अंत तक अपने लिए नए नए रास्ते ढुंढ निकालती है। लेकिन जैसा कि हर सामान्य मनुष्य के साथ ऐसा होता है कि वह हर चीज से परिचित होता है जो कि वह कर रहा है। कभी-कभीइसकेलिएउसकेमन में ग्लानि का भाव भी आता है लेकिन वह फिर भी उस काम में लगा रहता है क्योंकि उसे उस समय पर शायद उसकी आवश्यकता होती है। इरा के संदर्भ में भी यह बात ठीक बैठती है। क्यों कि इरा कहती है- "दूसरे ही क्षण ख्याल आता है कि कहीं आर्थिक दासता के कारण ठगी तो नहीं गई हूं…….. क्या भरोसा किसी का! विमल से जो विश्वास मिलता था वह यहां नहीं था, यह मैंने बाद में महसूस किया। यह केवल एक जरूरत थी और ऐसी जरूरत तो बहुत बड़ी ना होते हुए भी एक क्षण विशेषकर विकराल बन जाती है सारी मान्यता एंधरी रह जाती हैं।"[७]

कमलेश्वर ने उपन्यास में विवाह संबंधी बदलते हुए दृष्टिकोण का निरूपण भी किया है जैसा कि इरा कहती है- "केवल भावनाओं के बुलबुले शारीरिक संपर्क के लिए काफी होते हैं और एक साथ दोहरी जिंदगी चल सकती है। किसी को ना चाहते हुए भी दुनियावी बातें ठीक-ठीक चलती रहती हैं और शादी करने से कोई बड़ा फर्क नहीं आता,

क्योंकि शादी से आत्मा का कोई संबंध नहीं है। अगर आत्मिक मिलन की ही बात होती तो शादियां करने की उम्र पचास के बाद होती यह महज एक शारीरिक आवश्यकता है जिसे आदर्श का ताज पहनाकर गरिमा प्रदान की गई"।[८]

कमलेश्वर ने इस उपन्यास में टूटते संबंध के साथ टूटती मानसिक की स्थिति, टूटते अंतर्मन की व्याख्या बखूबी की है। इराको हम भले ही एक सशक्त नारी के रूप में देखें क्योंकि वो लड़ती है परिस्थिति से, समाज से, खुद से, लेकिन उसके अंतर्मन के टूटन को हम नजरअंदाज नहीं कर सकते। कमलेश्वर ने इरा के अंतर्मन के टूटने को अपनीलेखनी से इस प्रकार बयां किया है कि हम भी उसकी वेदना को, उसके दुःख को, उसके मन मस्तिष्क के अंतर्द्वंद को खुद के स्तर पर अनुभव किए बिना नहीं रह सकते। इरा कहती है-"हर जिंदगी में ऐसा कुछ जरूर रह जाता है जो कहीं भी, किसी के सामने नहीं खुलता, आदमी के साथ दफन हो जाता है।"[९]

एक और जगह इरा कहती है- "तिलक! लोग आत्मा की बात करते हैं, पर तन पर एकांतिक अधिकार चाहते हैं-ऐसा अधिकार जो उनकी वासना की घड़ी के मुताबिक चलता है।"[१०] इस प्रकार हम इरा के अंतर्मन की वेदना से परिचित होते हैं परंतु कमलेश्वर यहीं नहीं रुकते वह स्त्री मन के इतनी गहराई में उतर जाते हैं कि हमें इरा को देखकर खुद आश्चर्य होता है कि कोई लेखक स्त्री मन को इतनी गहराई से अपनी लेखनी द्वारा कैसे उकेर सकता है इसका परिचय इरा के अगले संवाद में हम देखते हैं जब कहती है- "मेरी सबसे बड़ी मजबूरी यही थी कि जो भी आदमी मेरे निकट आया, उसमें सुंदरता की कोई ना कोई किरण मेरे लिए फूटने लगती थी या तो उसका मन मुझे जीत लेता था या उसके दुःख मुझे हार मानने को मजबूर करते थे या उसका अपनापन मुझे मार देता था।"[११]

इरा के बारे में डाक बंगला उपन्यास की भूमिका में कमलेश्वर ने स्वयं लिखा है कि-इस उपन्यास का कथ्य है- स्त्री की व्यथा और डाक बंगला है-जिंदगी का प्रतिकार्थक। इरा की व्यथा का संवेग बहुत गहरा है और यह संवेग भौतिक तथा भावनात्मक दोनों ही इस तरह परलक्षित है। इस बात को हम स्वयं उपन्यास में देखते हैं। "सबसे बड़ा झूठ में एक ही बोलती रही हूं। बहुत खूबसूरत झूठ वह। जब-जब, जो भी मेरी जिंदगी में आया, उसने जाने-अनजाने घुमा-फिराकर या सीधे-सीधे हमेशा यही जानने की कोशिश की कि मैंने पहले किसी से प्यार तो नहीं किया। पुरुष का यही सबसे बड़ा संतोष है। और मैंने

अपने हर प्रेमी से यही कहा कि तुम मेरी जिंदगी में पहले हो, तुम प्रथम हो! यह खूबसूरत फरेब मैं करती रही हूं। इसके अलावा मैं और कुछ कह भी नहीं सकती थी। मैं हर पुरुष से यही चाहती रही हूं कि वह मुझे अपना अंतिम प्यार दे, मेरे बाद उसकी जिंदगी में कोई न हो।"[१२]..... इरा का कथन।

भावनात्मक स्तर पर इरा की कहानी हमारे अंतर्मन को छू जाती है। हमारे हृदय में इरा के लिए एक संवेदना उत्पन्न होती है क्योंकि वह संवेदना इरा स्वयं के लिए भी महसूस करती है यही कारण है कि हम भी उस हमा संवेदित हुए बिना नहीं रह पाते है।जब वह कहती है-"मेरी आत्मा मर गई थी बावजूद अपनी हारों और निराशाओं के, जो कुछ मैं नहीं थी वही बनती जा रही थी। मैं जानवर होती जा रही थी। भावनाओं की कोमल स्वर्ण-लहरियां अब मन के किसी भी भीतरी कोने में भी नहीं गूंजती थी।"[१३]

डॉ चंद्रमोहन की बहन जब इरा को यह कहती है कि यह मत समझना भाभी की भैया के ना रहने से तुम्हारे रिश्ते टूट गए। तब इरा का यह कथन- "रिश्ते! घर! पहली बार सुना था इन शब्दों को। इतने दिनों में यह भूल ही गई थी कि एक घर भी होता है और रिश्ते भी होते हैं।और यह रिश्ते जीवन पर्यंत रहते हैं। जीवन के बाद भी इन रिश्तों से लोग याद कर लेते हैं और रो लेते हैं।"[१४] एक बिना मां की बेटी जो अपनी जिंदगी में इतनी उलझी हुई है, जिसको तलाश है सिर्फ उसकी जो उसे अंतिम प्यार दे। रिश्ते! घर! के मायने जिसको नहीं पता क्योंकि उसे यह सब जानने का मौका ही नहीं मिला। उसके लिए यह शब्द कितने अजनबी थे यह उसके कथन से ज्ञात होता है जिसमें उसकी भावुकता साफ-साफ देखी जा सकती है। इरा भावनात्मक स्तर पर बहुत टूटी हुई नारी पात्र के रूप में हमें दिखलाई पड़ती है।

इराका दुख, उसके कष्ट, उसकी मानसिक उलझन, उसके मन का अंतर्द्वंद, उसकी ग्लानि, उसका रोष, प्रेम, दार्शनिक विचार हमारे मन में इरा के प्रति संवेदना का भाव उत्पन्न करते हैं, परंतु वहीं दूसरी तरफ एक सशक्त नारी के रूप में उसका जीवन से हारना मानना, सदा जीवन पथ पर अग्रसर रहना, आर्थिक रूप से सबल होने का प्रयास, एवं अपनी तलाश जारी रखना, इरा को एक परिपूर्ण नारी पात्र के रूप में कमलेश्वर ने उसके चरित्र व्याख्यायित किया है।

उपन्यास में इरा के जीवन के अकेलेपन और खोखलेपन को सामाजिक और असामाजिक दोनों संदर्भ में अत्यंत संवेदनशीलता के साथ कमलेश्वर ने उजागर किया है।

खूबसूरत औरत 'इरा' की बदसूरत कथा को अत्यंत सूक्ष्मता, सहजता, एवं यथार्थता के साथ उद्घाटित किया है।'इरा' और पांच पुरुषों (विमल, महेंद्र बतरा, डॉ चंद्र मोहन, फौजी सोलंकी और तिलक) के बीच भटकती डाक बंगला की कहानी इरा के जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव को दर्शाती है। मेरा इस रूप में प्रस्तुत की गई है कि स्वीकृत परंपरा के जीवन मूल्य अर्थ ही न हो जाते हैं। बार-बार पिछले जीवन को काटकर फेंक देती है पता नहीं जिंदगी को आरंभ कर देती है। इरा का कथन- "कहीं भी मैं टिकने न पाई, क्योंकि हर जगह एक ही मांग थी- अपने को बांटो। तुम एक चीज हो…….. तुम्हारा रूप और यौवन ही तुम्हारी संपत्ति है, जब मैं बाहर निकलती तो लोगों की नजरें देखकर मुझे एक ही अनुभूति होती थी- वही अनुभूति जैसे डॉक्टर के साथ रहते हुए मुझे लगता था कि तमाम पिल्ले मेरे शरीर से चिपक गए हैं।"[१५]

वह कहती है- इस उलझी हुई जिंदगी में चैन नहीं मिलता, नस-नस फटने लगती है……. लगता है, मैं पागल हो जाऊंगी- लेकिन फिर वही बात वहीं आ जाती है…. आदमी से भागना भी चाहतीहूं और उसी के पास रहना भी चाहती हूं। शिकायतें भी उसी से है और प्यार भी उसी से है। मैं आखिर क्या करूं……..."[१६]

कमलेश्वर का उपन्यास "डाकबंगला" इरा की कहानी के इर्द-गिर्द ही लिखा गया है। उसकी कहानी संवेदनात्मक स्तर पर अत्यंत गंभीर एवं भावुकता पूर्ण जान पड़ती है। इरा की कहानी मानवीय संवेदना को दर्शाती है। कमलेश्वर ने इस उपन्यास में संवेदना को जिस प्रकार दर्शाया है वह पाठक को अत्यंत संवेदित करता है।

संदर्भ सूची-

१- कुमारी अंबे, नई कहानी आंदोलन और कमलेश्वर की कहानियां, मनीष प्रकाशन, संस्करण २०१६, पृष्ठ संख्या- ८४

२- कमलेश्वर, समग्र उपन्यास, राजपाल एंड संस प्रकाशन, संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या- २२७

३- वहीं, पृष्ठ संख्या- २२७

४- वहीं, पृष्ठ संख्या- २२९

५- वहीं, पृष्ठ संख्या- २३६, २३८

६- वहीं, पृष्ठ संख्या- २५१, २५२

७- वहीं, पृष्ठ संख्या- २४३, २३९, २५७

८- वहीं, पृष्ठ संख्या- २५८, २६५, २६७

९- वहीं, पृष्ठ संख्या- २७८, २७९

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

'घुप्प अंधेरे में रोशनी की तलाश : तमस''

डॉ. विनय कुमार शुक्ला
सहायक प्रध्यापक
शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बैकुण्ठपुर, कोरिया छ.ग.

हिन्दी रचना संसार में भीष्म साहनी की उपस्थिति इस बात की तस्दीक है कि मानवीय मूल्यों की बात और उसका महत्व तमाम संकटों के बावजूद कायम है। भीष्म साहनी ऐसे चंद गिने–चुने रचनाकारों में से है जिन्होने स्वाधीनता आन्दोलन के संघर्ष ओर स्वातन्त्रयोत्तर भारत के रचाव को बड़ी संजीदगी से देखा और महसूस किया है। साथ ही इसके अन्तर्विरोधों को गहराई से जांचा–परखा है। उन बिन्दुओं की पड़ताल की है जो इंसानियत के ताने–बाने को छिन्न–भिन्न कर मनुष्य को हैवान बनाने मे नहीं चूकती। साम्प्रदायिकता स्वार्थ, धर्म, राजनीति और प्रशासन की चक्की किस कदर निर्ममता का चोला धारण कर विविध रूपों में प्रकट होती है, भीष्म साहनी का कथा–संसार इसे अभिव्यक्त करने की सशक्त कार्यवाही है। जिसमें संवेदना, सामाजिक जीवन से गाढ़ा लगाव, प्रेम और घृणा का पूरी तन्मयता के साथ चित्रण किया गया है, जो एकांगी न होकर व्यापक जीवन मूल्यों से आप्लावित है।

विचारधारा के स्तर पर भीष्म साहनी की मार्क्सवाद के प्रति निष्ठा सर्वविदित है। जहां तक साहित्य का सवाल है उन्होने घोषित मार्क्सवादी और पार्टी का सक्रिय सदस्य होने के बावजूद फार्मूलाबद्ध लेखन नहीं किया है, या यूं कहें कि अपनी रचनाओं पर हावी नहीं होने दिया। भीष्म साहनी की रचनाएं विचारधारा के बल पर नहीं बल्कि रचनात्मकता एवं मानववादी दृष्टि के दम पर अपनी पठनीयता और स्वीकार्यता का वातावरण खुद रचती है। विचारधारा के स्तर पर भीष्म साहनी का मार्क्सवाद से जुड़ाव मात्र तर्क के स्तर पर न होकर मानव के सपनों को संजीदगी के साथ रूपाकार देने से जुड़ा है। बकौल साहनी लेखक का संवेदन भावना के स्तर पर भी और चिंतन के स्तर पर भी किसी–न –किसी विचारधारा से प्रभावित होता रहा है, होता आया है। जहां तक किसी लेखक द्वारा विचारधारा के चुनाव और जुड़ाव का प्रश्न है, वह उस विचारधारा की ओर आकृष्ट होता है जो एक बेहतर, न्यायपूर्ण सामाजिक स्थापना के आश्वासन पर बल देती है। भीष्म साहनी की लेखनी का मुख्य सरोकार प्रगतिशील चेतना समन्वित मानवीय मूल्यों की तलाश है, जो वर्तमान में दिन–ब–दिन ओझल होते जा रहें।

एक रचनाकार के रूप में भीष्म साहनी ने जिस भी विधा का चुनाव किया उसे पूरी तन्मयता के साथ रचा है। वह उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, आत्मकथा, बाल साहित्य, अनुवादक सभी रूपों में अपनी विशिष्ट छाप छोड़ते हैं। प्रस्तुत लेख का विवेच्य विषय भीष्म साहनी का बहुचर्चित व बहुपठित उपन्यास 'तमस' है। यह उपन्यास साहित्य और समय के गहरे रिश्ते को साकार करता है। साहित्य और समय का रिश्ता अपने गाढ़ेपन में सब कुछ को समाहित करता हुआ प्रतिभाषित होता है। हर दौर के साहित्य में तत्कालीन समय अपनी आशा–आकांक्षा, सुख–दुःख, पीड़ा–विषमता, सपने, चाहत आदि के साथ मौजूद रहता है। भीष्म साहनी ने अपने जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा आजादी के पहले का भी देखा

और भोगा है। उसकी शीतलता और तपिश को महसूस किया और सहेजा है। अगर बीसवीं सदी के भारत की हम बात करें तो इस दौर की सबसे प्रमुख घटना भारत का विभाजन व एक लोकतांत्रिक देश के रूप में भारत का उदय है। इस स्वाधीन भारत के निर्माण के दरम्यान हुए स्वाधीनता संघर्ष से भी उनका गहरा वास्ता रहा है। साथ ही इस संघर्ष के दरम्यान प्रायोजित साम्प्रायिकता के चलते इन्सानियत को लहूलुहान कर देने वाली विभाजन की त्रासदी का दंश भी इन्होनें देखा और भोगा है। स्वतंत्र भारत में बाद के दशकों में बनने–बिगड़ने वाले राजनीतिक–सामाजिक समीकरणों के भी ये साक्षी रहे हैं। तात्पर्य यह कि भीष्म साहनी का अनुभव संसार लगभग पूरी बीसवीं सदी को अपने में समेटे हुए है। अपनी निष्कपट संवेदना व विराट अनुभव सम्पदा को लेकर वह रचना संसार में दाखित होते हैं। एक ऐसा रचना संसार जिसमें तलाश उन मानवीय मूल्यों की है जो इंसान के रूप में हमारी धरोहर है।

कहना न होगा कि इस तलाश के क्रम में भीष्म साहनी उन सवालों से जूझते हैं जो मानवीव मूल्यों को दरकिनार कर धर्म, राजनीति, प्रशासन, साम्प्रादियकता, जाति, कुल, मर्यादा और तंत्र आदि के नाम पर स्वार्थ सिद्धि हेतु तत्पर हैं। उपन्यास 'तमस' भले ही आजादी के तीन दशक बाद लिखा गया, पर उसमें व्याप्त चेतना का प्रसार सर्वग्राही है। इसमें चिन्हित समस्याएं आज भी भिन्न–भिन्न रूपों में कायम है। 'तमस' के कथा–विन्यास में जिस कालावधि का चित्रण हैं, वह स्वाधीनता पूर्व के कुल जमा पांच दिनों की कहानी है। ये पांच दिन बरस–दर–बरस में तब्दील होते जा रहे हैं। बकौल भीष्म साहनी इस उपन्यास की शुरूवात भिवंडी के दंगों के उपरांत होती है, जहां वह अपने बड़े भाई बलराज साहनी के साथ घटना उपरांत गए हुए थे। बचपन में देखे रावलपिण्डी के दंगों का समूचा परिदृश्य उपरोक्त घटना के उपरांत 'तमस' उपन्यास को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस तात्कालिक कारण के अलावा स्वातंत्योत्तर भारत की बनती–बिगड़ती परिस्थितियां भी इसका ताना–बाना बुनने में सहायक बनी। तमाम वादों, योजनाओं के बावजूद ऐसी स्थितियां निर्मित होती हैं जहां वैचारिक चेतना व संवेदना सम्पन्न रचनाकारों के समक्ष मोहभंग की समस्या आ खड़ी होती है। साहित्य में गहरे अवसाद, निराशा, कुंठा, दिशाहीनता के स्वर सुनाई पड़ने लगत हैं। संवेदना के स्तर पर एक अजीब–सी शून्यता आकार ग्रहण करती है। भीष्म साहनी जैसे संवेदनशील सर्जक इस मोहभंग से व्यथित होते हैं, और टूटकर भी, फिर से मानवीय मूल्यों में आस कायम रखने व आम जनता के दुःख–दर्द को अपनी रचनाओं में सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। वह सच्चाई व मानवीय मूल्यों के पक्षधर हैं, जिसके चलते सब कुछ हटने व उजड़ने के बावजूद फिर से संवेदना के मर्म को उद्घाटित करने की सार्थक कोशिश करते हैं।

उपन्यास 'तमस' का आरम्भ नत्थू की दिग्भ्रम मनःस्थिति से होता है, जो सुअर को मारने की जद्दोजहद से उत्पन्न हुआ है।[1] यह नत्थू सरकारी कारिन्दे मुराद अली द्वारा सुअर मारने के लिए दिए हुए पांच रूपये की पेशगी और भविष्य की निश्चिन्तता के चलते यह कार्य करने हेतु खुद को विवश पाता है। तमाम कोशिशों के बाद सुअर नत्थू द्वारा मारा जाता है। बाद में यह मरा सुअर मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंके जाने के बाद एक हिंसक परिदृश्य पाठक के सामने प्रस्तुत करता है। जो धर्म, साम्प्रादियक संगठन, विचारधारा, राजनीति, प्रशासन, पार्टी, समाज, वातावरण सभी स्तरों पर अन्धेर नगरी में तब्दील हो जाता है। इन साम्प्रायिक दंगों की शुरूवात के पीछे मुराद अली की संलिप्तता अंग्रेजों की साजिश को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है। सत्ता अपनी सुरक्षा हेतु कैसे–कैसे जतन करती है, डिप्टी कमिश्नर मि. रिचर्ड उसका उदाहरण प्रस्तुत करता है। अंग्रेज अफसर मि. रिचर्ड का मानना है कि अंग्रेजों का जन्म शासन करने के लिए हुआ है। उसके अनुसार भारत के लोग कुछ नहीं जानते।[2] ये वही कुछ जानते हैं जो रिचर्ड जैसे गोरों द्वारा बताया जाता है। जिसके लिए प्रजा के आपस में लड़ते रहने पर ही शासन सुरक्षित है। होता भी यही है, प्रस्तुत उपन्यास में एक मरा हुआ सुअर पूरे वातावरण

में साम्प्रादायिक तनाव का कारण बनता है। उपन्यास में यह भी देखने को मिलता है कि इसकी पृष्ठभूमि मध्यकालीन प्रभुता की यूटोपिया मे विभिन्न धार्मिक संगठनों द्वारा पहले से ही निर्मित हो रही थी। शासन द्वारा इस साम्प्रादयिक मतभेदों को प्रायोजित घटन द्वारा उभारा जाता है। जिसके चलते हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख सभी इक–दूसरे के खून के प्यासे हो उठते हैं। सत्ता इसकी चरम परिणति की प्रत्याशा में गुमसुम बैठी तमाशा देखती है। साम्प्रादियकता का जहर किस प्रकार आम जन को तबाह कर देता है 'तमस' इसका दहकता दस्तावेज है। यह साम्प्रादियकता जिस प्रकार एक सामाजिक व्यवस्था के तहत् रची गई मानसिकता से उत्पन्न होती है, इस पर भी उपन्यासकार की पैनी नजर है। जहां शहर में सब काम बंटे हुए थे। कपड़ों की ज्यादातर दुकानें हिन्दुओं की थी, जूतों की मुसलमानों की, मोटर–लारियों का सब काम मुसलमानों का था, अनाज का काम हिन्दुओं के हाथ में था। रिचर्ड भी इस विभाजन से वाकिफ है और अपनी पत्नी लीजा को इनकी पहचान बताते हुए कहता है कि ''उसके नाम से, फिर उसकी छोटी से दाढ़ी से, उसके पहनावे से भी, फिर वह नमाज पढ़ता है, यहां तक कि उसके खान–पान के तरीके भी अलग हैं।.....मुसलमानों के नामों के अंत में अली, दीन, अहमद ऐसे शब्द लगे रहते हैं जबकि हिन्दुओं के नामों के पीछे ऐसे शब्द जैसे लाल, चन्द, राम लगे रहते हैं। रोशनलाल होगा तो हिन्दू, रोशनदीन होगा तो मुसलमान, इकबालचन्द होगा तो हिन्दू, और जो इकबाल अहमद होगा तो मुसलमान।[3] इस अलगाव में विविधता तो है ही साम्प्रदायिक विभाजन भी इसके मूल में है। जहां धर्म और जाति के आधार पर सामाजिक ताने–बाने का रचाव होता है।

'तमस' में उपन्यासकार की मूल चिंता मानवीय मूल्यों को लेकर है जो साम्प्रादियकता और तंत्र की संवेदनहीनता के चलते धूल–धूसारित हो रही। यह चिंता धार्मिक संगठनों के क्रियाकलापों के माध्यम से और उभर कर सामने आता है। इस उपन्यास का पात्र रणवीर जो कि किशोर है और मध्यकालीन योद्धाओं से खुद की तुलना करने में लगा रहता है, हिन्दू संगठनों के अतिचार को रेखांकित करता है। जिसके लिए पड़ोस में सड़क किनारे बैठा मोची मलेच्छ है, घर के सामने टांगा हांकनेवाला गाड़ीवान मलेच्छ है, उसकी कक्षा में पढ़ने वाला हामिद मलेच्छ है। गली में मंजीफा मांगनेवला फकीर मलेच्छ है, पड़ोस में रहने वाला परिवार मलेच्छों का है। ऐसे मलेच्छों का नाश रणवीर जैसों का मूल धर्म है।[4] ऐसी सोच वाले रणवीर की दीक्षा का उत्तरदायित्व मास्टर देवव्रत जैसे लोग संभाले हुए हैं। वह उसे मलेच्छों के नाश हेतु सन्नद्ध करने के लिए मुर्गी की बलि उपरांत, मुर्गी के खून के तिलक से उसका अभिषेक करते हैं। सिद्धि प्राप्त कर रणवीर और उसके साथी बेबस–लाचार इत्रफरोश का कत्ल कर मलेच्छ उन्मूलन करते हैं। धर्म और जातीय अस्मिता के नाम पर युवाओं को गुमराह करने व उसे ईश्वरीय विधान बताने को सभी चरमपंथी संगठनों में होड़ लगी हुई है। जिसके फलस्वरूप जहां एक–दुसरे पर हमले के दौरान तुर्कों के जेहन में यह था कि अपने पुराने दुश्मन सिक्खों पर हमला बोल रहे हैं और सिक्खों के जेहन में भी वे दो सौ साल के पहले के तुर्क थे जिनके साथ खालसा लोहा लिया करता था। यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाइयों की श्रृंखला में एक कड़ी ही थी। लड़ने वालों के पांव बीसवीं सदी में थे, और सिर मध्ययुग में।[5] यहां साम्प्रादायिक चेतना किस प्रकार खुद को सही ठहराने के लिए मध्ययुग तक का सफर तय करती हैं, इसकी शिनाख्त भी उपन्यासकार द्वारा बखूबी किया गया है।

अंग्रेजों को यह भली–भांति पता है कि उनकी सत्ता की सलामती यहां के लोगों के आपस में लड़ने पर ही टिकी है। इसके लिए मध्यकालीन बुतों को जिन्दा करके वे इस बात में सफलता भी प्राप्त कर लेते हैं कि, आप चाहे जो कहें कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है और मुस्लिम लीग मुसलमानों की। कांग्रेस मुसलमानों की रहनुमाई नहीं सकती। तात्पर्य यह कि स्वाधीनता संग्राम का आखिरी चरण अपने अन्तर्विरोध के चलते विभाजन की त्रासदी की ओर मजबूती से कदम जमा चुका था। भीष्म साहनी

इन अन्तर्विरोधों को रेखांकित करते हैं। साथ ही यह भी कि, 'फिसाद करवाने वाला भी अंग्रेज, फिसाद रोकनेवाला भी अंग्रेज, भूखों मारनेवाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज, घरों में बसाने वाला भी अंग्रेज।[6] जिनके लिए मूल कोशिश यही है कि सत्ता जैसे भी हो कायम रहनी चाहिए। साम्प्रादियकता की इस विभिषिका में सबसे ज्यादे निशाने पर स्त्रियां और बच्चे होते हैं, उपन्यासकार ने इसका मार्मिक चित्रण किया है। चाहे मुजाहिदों द्वारा दंगों के दरम्यान एक लड़की के साथ, उसकी लाश के साथ किया सामूहिक बालात्कार हो या फिर जसवीर कौर जैसी स्त्रियों और बच्चों द्वारा अपनी रक्षा हेतु कुंए में लगाई छलांग हो, मानवता के नाम पर काला धब्बा है।

'तमस' काल विस्तार के दृष्टि में भले ही आजादी के पहले के पांच दिनों की घटनाओं का चित्रण प्रस्तुत करता है, पर उसका प्रभाव अपनी सघनता में आज भी कायम है। भीष्म साहनी मानवीयता और मानवीय मूल्यों में अटूट विश्वास के चलते 'तमस' में राजनीति, सम्प्रदाय व प्रशासन की स्वेच्छाचारिता का चित्रण तो करते ही हैं, साथ ही इस घटाक्षेप में से ऐसी रोशनी को भी रेखांकित करते हैं जहां मानवीय मूल्य बचे हुए हैं। जरनैल, मीरदाद, देवदत्त, राजों जैसे पात्र इस विकट अंधेरे में रोशनी की किरण जैसे प्रतीत होते हैं। जरनैल जैसा बौड़म पाठक का ध्यान अपनी स्पष्टवादिता के चलते आकर्षित करता है। उसकी बाते खरी हैं, वह मन, कर्म, वचन से स्वाधीनता संग्राम के प्रति समर्पित है। उसकी आखिरी तकरीर भी अनसुनी कर जाती है, वह मारा जाता है इस लेक्चर के साथ कि ''साहिबान, गांधी जी ने कहा है कि हिन्दू–मुसलमान भाई–भाई हैं। इन्हें आपस में नहीं लड़ना चाहिए। मैं आपसे बच्चे, बूढ़े, जवान मर्द और औरतों सभी से अपील करता हूं कि आपस में लड़ना बन्द कर दें। इससे मुल्क को नुकसान पहुंचता है। देश की दौलत इंग्लिस्तान में जाती है। अंग्रेज यह गोरा बन्दर हम पर हुक्म चलाता है।[7] अन्त में पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा कहते हुए लाश में तब्दील हो जाता है। भीष्म साहनी 'तमस' के घुप्प आंधियारे में भी रोशनी की तलाश करने से नहीं चूकते। यह उनकी मानवीय मूल्यों के प्रति अप्रतिहत निष्ठा ही है जो मीरदाद, देवदत्त और राजो जैसे पात्रों के माध्यम से प्रस्फुटित होकर एक नयी आशा का संचार करती है। प्रस्तुत अपन्यास में भीष्म साहनी ने मानव के अद्यःपतन में भी उसकी उत्कृष्ट संभावनाओं और उपलब्धि को रेखांकित किया है। उनके लिए समूची धरती मानवीयता का प्रतीक है, जिसकी सारी कुरूपताओं के बावजूद वहां रहने वाले मनुष्यों में मानवीय मूल्यों और संवेदना की तलाश अहम है।

संदर्भ :

1. तमस – भीष्म साहनी (पृष्ठ–08)
2. तमस – भीष्म साहनी (पृष्ठ–43)
3. तमस – भीष्म साहनी (पृष्ठ–45)
4. तमस – भीष्म साहनी (पृष्ठ–78)
5. तमस – भीष्म साहनी (पृष्ठ–253)
6. तमस – भीष्म साहनी (पृष्ठ–274)
7. तमस – भीष्म साहनी (पृष्ठ–169)

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्येतिहास दृष्टि

डॉ0 आशुतोष कुमार सिंह
सहयुक्त आचार्य
प्रो0 राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय
प्रयागराज

लेखन समय परिवर्तन के साथ शुक्ल–युगीन इतिहास पद्धति की पर्याप्तता के सम्बंध में सन्देह उत्पन्न होने लगा। इस युग की इतिहास–लेखन की कमजोरियों को जानकर आगे साहित्येतिहास–लेखन का प्रयास किया गया। शुक्ल जी के कार्य कारण दुष्टि मे असंगतियाँ आ गई इस युग की कमजोरियों को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अच्छी तरह अनुभव किया विभिन्न कृतियों में उन्होंने अपनी इतिहास दृष्टि को स्पष्ट किया। उनकी कई कृतियाँ मिलकर हिन्दी साहित्येतिहास की रचना कही जा सकती है। उनकी प्रथम रचना 'हिन्दी साहित्य उसका उद्‌भव और विकास' हिन्दी सीरीज यू0सी0 कपूर एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट देहली द्वारा सं0 2009 में प्रकाशित हुआ। दूसरा ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' सन् 1940 में प्रकाशित हुआ। तीसरा ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से सन् 1952... प्रकाशित हुआ।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी चेतना से ही उन्होंने अपने दृष्टिकोण को परिमार्जित किया है। द्विवेदी जी 'अशोक के फूल' संग्रह में कहते हैं, 'इतिहास को कभी भौगोलिक व्याख्या के भीतर से, कभी जातिगत और कभी धर्मगत विशेषताों के भीतर से प्रतिफलित करके समझाया जाता है कि हिन्दोस्तानी जैसे हैं उन्हें वैसा होना ही है और उसी रूप में बना रहना ही उनके लिए श्रेयस्कर है। इतिहास की जो अभद्र व्याख्या इन भिन्न–भिन्न विशेषताओं को भीतर से देखने वाले प्रचारकों ने की है, वह हमारे रोम–रोममें व्याप्त होने लगी है। अगर इस जहर को दूरकरना है तो प्राचीन ग्रन्थों के देशी प्रमाणिक संस्कारणों के अनुवाद करने के सिवा और कोई रास्ता नहीं है।''

आगे हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से उनकी इतिहास दृष्टि की तुलना करते हुए कह सकते हैं, 'रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी दोनों साहित्य के इतहास को मानवीय परिवेश में रखकर देखते हैं और उस दृष्टि से 19वीं शती के विधेयवाद और ऐतिहासिकता से प्रभावित है। अन्तर के इस बात का है कि शुक्ल जी साहित्य को युगीन जीवन की क्रिया–प्रतिक्रिया के रूप में अथवा उसके प्रति बिम्ब के रूप में स्वीकार करते है और द्विवेदी जी साहित्य को युग जीवन की सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में विवेचित करते है।

आलोचना[1] के सम्पादकीय में हजारी प्रसाद की इतिहास दृष्टि के प्रति कहा गया है, 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में नव मानवतावादी दृष्टिकोण का निर्देश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है और इस मानवतावाद को एक विस्तृत आधार देने की, स्वयं हिन्दी साहित्य और उसकी दीर्घकालीन पृष्ठभूमि से उसे विकसित और समर्थित करने की चेष्ट की है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामचन्द्र शुक्ल से भिन्न 'शिष्ट जनता'के स्थान पर 'लोकमानस' को संस्कृति का आधार मानते हुए साहित्य का और उसके इतिहास लेखन का सूत्रपात किया।

व्यक्तिवादी इतिहास प्रणाली स्थान पर सामाजिक अथवा सांस्कृतिक इतिहास प्रणाली का प्रारम्भ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही किया है। नामवर सिंह[2] का विचार है कि ''आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' ऐसे ही समय नवीन युग की भूमिका बनकर प्रकाश में आई। पूर्ववर्ती व्यक्तिवादी इतिहास प्रणाली के स्थान पर सामाजिक अथवा जातीय ऐतिहासिक प्रणाली का प्रारम्भ करने वाली यह पहली हिन्दी पुस्तक है। अनेक साहित्यकारों का वैयक्तिक परिचय देने का मोह छोडकर इस पुस्तक में हिन्दी साहित्य के विराट पुरूष और उसके सामूहिक प्रभाव तथा साहित्य इतिहास के माध्यम ये युग–युगान्तर से आती हुई अबाध हिन्दी जाति की विचारसारणी और भाव परम्परा का दर्शन कराया।'

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का इतिहस–दर्शन मानवता के विस्तृत स्तर से संचालित होने के कारण मानवतावादी रहा है। उन्होंने जिस इतिहास पुरूष को विकास के रूप में प्रस्तुत किया है वह हिन्दी साहित्य का विराट पुरूष है। उनकी मानवतावादी दृष्टि पर रघुवंश[3] ने लिखा है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की इतिहास के बारे में धारणा, इस मानवतादी दृष्टि से अधिक प्रभावित रही है। आचार्य हजारी प्रसाद की दृष्टि पर काण्ट, हीगेल आदि का बहुत कुछ प्रभाव है। वे इतिहास को एक समान उद्देश्य की ओर विकसित मानते हुए उसमें हर राष्ट्र का विशिष्ट योगदान स्वीकार करते है। द्विवेदी जी की धारणा है ''मनुष्य दिन पर दिन अपने महान लक्ष्य के नजदीक पहुंचता जाएगा। समान्य मानव संस्कृति ऐसा ही दुलर्भ लक्ष्य है। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक देश और जाति ने अपने ऐतिहासक परम्पराओं और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार उस महान लक्ष्य के किसी न किसी पहलू का अवश्य साक्षात्कार किया है।'

द्विवेदी जी की दृष्टि मार्क्स की समाजवादी दृष्टि और अर्थव्यवस्था से प्रभावित है। किन्तु इसे नैतिक एवं व्यापक मानवीय प्रयोजन के क्रम में ही स्वीकार किया है। रघुवंश की स्थापना है, 'द्विवेदी जी की सामाजिक नैतिकता और स्वाधीनता की भावना सम्बन्धी अवधारणों पर ही होगेल का प्रभाव है। इसलिए 'सामाजिक नैतिकता' के साथ वे स्वाधीनता को स्वीकार करते हैं। इतिहास का लक्ष्य इसी स्वाधीनता को उपार्जित करते जाना है। स्वाधीनता अनियंत्रित जीवन नही है और प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धान्त भी इस रूप में सही नही है।

द्विवेदी जी की दृष्टि मार्क्स की समाजवादी दृष्टि और अर्थव्यवस्था से प्रभावित है किन्तु इसे नैतिक एवं व्यापक मानवीय प्रयोजन के क्रम में ही स्वीकार किया है। वस्तुतः द्विवेदी का ऐतिहासिक दृष्टिकोण वस्तुवादी से ज्यादा यथार्थवादी है। इनका आदर्शवाद नये सन्दर्भो के क्रम में व्यापक और नवीन अर्थो को समाहित कर सका है। इतिहास की समस्त प्रक्रिया संस्कृति के सन्दर्भ में देखते हुए मानववादी है। व्यापक मानववाद ही उनकी सीमा है। विविध प्रकार के प्रभावों और दृष्टियों को मानवतावादी दृष्टि समन्वित कर लिया गया है। इन्द्रनाथ मदान[4] के शब्दों में श्री हजारी प्रसाद ... आदर्शवाद के धरातल पर परस्पर विरोधी विचार धाराओं, परम्पराओं तथा ... संस्कृति तथा सभ्यता, समाज तथा विज्ञान, मानववाद तथा मानवतावाद, तथ मार्क्स, प्राचीन तथा नवीन जीवनबोध में सामंजस्य एवं समन्वय समर्पित किया है।

सन्दर्भ :

1. आलोचना, त्रैमासिक, जुलाई 1954, पृ0 6 सम्पादकीय
2. शिवकुमार, हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ0 216
3. वही, पृ0 217
4. वही, पृ0 218

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

यह भूमि है, उस भक्त की – कवि कालिदास व कश्मीर

डॉ0 भारतेंदु कुमार पाठक
सहायक प्रोफेसर, हिंदी–विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, हजरतबल,
श्रीनगर–190006, जम्मू व कश्मीर, भारत

कवि कालिदास किस स्थान के निवासी थे, या उनकी जन्मभूमि होने का श्रेय किस प्रदेश को दिया जाये, यह अत्यधिक कठिन है, किंतु उनकी रचनाओं के अन्तः साक्ष्य से कुछ अनुमान किया जा सकता है। 'विक्रमांक देवचरित' के रचनाकार/कवि विल्हण ने कहा है कि–

सहोदरा कुंकुम केसराणां, भवन्ति नून कवितां विलासः। अर्थात् कश्मीर में 'केसर व कविता' की सहोदर स्थिति संभव है। कविता और केसर का वैविध्य व वैशिष्ट्य, जो यहाँ है, वह अन्यत्र नहीं। उपर्युक्त तर्क के आधार पर कह सकते हैं कि विभिन्न वैशिष्ट्य, से युक्त कवि कालिदास की कविता है। कवि का संबंध कश्मीर से अवश्य ही रहा है।

द्वितीय यह कि किसी युग में कश्मीर–प्रांत में शैव–दर्शन का वातावरण व्याप्त था। कवि कालिदास भी शैव थे, वे प्रत्येक ग्रंथों में शिव संबंधित पद्य प्रस्तुत करते हैं। यथा, 'कुमारसम्भव'। यह ग्रंथ–विशेष शिव–कथा संदर्भित है। मंगलाचरण के रूप में.....

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा————[1] प्रस्तुत है। 'अस्ति' शब्द शिव तत्व को प्रत्येक जड़–चेतन में विद्यमान मानकर प्रयोग किया गया है। शिव का निवास स्थल 'हिमालय' जो ऐश्वर्य समृद्धि व आध्यात्मिक शांति का वाचक भी है, उसका महात्म्य वर्णित है, किंतु मात्र शिव ही नहीं प्रत्युत शक्ति व शिव को उभयात्मक प्रस्तुति पुनः करते हैं, यथा–

वार्गर्थाविव सम्पृक्तौं, वागर्थ प्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वंदे, पार्वती परमेश्वरौ।।[2]

शैव–दर्शन में जिस प्रकार प्रकाश व विमर्श उभयात्मक गत्यात्मक होकर सृष्टि–विनिर्माण करता है। उसी प्रकार शिव व शक्ति उभयात्मक विश्व उपकारक हैं। 'पितरौ' में द्वन्द्व समास है। द्वन्द्व का शाब्दिक सामान्य अर्थ उभय भी होता है। कहा भी जाता है कि शक्ति के अभाव में शिव मृतक समान है, क्योंकि संपूर्ण स्पंदनात्मक शक्ति शिव के सहयोग से संभव है। अतः 'रघुवंश' में उपर्युक्त मंगलाचरण किया गया है।

'मेघदूत' नामक खण्डकाव्य में कवि ने 'शिव–पूजा' की ओर संकेत किया है। धनपति कुबेर/यक्ष ने शाप दे दिया। 'यक्षश्चके'–[3] अस्तु।

'अभिज्ञानशाकुन्तलं' में भी कवि ने आरंभ व अंत में शिव–स्मरण किया है। शिव स्वरूप विभिन्न मूर्तियों का स्मरण करते हैं––––––

''या सृष्टिः स्रष्टुराद्या————वस्ताभिरष्टाभिरीशः।''[4]

[उन प्रत्यक्ष आठ देहों से युक्त शिव आपकी रक्षा करें]

अंत में भी कहते हैं————

"ममापि च क्षपयतु नील लोहितः

पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।"[5]

[व्याप्ति शक्ति वाले स्वयंभू–शिव मेरे पुनर्जन्म को नष्ट कर दें]

तृतीय तर्क यह है कि– केसर, कुंकुम का वर्णन कालिदास के यहाँ अधिक हुआ है, जो कश्मीरवासी होने का संकेत करता है।

चतुर्थ यह कि पर्वत, मेघ, वन, उपवन, कृषक, ऋतु, पुष्प व अन्य प्राकृतिक घटकों से उनकी कविता युक्त है। जैसे सूक्ष्म व हार्दिक चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ हैं।

पंचम यह कि उनके यहाँ व्याकरण का पालन दूसरी रीति से किया गया है, जिसे अपाणनीय संज्ञा दी गयी है। कश्मीर क्षेत्र में पाणिनि का प्रचलन अल्प है, नहीं के समान, जिस प्रकार बंगाल में 'मुक्तिबोध' व्याकरण व बिहार में 'सारस्वत' व्याकरण तथा उ0प्र0 में 'कौमुदी–परंपरा' प्रसिद्ध है, संभवतः कश्मीर में भी कुछ अन्य व्याकरण रीति होगी, क्योंकि पाणिनी के पूर्व इंद्र चन्द्र काश्कृत्न अनेक आचार्य हो चुके थे, पाणिनि ने युगानुकूल सन्मयोचित व सरल व्याकरण प्रस्तुत किया हैं।

इतिहास में जिस समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का उल्लेख मिलता है, वे भारत के चक्रवर्ती सम्राट थे। कवि कालिदास को विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि कालिदास उपर्युक्त सम्राट महानुभावों के द्वारा उपकृत थे। अतः वे प्रशासनिक रूप से अवश्य कश्मीर पधारे होंगे। कुछ विद्वानों ने 'कुमारसंभवं' व 'रघुवंशं' की रचना के कारण तत्व गुप्त महाराजाओं को मानते हैं।

कवि कुलगुरू कालिदास ने अपने काव्य में 'देवदारू' के वृक्षों का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। पवन किस प्रकार देवदारू के पत्तों के मध्य से ध्वनि करते हुए संचरित होता है व झरने, नदियों, पुष्पों की ओर से आने वाली वायु किस प्रकार शीतल, मंद व सुगंध त्रिविध गुण युक्त प्रतीत होती है। यथा————————

"पृक्तै तुषारै गिरि निर्झराणां,

मनो कह कम्पित पुष्पगंधिः।"[6]

अन्यत्र भी कहा है————————

"कपोलं कण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमणाम्।

यत्र स्ननुत क्षीरतया प्रसूतः सानूनि गंधः सुरभी करोति।।"[7]

देवदारू कश्मीर के वन में पाये जाते हैं। जम्मू से कश्मीर जाते समय इस वृक्ष को देखा जा सकता है। ये वृक्ष लम्बे व क्षीणकाय होते हैं, अतः कवि ने 'सरल द्रुमाणामं शब्द का प्रयोग किया है। इससे भी सिद्ध है कि कवि का संबंध कश्मीर से अवश्य रहा है।

"कालिदास के ग्रंथों में हिमालय का वर्णन विस्तृत तथा बहुत सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है, इस बात को सब लोग जानते हैं। 'कुमारसम्भवं' में तो हिमालय ही के वर्णन से काव्य का प्रारंभ हुआ।

'मेघदूत' में वर्णित यक्ष की निवास भूमि अलका नगरी हिमालय पर ही थी। 'विक्रमोर्वशीय' में पुरूरवस तथा उर्वशी की पहली भेंट कश्मीर के समीप गंधमादन पहाड़ पर ही हुई थी और आगे चलकर उर्वशी के वियोग के बाद राजा उसी पहाड़ पर भटकने लगा था––– उक्त सभी स्थान कश्मीर में सिंधु नदी की घाटी में थे। [रघुवंश के] सिन्ह को भूतेश्वर पार्श्ववर्ती कहा हैं। कश्मीर में सुविख्यात भूतेश्वर तीर्थ उस प्रदेश में ही बसा है। सिंधु तथा मालिनी नामक नदियां शची तीर्थ सोमतीर्थ तथा ब्रह्मसर आदि तीर्थ तथा शकघाट आदि स्थान भी कश्मीर में ही हैं। 'रघुवंश' में सिन्ह अपने को निकुम्भ का मित्र बतलाता है। कश्मीर के 'नीलमतपुराण' में इस संबंध में एक कथा है कि कुबेर ने दुष्ट पिशाचों के साथ युद्ध करके उन्हें कश्मीर से निकालने के लिए निकुम्भ को नियुक्त किया। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास को कश्मीर की पुरानी कथाओं का ज्ञान था।''[8]

उपर्युक्त तथ्य स्पष्ट है कि कवि कुलगुरू कालिदास या तो कश्मीर के निवासी थे या कुछ दिनों हेतु कश्मीर निवास किया होगा। उनका संबंध कश्मीर प्रदेश से अवश्य रहा है।

संदर्भ :

1. कुमारसम्भव–कालिदास ग्रंथावली, रेवाप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 306।
2. रघुवंश–कालिदास ग्रंथावली–रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रथम भाग वर्ष 2008, पृष्ठ–1।
3. मेघदूत–कालिदास ग्रंथावली, पृष्ठ–428।
4. अभिज्ञानशाकुन्तल–मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम सं0–1970, पृष्ठ–1।
5. उपर्युक्त, पृष्ठ–500।
6. रघुवशम्।
7. कुमारसम्भव–चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम सं0वि02044, पृष्ठ–8।
8. 'कालिदास'–पृष्ठ 58–पं0 लक्ष्मीधर कल्ला का मत।

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

रीतिकालीन काव्य में लोक जीवन

घाघ और)भड्डरी के विशेष संदर्भ में(

शुभम सिंह
शोधार्थी (हिंदीविभाग)
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,
धर्मशाला) ,काँगड़ा ,हिमाचल प्रदेश(

लोक साहित्य अपनी बहुआयामी विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। लोक की परम्परा संभवतः उतनी ही पुरानी है जितनी मानव जाति का इतिहास है। जन जीवन को उसके वास्तविक रूप में आत्मसात करने के कारण ही लोक की अपनी विशेष महत्ता रही- सांस्कृतिक मान्यताओं को संरक्षित- है। लोक साहित्य ने मानव जीवन को पुष्पित और पल्लवित ही नहीं किया है अपितुउसकी सामाजिक कर उसे गति प्रदान करने का कार्य भी किया है। जब समाज विज्ञान और तकनीकी के युग में नित नई ऊँचाईयों की ओर निरंतर अग्रसर है ऐसे में न केवल लोक की परम्परा विलुप्त हो रही है अपितु लोक की स्वाभाविक जीवन जीने की प्रवृत्ति का भी ह्रास हो रहा है। अपने स्वाभाविक जीवन जीने की कला अनोखेपन और अक् ,खड़ता आदि वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश लोक जीवन के बहुआयामी पक्ष रहे हैं।सामान्य जनजीवन के बीच लोक की परम्परा प्रायः मौखिक रूप में प्राप्त होती रही है।यही कारण है कि लौकिक काव्य लिपिबद्ध न होने के कारण समय समय पर विस्मृत और विलुप्त होता रहा है। लोक की साम-ाजिक सांस्कृतिक विरासत और उसकी आंचलिकता को लिपिबद्ध करने- का कार्य लोक साहित्य ने किया है।

हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक काव्य परम्परा को समृद्ध करने में लोक कवियों का विशेष योगदान रहा है। लोक कवियों ने अपने काव्य में लोक जीवन की चिंता और स्वाभाविक कार्य शैलीको प्रस्तुत करने के साथ उनके जीवन के अनेक रागात्मक संबंधों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। अनेक प्रकार के रीति संस्कार एवं अनुष्ठान आदि लोक संस्कृति को उद्घाटित करने ,परम्पराएँ ,मान्यताएं ,रिवाज- का कार्य करते हैं। कृष्णदेव उपाध्याय लोक को परिभाषित करत ी हुए लिखते हैं" ,आधुनिक सभ्यता से दूर अपनी सहज तथा प्राकृतिक , ,सहन प्राचीन परम्पराओं-दर्शन और रहन-कहते हैं जिनका जीवन 'लोक' तथाकथित असभ्य एवं अशिक्षित जनता को ,अवस्था में वर्तमान [1]" विश्वासों तथा आस्थाओं द्वारा परिचालित एवं नियंत्रित होता है। लोक की सहजता और जन जीवन के प्रति विश्वास ही उसे सम्यक रूप से व्यापक और समृद्ध बनाता है।

लोक जीवन को उसके जीवन दर्शन एवं स्वाभाविक संवेदना के साथ ग्रहण कर उसे अभिव्यक्त प्रदान करने का कार्य लोक साहित्य ने किया है।इस सन्दर्भ में रीतिकालीन लोक कवियों में घाघ और भड्डरी की उपादेयता असंदिग्ध है। घाघ और भड्डरी का काव्य भारतीय कृषकों के लिए कितना उपयोगी है हिंदी भाषी"-, इसका महत्त्व आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस कथन से लगाया जा सकता है , – जनता के सलाहकार प्रधानतः तीन ही रहे हैं तुलसीदास गिरिधर , गिरिधर कविराय और घाघ। तुलसीदास धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में , [2]"बाड़ी के संबंध में।-घाघ खेती ,कविराय व्यवहार और नीति के क्षेत्र मेंघाघ और भड्डरी की कहावतें कृषक समाज में अत्यंत लोकप्रिय रही हैं।इनके गीतों में सामाजिक सांस्कृतिक और भौगो ,लिक जीवन की एक साथ कई नीति विषयक प्रकृति विषयक और मौसम विषयक , जीवन के बीच मौखिक रूप से प्रचलित थे। परन्तु उन गीतों- जानकारी प्राप्त होती है। वैसे तो घाघ और भड्डरी के लोक गीत सदियों से जन का संकलन कर उसे लिपिबद्ध करने का कार्य रामनरेश त्रिपाठी ने किया। लोक ग ीतों की परम्परा तत्कालीन समाज से न केवल नष्ट हो रही है बल्कि आधुनिक समाज इन लोक कवियों के गीतों से बहुत ही कम परिचित है। इन लोक कवियों के गीत आम जनमानस के जितना निकट दिखाई पड़ते हैं वर्तमान समाज इन गीतों से उतना ही विमुख होता जा रहा है।लोक जीवन की परम्परा ,से कटना वास्तव में उस समाज से कटना है जिसमें उस अंचल विशेष की लोक संस्कृति उनकी मान्यताएं और कुरीतियाँ आदि की चारित्रिक , जनमानस के कार्यकलाप , विशेषताएं पायी जाती हैं।

लोक जीवन जनमानस का एक ऐसा पहलू है जो मनुष्य के जन्म के साथ ही आरंभ हो जाता है। इसमें मानव जीवन के हर्ष ,विषाद-मरण आदि की पूरी श्रृंखला निहित रहती है। घाघ और भड्डरीभी उसी लोक जीवन-जीवन ,वियोग-संयोग ,अलौकिक-लौकिक ,दुःख-सुख बोध के कवि हैं। इनकी रचनाएँ भाव और संवेदना में आम जनमानस के इतना निकट हैं कि उनसे सहज ही जुड़ने का भाव जागृत हो जाता है। घाघके लोक गीतों में मुख्य रूप से नीतिविषयक बातें फसलों की सिचाई आदि कृषि सम्बन्धी कहावतें ,बोवाई की रीति ,बोवाई का समय , विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित हैं। घाघ एक जगह खेती के सम्बन्ध में , मिलती हैं। घाघ की कहावतें सामान्यतः ठेठ हिंदी भाषी क्षेत्र में कहते हैं-

अगसर खेती अगसर मार। कहैं घाघ ते कबहुँ न हार।। [3]

(वे कभी नहीं हारते। ,अर्थात जो सबसे पहले खेत बोता है और जो सबसे पहले मरता है)

-एक अन्य कहावत में घाघ मौसम के विषय में कहते हैं

दिन का बद्दर रात निबद्दर। बहै पुरवैया झब्बर झब्बर।।
घाघ कहैं कुछ होनी होई। कुँवा के पानी धोबी धोई।। [4]

ऐसी संभावना है , तो घाघ कहते हैं कि कुछ बुरा होने वाला है ,रुक कर बहे- रात को बादल न रहें और पूर्वा रुक , अर्थात दिन को बादल हों) (कि सूखा पड़ेगा और धोबी कुएँ के पानी से कपड़े धोयेगा।

इसी प्रकार भड्डरी की ज्यादातर कहावतें वर्षा से संबंधित हैं। जिसमें भड्डरी वर्षा के नक्षत्र सूखा की ,फसलों की उपज और वर्षा , -संभावनाओं पर बात करते हैं।वर्षा के सम्बन्ध में वे कहते हैं

कातिक सुद एकादसी,
बादल बिजुली होय।
तो असाढ़ में भड्डरी,
बरखा चोखी होय।[5]

कार्तिक शुक्ला एकादशी को यदि बादल हों और)बिजली चमके(तो भड्डरी कहते हैं कि आसाढ़ में निश्चित वर्षा होगी ,

घाघ और भड्डरी के जन्म स्थान और समय के बारे में प्रमाणिक जानकरी का आभाव मिलता है। कुछ विद्वान घाघ और भड्डरी के उपरांत माना है 1753 अलग नहीं मानते हैं। शिवसिंह सेंगर ने घाघ का जन्म संवत्-को अलगतो वहीं मिश्र बन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' में घाघ का जन्म संवत्1753 माना है और रचनाकाल संवत् 1780 माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने में घाघ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' प्रयाग द्वारा पंडित रामनरेश त्रिपाठी के , का सिर्फ उल्लेख मात्र किया है। घाघ के सम्बन्ध में सर्वाधिक मान्य जानकारी हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा ह 'कविता कौमुदी' संपादकत्व में प्रकाशित पुस्तकि ंदुस्तानी अकादमी नामक पुस्तक में 'घाघ और भड्डरी' प्रयाग द्वारा प्रकाशित , में कन्नौज में होना 1753 घाघ और भड्डरी के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। जिसमें रामनरेश त्रिपाठी ने घाघ का जन्म संवत् बताया है। वहीं कुछ विद्वानों ने भड्डरी को काशी के अतरिक्त मारवाड़ का निवासी भी बताया है।घाघ को ग्वालियर मध्य प्रदेश काभी , पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में , निवासी बताया जाता है। परन्तु घाघ की लोक प्रचलित कहावतों में कतिपय शब्द ऐसे मिलते हैं जो अवध करकस इत्यादि। कुछ उद ,बकुआ,मेहरारू ,प्रचलित हैं। जैसे ओरहन ाहरण दृष्टव्य हैं -

बिन बैलन खेती करैबिन भैयन के रार। ,
बिन मेहरारू घर करैचौदह साख लबार।। ,[6]

(बिना भाइयों के दुश्मनी करने और बिना पत्नी के घर बसाने की बात करने वाला चौदह पीढ़ियों का झूठा होता है। ,बिना बैल के खेती करने)

का कोई प्रमाणिक काव 'भड्डरी' और 'घाघ' य संग्रह उपलब्ध नहीं है। इनकी जितनी भी कहावतें हैं वे सभी लोक में प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर संकलित की गयी है।इसी कारण इनकी कहावतें उत्तर प्रदेश से लेकर बिहार व मध्य प्रदेश के ग्वालियर तक लोक प्रचलित बोलियों के साथ घुलीमिली हुई हैं। घाघ की उक्तियों म- ं चुटीले व्यंग्यों के साथ ग्रामीण बोल विषयक -चाल की भाषा में नीति- -अवगुण की बात करते हैं। उदाहरण दृष्टव्य हैं-जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। बारहमासा के माध्यम से घाघ खेती के सभी गुण

अम्बाझोर चलै पुरवाई।
तब जानो बरखा ऋतु आई।। [7]

यदि पूर्वा हवा ऐसे जोर से बह) कि आम पेड़ से गिरने लगे(ऋतु आ गयी है।-तो समझ लेना चाहिए की वर्षा ,

चैत के पछुवाँ भादौं जल्ला। भादों पछुवाँ माघ के पल्ला। [8]

(तो माघ में पाला पड़ेगा। ,तो भादों माह में जल बहुत होगा। भादों में पछुवाँ बहे ,चैत में पछुवाँ बहे)

भड्डरी भी चैत माह की वर्षा के सम्बन्ध में लिखते हैं-

चैत मास दसमी खड़ाजो कहुँकोरा जाइ।,

चौमासे भर बादला [9]भली भाँति बरसाइ।। ,

(तो समझना कि चौमासे भर अच्छी वृष्टि होगी। ,यदि चैत सुदी दशमी को बादल न हुआ)

समाज और जाति का वास्तविक परिचायक है। लोक की वैविध्ता ही किसी देश की साम , किसी भी देश 'लोक'ाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टता होती है। घाघ अपनी कविताओं में आसपास के जीवन व परिवेश को महत्त्व देते हैं। जिससे हम देखते हैं कि उनकी – कहावतों में उस समाज की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थासहज ही दृष्टिगोचर हो जाती है। जैसे

उत्तम खेती मध्यम बान। निषिद चाकरी भीख निदान।।

खेती करै बनिज को धावै। ऐसा डूबे थाह न पावै।। [10]

घाघ ने ठेठ ग्रामीण बोलचाल की भाषा में अपनी बात कही है। संभवतः इसी कारण वे लोक का अंग बन सके। वे तीखे व्यंग्य के आलावा ग्रामीण जीवन के बीच प्रचलित मुहावरों के माध्यम से अनेक नीतिविषयक बातें कहते हैं। घाघ न ेअपनी कविताओं के लिए आवश्यक सामग्री यथा बिंब और प्रतीक ग्रामीण जीवन से लिए हैं। इसी कारण उनकी ज्यादातर कविताएँ ग्रामीण जीवन और कृषक जीवन को गहराई से अभिव्यक्त करती हैं-

नारि करकसा कट्टर घोर। हाकिम होइके खाइ अँकोर।।

कपटी मित्र पुत्र है चोर। घग्घा इनको गहिरे बोर ।। [11]

(घाघ कहते हैं कि इनको गहरे पानी में डुबों देना चाहिए। ,कपटी मित्र और चोर पुत्र ,रिश्वतखोर हाकिम ,काटनेवाला घोडा ,कर्कशा स्त्री)

सुथना पहिरे हर जोतै औ पौला पहिरी निरावै।

घाघ कहैं ये तीनों बकुवा सिर बोझा औ गावै।। [12]

पायजामा पहनकर हल जोतने)वाला घाघ कहते हैं ये तीनों ,सिर पर बोझा होने पर भी गीत गाने वाला ,खड़ाऊं पहनकर निराई करने वाला , (मुर्ख हैं।

घाघ की कविताओं में सामाजिक जीवन के एक साथ कई पहलू उपस्थित होते हैं। एक तरह जहाँ उनकी कहावतों में सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है तो वहीं दूसरी तरफ उन्होंने कतिपय कहावतें स्वास्थ्य सम्बन्धी भी कहीं हैं।ऐसा प्रतीत होता है कि उनकीस्वास्थ्य सम्बन्धी कहावतें व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित हैं-

प्रातकाल खटिया ते उठि केपिअइ तुरंतै पानी। ,

कबहूँ घर में बैद न अइहैं[13]बात घाघ कै जानी।। ,

प्रातःका)ल खाट पर से उठते ही तुरंत पानी पीने से व्यक्ति बीमार नहीं पड़ता है। यह बात घाघ की अनुभव की हुई है। (

मानव चरित्र की बात तो करते ही ,स्वास्थ्य ,मौसम , घाघ की कविताओं का लोक पक्ष अत्यंत विस्तृत दिखाई पड़ता है। वे कृषि हैं। साथ ही नीतिगत संदेशों के माध्यम से जीवन में संतुलन स्थापित करने की भीबात करते हैं-

ना अति बरखा ना अति धूप।

ना अति बकता ना अति चूप।। [14]

इसी प्रकार न बहुत बोलना ही अच्छा है और न ही बहुत चुप रहना ही , न बहुत अधिक धूप अच्छी है , न बहुत अधिक वर्षा अच्छी है) (अच्छा है।

घाघ की कहावतों में कृषक जीवन का अत्यंत विस्तार से वर्णन मिलता है। उनकी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वयं पेशे से किसान थे। और फसल और मौसम के अनुसार वे किसानों को शिक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं-

गाजरमूरी। ,गंजी ,

इनको बोवै दूरी।। [15]

(दूर बोना चाहिए।-शकरकंद और मूली को दूर ,गाजर)

घाघ और भड्डरी की कहावतों में भारतीय कृषि दर्शन सहज ही अनुभूत हो जाता है।उनके काव्य में कृषि की अनुकूल प्रतिकूल - साथ खेती के पैदावार व खेती के कार्य में प्रयोग की जाने वाली खाद्य सामाग्री का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता- परिस्थितियों के साथ है।भड्डरी कहते ह ैं-

असाढ़ मास पुनगौना। धुजा बाँधि के देखौ पौना।।
जो पै पवन पुरब से आवै। उपजै अन्न मेघ झर लावै।। [16]

,तो समझना चाहिए कि पैदावार अच्छी होगी , आसाढ़ की पूर्णमासी को झण्डी बाँधकर हवा का रुख देख लेना चाहिए। यदि पूर्व की हवा हो) (वृष्टि बहुत होगी।

वहीं वर्षा कम होन े की संभावना पर भड्डरी कहते हैं-

आभा पीला
मेह सीला।। [17]

(तो वर्षा कम होगी। ,आकाश पीला हो)

की महत्ता बढ़ती जा रही है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि में लिप्त है। घाघ इस परिप्रेक्ष्य में (धन) वर्तमान समाज में जब अर्थ -लिखते हैं

आपन आपन सब कोउ होइ। दुःख माँ नाहिं संघाती कोइ।।
अन बहतर खातिर झगड़न्त। कहैं घाघ ई बिपत्ति क अन्त।। [18]

घाघ , वस्त्र के लिए झगड़ रहे हैं -आज सभी अन्न , दुःख में कोई किसी का साथ नहीं देता है , प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ स्वयं का लाभ चाहता है) (कहते हैं कि इससे बड़ा संकट नहीं हो सकता है।

उस किसान , भारतीय कृषि प्रणाली में गोबर की महत्ता बताते हुए घाघ कवि कहते हैं कि जिस किसान के खेत में गोबर नहीं पड़ा -को कमजोर समझना चाहिए

जेकरे खेत पड़ा नहीं गोबर। वहि किसान को जान्यो दूबर।। [19]

भारतीय संस्कृति में धर्म व कर्म की महिमा का गुणगान सर्वत्र देखन े को मिलता है। इस सन्दर्भ में घाघ की नीति कहती है कि पुत्र पिता के धर्म से आगे बढ़ता है परन्तु खेती अपने ही कर्म से पैदा होती है-

बाढ़ै पूत पिता के धर्मा। खेती उपजै अपने कर्मा।। [20]

मानवीय जीवन की व्यवहारिक एवं कृषि जगत की नीतियों को अत्यंत सरल एवं स्पष्ट शब्दों में कहना की 'भड्डरी' और 'घाघ' और 'घाघ' कहावतों का मूल वैशिष्ट्य रहा है। रीतिकालीन परम्परा अपनी प्रकृति में ऐहिक और लौकिक रही है।रीतिकालीन कवियों में का काव्य भी युगीन चेतना और मानव जीवन दर्शन की व्यापकता में जीवन की यथार्थ एवं कटु अनुभूतियों क 'भड्डरी' ो समेटने का प्रयास करता है। उनकी कहावतों में मानव जीवन के वैयक्तिक पर्यावरण एवं सांस्कृतिक मूल्यों की प्रभावपूर्ण ,कृषि ,राजनैतिक ,सामाजिक , अभिव्यक्ति हुई है।

वस्तुतः की ऐसी ही सैकड़ों रचनाएँ हैं जो समय के साथ विस्मृत होती जा रही हैं। इसमे 'भड्डरी' और 'घाघ' ं आश्चर्य नहीं है कि एकाध पीढ़ी के बाद लोग इन लोक कवियों का नाम ही न जाने। की कहावतें मानव चरित्र का उत्तम उदहारण हैं। ये 'भड्डरी' और 'घाघ' कहावतें आज के प्रसंग में भले ही उतनी वैज्ञानिक न हों। परन्तु यदि हम इन पर गंभीरता से विचार करें तो निश्चित ही हमारे ज ीवन में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। विचार मूल्यों की दृष्टि से इन - चरित्र और मानवीय एकता आदि नैतिक मानवीय ,सत्य ,स्वास्थ्य ,सदाचार , कहावतों में कवियों के अपने अनुभव सहज ही दृष्टिगोचर हो जाते हैं। कहना न होगा कि इन कहावतों में लोक का अनंतकालीन अनुभव मानसिक और प्राकृतिक संस्कार का वृहत्तर समायोग है। ,का नीतिकाव्यशारीरिक 'भड्डरी' और 'घाघ' शामिल है।

संदर्भ

1. कृष्ण देव उपाध्याय 11 -पृष्ठ ,2019 ,संस्करण ,इलाहाबाद ,लोकभारती प्रकाशन ,लोक साहित्य की भूमिका ,
2. हजारी प्रसाद द्विवेदीराजक ,उद्भव एवं विकास :हिंदी साहित्य ,मल प्रकाशन 189 -पृष्ठ ,2018 ,संस्करण ,नई दिल्ली ,
3. -पृष्ठ ,2017 ,संस्करण ,इलाहाबाद ,हिन्दुस्तानी एकेडेमी ,घाघ और भड्डरी ,रामनरेश त्रिपाठी (.सं) 42

4. वहीं 97-पृष्ठ ,
5. वहीं-पृष्ठ ,125
6. वहीं-पृष्ठ , 53
7. वहीं-पृष्ठ , 58
8. वहीं-पृष्ठ , 119
9. वहीं-पृष्ठ , 138
10. वहीं-पृष्ठ , 53
11. वहीं-पृष्ठ , 44
12. वहीं-पृष्ठ , 33
13. वहीं-पृष्ठ , 55
14. वहीं-पृष्ठ , 52
15. वहीं-पृष्ठ , 78
16. वहीं-पृष्ठ , 144
17. वहीं-पृष्ठ , 182
18. वहीं-पृष्ठ , 40
19. वहीं-पृष्ठ , 70
20. वहीं-पृष्ठ , 48

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

आदिकालीन कवियों के काव्य में अलंकार तत्व : गुरु गोरखनाथ, विद्यापति व चंदबरदाई के विशेष संदर्भ में

डॉ0 भारतेंदु कुमार पाठक
सहायक प्रोफेसर, हिंदी–विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, हजरतबल,
श्रीनगर–190006, जम्मू व कश्मीर, भारत

हिन्दी साहित्य का आदिकाल अपने वैशिष्ट्य के कारण समीक्षकों व साहित्येतिहासकारों का महत्वपूर्ण विषय रहा है। अधिकांशतः प्रवृत्तियों व भाषिक दृष्टि से विमर्श होता रहा है, किन्तु इसमें इतर आदिकालीन रचनाकारों के काव्य को यदि काव्य–तत्व की दृष्टि से देखा जाय, तो एक समृद्ध साहित्य भण्डार प्रत्यक्षगत होता है, जिसके मूल्यांकन की आवश्यकता प्रतीत होती है।

प्राचीन कवियों के काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग मिलता है। अलंकारों के रम्य प्रयोग से काव्य में सौन्दर्य भर जाता है। यथा– 'सौन्दर्यमलंकार।' आचार्य दण्डी ने भी कहा है– 'काव्यशोभाकरान् धर्मान्लंकारान् प्रचक्षते।' ''अलंकार न केवल काव्य के शोभाधायक या काव्योत्कर्षक के हेतु है, अपितु वे चित्रविधान, बिम्बविधान एवं अप्रस्तुत योजना में कविकर्म के महनीय साधन के रूप में प्रतिस्थापित किए जा सकते हैं। भारतीय सौंदर्य दर्शन की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में अलंकारों की सशक्त भूमिका है।''[1]

गुरु गोरखनाथ एक ऐसे कृतिकार हैं, जो अपने युग में साहित्य के माध्यम से संदेश भी दिया करते थे। ''विक्रम संवत् की दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के महान गुरु गोरक्षनाथ का आविर्भाव हुआ। शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महा–पुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। गोरक्षनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे। उन्होंने जिस धातु को छुआ, वही सोना हो गया।''[2] गुरु गोरखनाथ का साहित्य काव्य–तत्वों से अधिक युक्त है। वे कहीं–कहीं प्रतीकात्मक भाषा प्रस्तुत करते हैं, किन्तु उनकी काव्यात्मकता सदैव बनी रहती है। कहीं–कहीं सानुप्रासिक भाषा बड़ी मनोहर लगती है–

''जोइ–जोइ पिंडे।
सोइ ब्रह्माण्डे।''

यहाँ पर 'जोइ–जोइ' शब्द में पुनरुक्त प्रकाश अलंकार और 'पिंडे व ब्रह्माण्डे' में अन्त्यानुप्रास है।

''अवधू मन चंगा।
कठौती में गंगा।''

'चंगा व गंगा' में अनुप्रास की छटा है तो 'कठौती में गंगा' में 'अधिक' अलंकार है।

कहीं–कहीं अतिशयोक्ति अलंकार भी सहज रूप से आ गया है–

''नौ लख पातरि, आगे नाचै,
पीछे सहज अखाड़ा।

ऐसे मन कौ जोगी खेले

तब अंतरि बसै भंडारा।''

स्वाभावोक्ति का एक सहज प्रयोग देखिए–

'दुबध्या मेटि सहज में रहै।'

आदिकालीन कवियों में कवि विद्यापति का प्रमुख स्थान है। कवि विद्यापति के काव्य में आलंकारिक सौन्दर्य पग–पग टपकता प्रतीत होता है। विद्यापति 'पुनरुक्त प्रकाश' के कवि हैं। एक उदाहरण देखा जा सकता है–

''धीरे धीरे टरलि बोलाव।''[3]

बेरि–बेरि बोलि पठाव।

फिरि–फिरि ततहि निहारि।

या

जनि–जनि पुंछ बनवारि।

यहाँ 'मुरली की मंदता दिखाने हेतु लघुवन्त शाब्दिक प्रयोग किया है 'धीरे–धीरे'।

अन्यत्र भी बार–बार चरनारविन्द।

यहाँ चरनारविन्द में रूपक का प्रयोग किया गया है।

आदिकाल के पृष्ठ पर एक प्रमुख नाम अमीर खुसरो का लिखा जाता है। खुसरो का साहित्य अल्प है, किन्तु कहीं–कहीं साहित्यिकता भी आ गयी है। यथा 'अन्योक्ति' का रम्य उदाहरण देखिए–

''गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारो केस।

चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।।

इस छन्द का श्रृंगार परक अर्थ भी किया जा सकता है। खुसरो प्रश्नोत्तर व उत्तरालंकार के कवि हैं।

यथा– ''रोटी जली क्यों?

घोड़ा अड़ा क्यों?

पान सड़ा क्यों? फेरा न गया।''[4]

कवि चंदबरदाई आदिकाल के पटल पर प्रमुख स्थान रखते हैं। ''ये हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका पृथ्वीराज रासो हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है।''[5] चन्दबरदाई अलंकारों के प्रयोग में सफल रहे हैं।

''उनके काव्य में अलंकारों का सन्निवेश भी सुन्दर रूप से हुआ है। अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, अतिशयोक्ति आदि अलंकार कौशल के साथ प्रस्तुत किये गए हैं। रासों में अलंकार अपने स्वाभाविक रूप में ही आए हैं और प्रबंध–सूत्र मेंबाधा नहीं पहुँचाते। उपमानों का प्रयोग यद्यपि परम्परायुक्त है तथापि उसमें मौलिकता भी है।''6

अनुप्रास की छटा देखिए–

''भँवर भवहि भुल्लहि सुभाव...

चाहत चष चक्रिता।''

उपर्युक्त पंक्ति में 'भ' व 'व' की आवृत्ति से अनुप्रास अपने चरम पर चला गया है।

अन्यत्र भी–

''अरु कवि चन्द, अनूप रूप सरसै वर के बहु।

और सेन सब, पंच सहस सेना तिय सष्षहु।।''

यहाँ अनुप्रास का रम्य प्रयोग देखा जा सकता है, उसी प्रकार उत्प्रेक्षा का मधुर प्रयोग भी उपलब्ध है।

यथा–

''उलटि प्रवाह मनौ सिंधु सरि राह रोकि अड्डौ रहिय।

तिहि धरी राज प्रथिराज सो चन्द वचन इहि विधि कहय।।

सारांश यह कि आदिकालीन कवियों के काव्य अलंकार तत्व से युक्त है। इन कवियों ने अलंकारों के मनोहर प्रयोग द्वारा अपने काव्य को चारुता प्रदान की है।

संदर्भ :

1. भारतीय आलोचना शास्त्र– डॉ0 राजवंश सहाय हीरा, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ0 563, संस्करण 2003 ई0
2. नाथ सम्प्रदाय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग, पृ0 95, संस्करण 2010 ई0
3. विद्यापति, डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, पटना, पृ0 244, संस्करण 2008 ई0
4. खुसरो की हिन्दी कविता, ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वाराणसी, पृ0 44, संस्करण सम्वत् 2065 विक्रम।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वाराणसी, पृ0 21, संस्करण 38वाँ, सम्वत् 2057, विक्रम संवत्।
6. पृथ्वीराज रासो (पद्मावती समय), चंदबरदाई, सम्पा0 डॉ0 विश्वनाथ गौड़, साहित्य निकेतन, कानपुर, पृ0 78, संस्करण 2004 ई0।

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

विश्वविख्यात नेतृत्वकर्ता मोदी की कहां, बदनामी तो हिदुस्तान की जहां, क्यों? भारतीय राष्ट्रवाद व विरोधी राजनीति

लेखक व कवि, प्रोफेसर व डॉ. रोहताश जमदग्नि
स्नातक (विज्ञ), प्रशिक्षित स्नातक, स्नातकोत्तर (हिन्दी, राज0 वि0, पत्रकारिता), दर्शननिष्णात, विद्यावाचस्पति।
भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, जीडीसीएम (पीजी) महाविद्यालय, बहल, भिवानी (हरियाणा)

भूमिका

दुनिया में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र स्विटजरलैण्ड में है। स्विटजरलैण्ड मात्र 85 लाख आबादी वाला देश है। अपनी सतर्कता हेतु 7 मार्च 2021 को स्विटजरलैण्ड ने सार्वजनिक स्थानों पर बुर्का व नकाब पहनने पर रोक लगा दी। क्यों? क्योंकि बुर्के में आतंकवाद है। श्रीलंका ने भी 13 मार्च 2021 को बुर्का प्रतिबन्ध कर दिया। ***"जापान विश्व का पहला देश बन गया है क्योंकि उसने बढ़ती आत्महत्याओं को रोकने के लिए एकाकीपन मंत्री पद का सृजन किया। पीएम योशिहिदे सुगा ने 19 फरवरी 2021 को इस पद का लक्ष्य बताया : 1. लोगों के आपसी सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने के लिए ऐसे आयोजकों को बढ़ावा देना ताकि एकाकीपन दूर हो।"(1)*** बुर्का दिन दोगुनी, रात चौगुनी रफ्तार पर अपने हाथ–पैर फैला रहा है। भारतीय लोग बुर्के दहशत में एकाकीपन से ग्रस्त होते जा रहे हैं। मोदी आतंकवाद को काबू करे तो इस्लाम फतवे पर फतवे जारी करने लग जाता है। भारतीयों के एकाकीपन के लिए मोदी कुछ करे तो साम्यवादी भारत वाले चीनी सेनाओं को भारतीय सीमाओं पर बुलाकर तांडव करवाने लगते हैं। लेफ्ट लिबरल, गिद्धों के गिरोह, लुटियंस बिरादरी या खान मार्किट गैंग जो चाहे कहिए ये लोग सत्ताओं द्वारा दी जाने वाली खाद–पानी–हवा से जिन्दा थे तो मोदी ने इनकी सप्लाई काटी तो ये सभी मोदी गर्दन दबोचने के इच्छुक हो चले। खासकर कांग्रेस, कम्युनिस्ट, क्योंकि यही दो आश्रयदाता चारों के अन्नदाता थे, ये दोनों ही भिखारी बन गए। अब ये छःअपने आकाओं से मदद पर मदद लेकर मोदी पर कालिश पोतने में जुटे हैं। मदद पाक दे या चीन। इनको मदद चाहिए। ***"लैंसेट जैसी पत्रिका में चीनियों से मोदी विरोध में लिखवाया जा रहा है।"(2)*** मोदी ने दो वैक्सीन बनाई। दुनिया तारीफ कर रही है क्योंकि 90 देशों सें ज्यादा को मोदी वैक्सीन दे चुका है। मोदी राष्ट्रविरोधियों के लिए यूं कांटा बनता जा रहा है। क्वाड के केन्द्र में मोदी का होना, मोदी का आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ना, भारत में स्वदेशी का बढ़ना विदेशियों के लिए खतरे की सूचना है। विदेशियों का व्यापार दफन हो रहा है। चीन तिलमिला उठा है। भारत एक बड़ा देश है जिसकी जनसंख 135 करोड़ है। भारत गांव में बसता है। भारत विकासशील देश है। अमेरिका 33 करोड़ जनसंख्या वाला पूर्ण शहरीकृत व विकसित है। भारत व अमेरिका की तुलना का कोई औचित्य नहीं फिर भी अमेरिका में कोरोना से 596000 मौत, भारत में 2,00000 हैं। अन्तरराष्ट्रीय औसत 395 और भारत में 133 का है। मोदी की बदनामी की सुनामी राष्ट्रविरोधियों का चक्रवात है। **उदाहरणः आस्ट्रेलियाई क्रिकेटर पैट कामिंस व ब्रेट ली ने पीएम केयर्स फंड में पैसा दिया तो राष्ट्रविरोधियों ने ट्वीट करके कहा"पैसा मत डालिए, भाजपा इससे तो चुनाव अभियान चलाती है"**

ये लोग भारत की बदनामी कर रहे हैं। मोदी कल हो न हो, भारत तो रहेगा और ये बदनामी भारत संग जरूर यात्रा करेगी।

भारत व हिन्दू अल्संख्यकों व आरक्षितों के निशाने पर, क्यों?

हिन्दुस्तान को बदनाम न करें। हिन्दू धर्म नहीं एक जीवन शैली है। समय बदल गया। आज कालाराम मन्दिर के पुजारी सुधीरदास ग्लानि से पीड़ित हैं कि उनके बाबा रामदास ने अम्बेडकर को मंदिर में नहीं आने दिया था। सुधीरदास आज के समाज के बदलाव का प्रतीक है। ***"हैदराबाद के रंगनाथ स्वामी मन्दिर के पुजारी एक दलित भक्त को वेदमंत्रों के बीच अपने कन्धों पर बैठाकर गर्भ गृह में ले जाते हैं। इसी तरह की घटना पटना के हनुमान जी मंदिर में दलित पुजारी की हैं।"(3)*** गांधी ने मुस्लिम पृथक निर्वाचन मण्डल की तर्ज पर अम्बेडकर की दलित पृथक निर्वाचन की मांग के बदले आरक्षण के प्रावधान को माना ही नही, बल्कि अम्बेडकर को संविधान सभा की प्रारूप समिति का अध्यक्ष भी बनवाया। अम्बेडकर की जिद्द के कारण आरक्षण दस साल के लिए लागू हुआ। राजनीतिज्ञों ने आरक्षण को तलवार बना लिया और आरक्षितों ने कुचलने का रोलर। बदनाम भारतीयता व हिन्दुत्वा हो रहा है। आरक्षण आरक्षित छोड़े, जो 72 वर्षों से नहीं 92 वर्षों से आरक्षण भोगी है। मन्दिर व्यवस्था बदल रही है। आरक्षण व्यवस्था जम रही है। दोष किसका? आरक्षितों का या अआरक्षितों का? पीड़ित सामान्य या ओबीसी या एससी, एसटी? गैर कौशल आरक्षित है या अआरक्षित। 40 प्रतिशत वाला सही रोजगारी, 80 प्रतिशत वाला गलत बेरोजगारी? पुण्य व पाप कौन कर रहा है। संविधान या अनुच्छेद या फिर आरक्षित, पापी कौन? जो भी पापी या गलत है, बदल डालो, मिटा डालो या फिर जला डालो। हिन्दू को बदनाम आरक्षित हिन्दू जातियां न करें जिन्हें आरक्षण नहीं मिला, उनको आरक्षण दो, जो आरक्षण ले चुके हैं, वो आरक्षण छोड़े। चर्मकार, वाल्मीकि व धानकों जैसी जातियों का आरक्षण न खाएं। **मालदीव के संविधानानुसार केवल मुस्लिम ही देश का नागरिक बन सकता है।** फिर क्यों भारत मालदीव की पंथनिरपेक्षता से नीचे है। **अर्जेटीना अर्धलोकतन्त्र है, ईसाई सिद्धांतों को आधार मानने वाला है, पापुआ न्यू–गिनी का अनुयायी है, रोमन कैथोलिक धर्म को संवैधानिक रूप से सहयोग देने वाला है** फिर भी धर्मनिरपेक्षता में भारत से ऊपर है अर्जेटीना। **नार्वे के संविधानानुसार नार्वे के राजा को धार्मिकता को सदैव वरीयता देनी होगी** जो लोकतन्त्र के आधार पर विश्व में तीसरे पायदान पर है। **स्वीडन का संविधान स्वीडन के राजा को सदैव ईसाई मत को प्रोत्साहन देने की वकालत करता है** जो लोकतन्त्र के आधार पर विश्व में दूसरे स्थान पर है। **डेनमार्क का संविधान चर्च को हर संभव मदद करेगा** ये डेनमार्क लोकतन्त्र के आधार पर विश्व में पहले स्थान पर है। भारत तानाशाह बन चुका है। भारत में स्वतन्त्रता गुम हो गई है। **स्वीडन की संस्था वी–डेम के उपरोक्त निष्कर्ष है। गोथेनबर्ग विश्वविद्यालय से सम्बद्ध यह संस्था हर साल एक लोकतान्त्रिक रिपोर्ट जारी करती है। फ्रीडम हाउस नामक एक अमेरिकी संस्था की रिपोर्ट फ्रीडम इन द वर्ल्ड भी उसके सुर से सुर मिलाती है।** भारतीय मोदी तानाशाह ऐसे हैं 1. भारत में 44 दल हैं। 2. दिल्ली में 70 में से 67 सीटे आप को हैं। 3. तृणमूल कांग्रेस, द्रमुक, तेलंगाना राष्ट्र समिति, बीजू जनता दल और वाईएसआर कांग्रेस ने 2019 में बंगाल, तमिलनाडु, तेलंगाना, उड़ीसा व आन्ध प्रदेश में लोकसभा चुनाव में बीजेपी से ज्यादा सीटे जीतीं। भारतीय लोगों की स्वतन्त्रता गुम हो गई ऐसे : 1. शाहीन बाग 2. किसान आंदोलन(शाहीन बाग में प्रजनन उत्पत्ति, किसान आंदोलन में लालकिले निशानशाही)। मुसलमान भारतीयता विरोधी होकर बदनाम करता है। आरक्षित हिन्दू विरोधी होकर बदनाम करता है, क्यों?

पुलिस, न्यायालय मकड़जाल में क्यों?

आपा–दापी बदनामी का टोकरा है। त्रिशंकु सरकारें अन्ततः लोकतन्त्र का कुठाराघात करती ही है। राजनीति की गिरफ्त में पुलिस धंसी पड़ी है। प्रशासन की रीढ़ पुलिस ही है। जनता पुलिस की क्रिया–प्रक्रिया को जल्दी समझती है। बम्बई में पुलिस आयुक्त परमवीर सिंह की नियुक्ति की आलोचना जूलियो रिबेटो जैसे ख्याति प्राप्त पुलिस अधिकारी ने भी की। पिछले दिनों पद से हटाए जाने के बाद परमबीर सिंह ने शिव सेना के सीएम उद्धव ठाकरे को पत्र लिखकर बताया कि राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) के गृह मंत्री अनिल देशमुख ने निलम्बित सहायक पुलिस इंस्पेक्टर सचिन वाझे को प्रतिमाह सौ करोड़ रुपये की उगाही का आदेश दिया। बम्बई उच्च न्यायालय ने सौ करोड़ वसूली मामले की सीबीआई जांच के आदेश नहीं दिए होते तो शायद देशमुख अभी भी अपने पद पर बने रहते। आरोप लगे गृह मंत्री अनिल देशमुख एनसीपी पर, पार्टी सर्वेसर्वा शरदपवार ने बचाव किया क्योंकि उद्धव ठाकरे शिव सेना के प्रमुख उनके बिना सरकार नहीं चला सकते। इस प्रकार की सौदेबाजी से लोकतन्त्र दूषित व कलंकित होता है और प्रशासन बदनाम होता है। सुशांत राजपूत मामले में अनिल देशमुख द्वारा सीएम, डीजीपी व सीपी को कुछ न समझा जाना, भारत के लोकतन्त्र को बदनाम करता है, प्रशासन की खिल्लियां उड़ाता है। स्वतन्त्रता का गला घोंटता है। कानपुर का बिकरू कांड (मैं कानपुर वाला विकास दुबे हूं) कई पुलिस अधिकारियों के गले का फांस बना है। पहले पालो, फिर गोली डालो। इस संस्कृति को मोदी ताले बंद करना चाहता है। संवैधानिक प्राविधान की बात करें तो अनुच्छेद 124 एवं 227 के अनुसार राष्ट्रपति आवश्यकतानुसार भारत के न्यायधीश से परामर्श के उपरान्त उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति कर सकता है। न्यायपालिका के अनुच्छेद 124 व 217 का निर्वहन करते हुए कोलेजियम से किए जाने वाला परामर्श एवं उसकी अनुशंसा को लागू करना, परामर्श व अनुशंसा को बाध्यकारी बनाना जबकि इन दोनों अनुच्छेदों के मूल पाठ से मेलमिलाप नहीं है। पूरी दुनिया से अलग भारतीय न्यायप्रणाली की अनदेखी व्यवस्था है कि यहां न्यायधीश ही न्यायधीश नियुक्त करते हैं। उच्चतर न्यायपालिका में नियुक्तियों के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार एवं कोलेजियम के बीच गहरे मतभेद काफी दिनों से चर्चित हो रहे हैं। इस कारण कोलेजियम से नवसेवानिवृत्त शरद अरविन्द बोबड़े के साथ अन्य चार जजों में सहमति नहीं बन पाई। बदनाम भारतीय न्यायपालिका होती है। न्यायिक प्रणाली में सुधार का इंतजार कब तक करें? सरकार अपनी चलाना चाहती है। कोलेजियम अपनों को आशीर्वाद देती है। सीट खाली पड़ी रहती है। फरियादी न्याय की आश में सूख जाते हैं। दोषी सात–पांच के खेल में छूट जाते हैं। आम जनता न्यायिक व्यवस्था से अपना विश्वास खोती जा रही है। भारतीय लोकतन्त्र का तीसरा स्तम्भ जंगित हो रहा है। भारत बदनाम हो रहा है। बदनामी भारतीयता का तिलक क्यों बन रही है।

जोगेन्द्र नाथ मण्डल की दुर्गति नहीं समझते, क्यों?

गांधी और अम्बेडकर ने हाथ से मैला ढोने की प्रथा का विरोध किया था। यह संविधान के अनुच्छेद 15, 21, 38 और 42 के प्राविधानों का उल्लंघन है। सरकार ने संसद में दो बार इस पर कानून बनाए हैं। पहला 1993 में कानून बना। दूसरा 2013 में कानून बना। समस्या वहीं की वहीं मुंह बांए खड़ी रही। हम गांधीजी की 150वीं जयंती मना रहे हैं। गांधी ने साबरमती आश्रम में अनिवार्य कर रखा था कि सभी अपना शौचालय स्वयं साफ करेंगे। प्रधानमंत्री मोदी ने सफाईकर्मियों के पैरों को धोया। कलम से मुक्ति

की प्रतीक्षा का समय खत्म हो रहा है। हमे अपनी स्वयं की सफाई करनी होगी। भारत को बदनाम होने से बचाना है। 2011 के अनुसार भारत में शुष्क शौचालय 26 लाख, गंदगी खुले में प्रवाहित करने वाले शौचालय 14 लाख, हाथ से सफाई होने वाले शौचालय 3 लाख हैं। **सामाजिक न्याय एवं आधिकारिकता मंत्रालय के अधीन काम करने वाली संस्था नेशनल सफाई कर्मचारी फाइनेंस एवं डेवलमेंट कारपोरेशन ने 18 राज्यों के 170 जिलों में 2019 में एक सर्वे करके बताया कि 87913 लोगों ने खुद को मैला ढोने वाला बताते हुए रजिस्ट्रेशन कराया जिसमें सिर्फ 42303 लोगों को ही राज्य सरकारों ने हाथ से मैला ढोने वालों के रूप में स्वीकार किया है।** भारत को क्यों बदनाम किया जा रहा है। अमृत महोत्सव का उत्सव तभी कारगर होगा जब इस वर्ष मानवता के नाम पर लगे इस कलंक को मिटाने का वायदा करे। पहल मोदी ने चरण स्वच्छता से कर दी है। टीआरसी (सत्य, समझौता/सुलह आयोग) हिन्दू भी हिन्दुस्तान में चाहता है क्योंकि भारत मजहबी साम्प्रदायिकता से तनाव में है। अमेरिका भी टीआरसी से श्वेत अश्वेत की जड़ों का उन्मूलन करना चाहता है। टीआरसी अफ्रीकी नेल्सन मंडेला द्वारा गठित आयोग था। अफ्रीका में गोरे ने अत्याचार किए। काले मंडेला सत्ता में आए। नरसंहार की उम्मीद अफ्रीकन लगा रहे थे। मंडेला ने टूथ एण्ड रिकांसीलिएशन कमीशन (टीआरसी) बनाया जिसका उद्देश्य था : 1. पीड़ितों को सुनो 2. सभी पक्षों को सुनो 3. परस्पर आत्मीयता का संवर्द्धन करो, 4. फिल्म, काव्य, उपन्यास कुछ भी प्रतिबन्धित नहीं करो 5. श्वेत सरकार के अत्याचार का सत्य उद्घाटित करो। विश्व ने टीआरसी की प्रशंसा की। मोदी गर कहे कि 711 में मो. बिन कासिम ने, 1001 में गजनी ने 17 आक्रमण किए तो सिमी आतंकवादी संगठन गजनी को अपना नायक बताने लगते हैं। इतना ही नहीं ***"अल्लाह से गुजारिश की 'या इलाही भेज दे महमूद कोई।"(4)*** 1173 में गोरी ने, 1221 में चंगेज खां ने, 1398 में तैमूर ने, 1526 में बाबर ने तथा 1738 में नादिरशाह ने और 1761 में अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया। अम्बेडकर ने मो. बिन कासिम द्वारा हज्जाज को लिखे खत का उल्लेख किया है कि **मूर्ति पूजकों का इस्लामी धर्मांकरण करा दिया गया है। मूर्तियों, मंदिरों की जगह मस्जिदें बना दी गई हैं।** लंदन विश्वविद्यालय के रीडर एएल बाशम 'दि वंडर दैट वाज इंडिया' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने बताया–'मुसलमानों के भारत आने से पूर्व भारतीय उपमहाद्वीप की संस्कृति का सर्वेक्षण।' भारत हर्षोल्लासपूर्ण देश था। यहां के निवासियों ने शनै–शनै विकसित सामाजिक प्रणाली में पारस्परिक सम्बन्धों के सहारे दयालुता व सौजन्य के उस स्तर को प्राप्त किया, जो किसी भी जाति (राष्ट्रीयता) के स्तर से अपेक्षाकृत ऊंचा था। इतिहास आधारित धार्मिकता श्रेष्ठता के कारण भारत को आतंकवादी स्थली नहीं बनने देना चाहिए। जोगेन्द्रनाथ मण्डल भी जिन्ना की गाड़ी में पाकिस्तान गया था। मण्डल की दुर्गति समझने लायक व आज की माया व चन्द्रशेखर को नसीहत है। औवेसी को जिन्ना न बनाए। गांधी व मोदी की तपस्या भंग न करें। गांधी ने दलित पृथक निर्वाचक की जगह आरक्षण स्वीकारा वहीं मोदी ने आडवाणी व जोशी की जगह रामनाथ कोविंद स्वीकारा। भारत बदनाम हो रहा है। मोदी तो आज नहीं तो कल पद–पृथ्वी–पार्थिव शरीर छोडेगा ही।

निष्कर्ष

भारत 1984/2, 1989/85, 1991/120, 1996/161, 1998/182, 1999/182, 2004/138, 2009/116, 2014/282, 2019/303 मोदी के कारण आई है। वरना तो परिवारवादियों के कारण डूब रही थी। **1. बी.एस. येदुरप्पा का वी.बाई. रघुवेन्द्रा, 2. राजनाथ का पंकज, 3. वसुन्धरा का दुष्यंत, 4. यशवंत सिन्हा का जयंत सिन्हा, 5. विजयराजे की वसुन्धरा, 6. रमन का अभिषेक, 7. प्रमोद महाजन की**

पूनम महाजन, 8. मेनका का वरुण, 9. वी.पी. गोयल का पीयूष गोयल, 10. पी.के. धूमल का अनुराग ठाकुर, 11. जी. फडनवीस का डी. फडनवीस, 12.गोपीनाथ मुण्डे का पी मुण्डे, 13. अवैधनाथ का चेला योगी आदित्यनाथ, 14. सी.एल. गोयल का विजय गोयल, 15. वी.के. मल्होत्रा का ए.के. मल्होत्रा, 16. ए. वी. वाजपेयी का ए. मिश्रा 17. एस. पटवा का एस. पटवा, 18. के विजयवर्गीय का एस. विजयवर्गीय जैसे वंशवादियों के खेल का मोदी एम्पायर है। 1. मोदी ने 230 सालों से उलझे राम मंदिर का फैंसला करवाया। 2. मोदी ने ट्रिपल तलाक जो 70 वर्षों से चले आ रहे को समाप्त करवाया 3. मोदी ने 64 वर्षों से लंबित सी.ए.ए. बनवाया 4. मोदी ने 46 वर्षों से त्रिपुरा असेम्बली में राष्ट्रगान बजवाया। 5. मोदी ने 58 वर्षों से नागालैण्ड असेम्बली में राष्ट्रगान बजवाया। मोदी है तो मुमकिन है। मोदी बदनामी से इतना ऊपर जा चुके हैं कि सीएए व किसान आंदोलन उनको बदनाम नहीं कर रहे बल्कि भारत को बदनाम कर रहे हैं। कांग्रेस व कम्युनिस्ट सफाया हो गए कुछ महाठग महागठबन्धन से जिन्दा रहने का प्रयास कर रहे हैं। मोदी ने मील के पत्थर जैसे स्वच्छ भारत, आयुष्मान भारत, जनधन योजना, बीमा योजना, मुद्रा योजना, उज्जवला योजना, सौभाग्य योजना के अलावा भी नोटबंदी, जी.एस.टी. बेनामी सम्पत्ति एक्ट के साथ–साथ स्वर्ण आरक्षण, सर्जिकल स्ट्राइक व एयर स्ट्राइक प्रथम पंचवर्षीय योजना 2014–2019 कालखण्ड में ठोक डाले। 2019–2024 के कालखण्ड में अनुच्छेद 370 व 35 क, नागरिकता संशोधन विधेयक संग एन.आर.सी., पी.ओ.के., यूनिफार्म सिविल कोड तथा जनसंख्या विधेयक होने बाकी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. मई 2021, महासागर।
2. 13 मई 2021, दैनिक जागरण।
3. 14 अप्रैल 2021, दैनिक जागरण।
4. 12 अप्रैल 2021, दैनिक जागरण।

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

साहित्य में नारी आंदोलनों की भूमिका

डॉ अशोक कुमार
सहायक प्रोफेसर
राजकीय कन्या महाविद्यालय सेक्टर 14 ग्रुरुग्राम हरियाणा

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में नारी मुक्ति आंदोलन खुद को एक नये मोड़ पर खड़ा महसूस कर रहा था। बाजार वाद और खुली अर्थव्यवस्था ने स्त्री-पुरुष संबंधों के समीकरण को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। इसके ठोस प्रमाण अब खुलकर सामने आने लगे हैं। स्त्रियां समाज में अपनी नियति, अधिकारों,और समस्याओं को लेकर अधिक मुखरित हुई हैं। पिछली सदी के नोवें दशक में नारी मुक्ति आंदोलन को कुछ हद तक अवरोध का सामना करना पड़ा था क्योंकि महिलाएं स्वयं को 'नारीवादी' या नारी मुक्ति का पक्षधर कहलाने में सकुचाने लगी थी।

लेकिन इक्कसवीं सदी में यह तस्वीर कुछ बदली है। विश्व प्रसिद्ध नारीवादी बुद्धजीवी और लेखिका 'नाओमी वुल्फ' ने अपनी पुस्तक 'फायर विद फायर' में इसी बदलाव का खुलासा किया है। इनके अनुसार केवल सामाजिक तौर पर ही नहीं बल्कि राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भी स्त्रियों के महत्व को मान्यता मिल रही है। आंकड़ों से पता चला कि अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन राष्ट्रपति इसलिए बने क्योंकि उन्हें महिलाओं का समर्थन हासिल था और उन्होंने अपने कार्यकाल में कई नारीवादी लगने वाले कदम भी उठाए। आस्ट्रेलिया में 'पाल किटिंग' इसलिए चुनाव जीते क्योंकि उन्होंने महिलाओं की समस्याओं पर सलाह देने के लिए एक विशेष सलाहकार नियुक्त किया था। हमारे अपने देश में भी महिलाएं न केवल अपने काम में दक्ष हो रही हैं बल्कि चौखट को लांघ कर सत्ता एवं अधिकार प्राप्त करने में अग्रसर हैं तथा प्रत्येक चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।

इतिहास इस बात का गवाह है कि विश्व के विभिन्न देशों में जब भी स्त्रियों को अवसर मिला, उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्तर पर ही नहीं बल्कि युद्ध के क्षेत्र में भी अपनी योग्यता सिद्ध की है। ऐसा माना जाता है कि पुरुष बौद्धिक रूप से महिलाओं से श्रेष्ठ है, क्योंकि उनका दिमाग महिलाओं के दिमाग से बड़ा होता है। लेकिन यह बात तथ्यों पर बिल्कुल भी आधारित नहीं है क्योंकि किसी भी अंग की कार्यकुशलता उसके आकार पर नहीं बल्कि उसकी क्रियाशीलता पर निर्भर

करती है। असल में तथ्य तो यह है कि पुरुष श्रेष्ठता का यह विचार विज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में निरंतर हो रही नयी- नयी खोजों की मानी जाए तो महिलाओं पर पुरुषों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक या नैतिक श्रेष्ठता का ढोल पीटने वाला व्यक्ति विक्षिप्त ही समझा जाएगा। विज्ञान के शोधों एवं खोजों से लगातार यह साबित हो रहा है कि महिलाएं पुरुषों से किसी भी प्रकार से कम नहीं हैं।आज उन सभी क्षेत्रों में महिलाएं सक्रिय हैं जिनमें उनके प्रवेश की कल्पना पुरुषों ने नहीं की थी। प्रशासन,खेल जगत,अध्यापन, अन्तरिक्ष, पर्वतारोहण, सूचना-प्रौद्योगिकी, बैंकिंग, उद्योग, राजनीति , चिकित्सा, सेना, पुलिस आदि कोई भी ऐसा क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें महिलाओं का प्रवेश नहीं हुआ है। सबसे मुख्य बात यह है कि उपर्युक्त भूमिकाओं के बाद भी महिलाओं ने संतानोत्पत्ति और बच्चों के लालन-पालन के अपने प्राथमिक उत्तरदायित्व का परित्याग नहीं किया है। आश्चर्य की बात यह है कि महिलाएं अपनी लड़ाई अकेले ही लड़ रही हैं।

यह कड़वी सच्चाई है कि हमारे मानव मूल्य पितृसत्तात्मक मूल्य ही हैं। क्योंकि उनका चरित्र स्त्री विरोधी है। यहां महिलाओं के हितों की सुरक्षा का कोई प्रावधान नहीं है, इनमें केवल उनका दमन और उत्पीड़न है। स्त्री की इस स्थिति को बदलने का श्रेय सर्वप्रथम फ्रांस की महान लेखिका 'सिमोन द बुआर' को जाता है, जिन्होंने यह कहकर कि "औरत पैदा नहीं होती, बना दी जाती है।"1 इन्होंने पितृसत्तात्मक समाज की कड़ी आलोचना की तथा नारी मुक्ति के लिए नए द्वार खोले।सन 1921 से 1941 के मध्य का काल भारतीय नारी के लिए ऐतिहासिक काल माना जाता है, जिसमें वह युगों की घोर उदासीनता को त्यागकर एक प्रबुद्ध नारी के रूप में प्रकट हुई। राजनीतिक सक्रियता ने उसमें विश्वास जागृत किया और सती प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह आदि निषेधक कानूनों से उसकी सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हुई तथा उसका प्रभाव साहित्य पर परिलक्षित होने लगा। बंगमहिला ने साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करने की पहल की तो शिवरानी देवी,ऊषा देवी मिश्रा,होमवती देवी, सत्यवती मलिक,कमला चौधरी, सुमित्रा कुमारी सिन्हा,तेजरानी पाठक आदि अनेक नाम साहित्य पटल पर उभर कर आए। कमला चौधरी की कहानी 'त्याजा' की नायिका पति का विरोध करते हुए कहती है,"जरा ठहरो, मैं भी चलती हूं। कुत्तों की भांति केवल रोटी के लिए मैं अब इस घर में नहीं रहूंगी।"2

स्वातंत्र्योत्तर समाज के चहुंमुखी विकास और शिक्षा के प्रसार के कारण नारी अपने अस्तित्व के प्रति और भी संवेदनशील होती गई।अब वह किसी प्रकार की मानसिक यातना झेलने को तैयार नहीं थी।शान्तिमेहरोत्रा,रजनी परिकर,उषाप्रियंवदा, मन्नू भंडारी, पुष्पा महाजन,कंचनलता, सब्बरवाल आदि लेखिकाओं ने नारी जीवन की त्रासदी को रेखांकित ही नहीं किया बल्कि उसके समाधान भी प्रस्तुत किए हैं महिला कथाकारों का जो चिंतन है उसमें कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि वे किसी बात को

छिपाना चाहती हैं,वे जो कहना चाहती हैं उसे खुलकर बयान कर देती हैं,यानि आवरण के लिए कोई जगह नही है।आज रूढ़ियां, परमपराएं सब टूट रही हैं,वे अपनी बात बड़ी बेबाकी से कह देती हैं। उनके चिंतन का फलक इतना व्यापक है कि जीवन का कोई भी पक्ष उनसे शायद ही छूटा हो। विषय चाहे सामाजिक हो, राजनीतिक हो, आर्थिक हो या कोई अन्य, सभी को अपने साहित्य का विषय बनाया है। पुरुष वर्ग को वे मुंहतोड़ जवाब देती हैं तथा अपने विद्रोही कृत्यों का उत्तरदायित्व लेने के लिए हमेशा तत्पर रहती हैं। इन्होंने समय के बदलते संदर्भों की दृष्टि से नारी संवेदना को केन्द्र में रखा है। इन्होंने मुक्ति, अस्मिता, आइडेंटिटी की तलाश के साथ पारिवारिक विघटन जैसी समस्याओं तथा परिस्थितियों को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है। विद्रोह, त्याग, विश्वास, समर्पण और समझौता जैसी शाश्वत भावनाएं इनके साहित्य की विशेषताएं हैं। प्रत्येक स्थिति से जूझने की छमता भी इनमें दृष्टिगोचर होती है।

आधुनिक काल की महिला कथाकारों ने बड़ी सिद्दत से नारी के प्रत्येक रूप का चित्रण किया है। 'दीवार' , 'बच्चे और बरसात' , 'ईसा के घर इंसान', 'नारी की दृष्टि' तथा 'नारी की बात' आदि कहानियों में मन्नू भंडारी ने नारी के बदलते तेवरों को उद्घाटित किया है। स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना के लिए अग्रसर नारी अपने शोषण, उत्पीड़न और बाधाओं के प्रति विद्रोही हो उठी है। अस्तित्व स्थापना के लिए अवरोध स्वरुप , संस्कारों एवं परम्पराओं को तोड़ती हुई नारी को मन्नू भंडारी ने पूरी संवेदना के साथ स्थापित किया है। मृदुला गर्ग ने 'हरिबिंदी', 'कितनी कैद', तथा 'एक और विवाहित' आदि कहानियों में विवाहित नारी की कुंठाओ का जिक्र किया है। रजनी पनिकर की कहानियों के मुख्य विषय टूटते परिवार और पति-पत्नी के बीच मन मुटाव आदि रहे हैं।"महिला कहानीकारों की कहानियों में नारी जीवन की समस्याओं के साथ-साथ काम-कुंठाएं अधिक उभारी गई हैं। लेखिकाओं ने ने प्रेम विवाह तथा दाम्पत्य जीवन का भिन्न आयामों से निरूपण किया है।कहानी में जीवन निरुपण जिस व्यापकता, गम्भीरता और जिस सघनता से संभव है, साहित्य की अन्य विधाओं में वो कदाचित नहीं।"[3]

आधुनिक भावबोध की नारी में आत्मबोध के कारण छटपटाहट ज्यादा हो गई है और उसकी प्रतिक्रिया तीखी तथा तेंवर उग्र हो गए हैं।जया जादवानी की कहानी 'पलाश के फूल' की नायिका अपूर्वा भी नारी मुक्ति की कामना करती है,"हां, मुझे इसलिए मुक्ति चाहिए…….इन सबसे…..और तुमसे भी।तुम मेरे सपनों के पुरुष नहीं हो। पुरुष वह होता है,जो कुछ दे, कुछ ले। तुम न दे सकते हो न ले सकते हो।"4 कहीं -कहीं महिला साहित्यकारों में क्रांति की चिंगारी भी देखने को मिलती है। कहीं पर वह यह सोचने को भी मजबूर हो जाती है कि देह उसकी है तो चाहे उसे जैसा भी उपयोग क्यों न करें। इनका मानना है कि ,"यह समाज तब तक बलवान बना रहेगा जब तक नारी उसके इशारे पर चलती रहेगी। अगर वह मर्दों को पैदा करना बंद कर दे तो इस समाज का क्या होगा?"5 कात्यायनी का कहना है कि,"औरत का यौन शोषण मात्र इसी आधार पर नहीं होता कि वह औरत है।यह इसलिए संभव हो सका है कि उसकी सामाजिक हैसियत घर- बाहर सर्वत्र दूसरे दर्जे के नागरिक की है और इस सामाजिक

हैसियत का ताल्लुक आर्थिक शोषण से है।...समाज में औरत होने के नाते दूसरे दर्जे की जो नागरिकता है,वह पूरे नारी समुदाय की एक आम लड़ाई की बुनियाद है।"6 नारी आंदोलनों के फलस्वरूप अधिकांश साहित्यकारों ने कुछ महत्वपूर्ण नारी पात्रों का सृजन किया है जो नारी शोषण, अत्याचार, नारी मुक्ति,अस्तित्वमूलक समस्याओं आदि महत्वपूर्ण बातों को व्यक्त करने में सक्षम थी।

कृष्णा सोबती के नारी पात्र बड़े सशक्त दिखाई पड़ते हैं। जो समयानुकूल अपने आपको परिवर्तित करते चलते हैं। 'डार से बिछुड़ी', मित्रों मरजानी','यारो के यार','सूरजमुखी अंधेरे के' तथा 'जिन्दगीनामा' इसी तरह के उपन्यास हैं।आज साहित्य में स्त्री अधिकारों से संबंधित रचनाओं की कमी नहीं है। 'खुली खिड़कियां'(मैत्रीय पुष्पा) ,'आम औरत जिंदा सवाल'(सुधा अरोड़ा), 'मात्र देह नहीं है औरत'(मृदुला सिन्हा) 'दुर्ग द्वार पर दस्तक'(कात्यायनी), 'जीना है तो लड़ना होगा'(वृंदा करात) आदि रचनाएं नारी सशक्तिकरण के संदर्भ में महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है।

आज सरकार द्वारा भी नारी सशक्तिकरण पर बल दिया जा रहा है इसके अलावा महिला कथाकारों द्वारा नारी जीवन की हर सच्चाई को उभारने की कोशिश की जा रही है, इससे नारी अपने अधिकारों के प्रति सजगतापूर्वक अपनी पहचान बनाने में कामयाब हो रही है।इन लेखिकाओं का उद्देश्य केवल हंगामा खड़ा करना नहीं है, स्त्री को समाज में साहित्य में उचित जगह प्रदान करना तथा पुरुष के समकक्ष अधिकार दिलाना है। नारी की दुर्दशा, पीड़ा, यातना,शोषण आदि पर अब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है।अब तो नारी का रोना और रोने से उत्पन्न आंसुओं को ताकत बनाकर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करना है ही साहित्य का प्रमुख लक्ष्य है। साहित्य में नारी विमर्श कुछ हद तक इस बात को समेटने की कोशिश है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-:

1. सिमोन द बुआर, स्त्री उपेक्षित,अनुवादक,प्रभा खेतान,पृ.65
2. कमला चौधरी,त्याजा,स्वराज प्रकाशन, दिल्ली,पृ.224
3. डा.ब्रहमस्वरुप शर्मा, हिंदी कहानी की विशाल यात्रा, पृ.1161
4. जया जादवानी,अंदर के पानियों में कोई सपना कांपता है, पृ.18
5. प्रभा खेतान,बुतखाना, पृ.27
6. कात्यायनी, दुर्ग द्वारा पर दस्तक, पृ.37

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

अटल बिहारी वाजपेयी के शासन–काल में भारतीय विदेश नीति

डॉ0 राजेश कुमार श्रीवास्तव
प्रवक्ता राजनीतिशास्त्र,
आदर्श देवकली बाबा स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उदैना अहरौला आजमगढ़

फरवरी–मार्च सन् 1998 ई0 के मध्यावधि निर्वाचनों में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हो सका। भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभरी परन्तु उसे 543 सीटों में से केवल 182 सीटें प्राप्त हुई, फिर भी 15 छोटे दलों के सहयोग से भारतीय जनता पार्टी को 277 सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो गया तथा 19 मार्च सन् 1998 ई0 को वाजपेयी जी के प्रधानमंत्रित्व में एक 43 सदस्यीय मंत्रीमण्डल ने सत्ता ग्रहण की। सत्ता ग्रहण के समय गठबंधन के सभी घटक एक राष्ट्रीय एजेण्डे पर सहमत हो गये थे, जिसमें नाभिकीय विकल्प का प्रयोग करने की बात कही गयी थी। अप्रैल सन् 1999 ई0 में वाजपेयी सरकार लोकसभा में एक मत से पराजित हो गयी। वाजपेयी सरकार कार्यकारी सरकार के रूप में कार्य करती रही। सितम्बर–अक्टूबर के चुनावों में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार बनी और अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने। वे लगभग चार दशकों तक लोक सभा के सदस्य रहे। वे मोरारजी देसाई सरकार (1977–1979) में एक सफल विदेश मंत्री के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे।

16 मई से 1 जून सन् 1996 ई0 के अपने प्रधानमंत्रित्व की अल्प अवधि में वाजपेयी जी ने विदेश नीति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर बल दिया था–

1. सभी देशों पर विशेष रूप से पड़ोसी देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध।
2. पाकिस्तान द्वारा अधिकृत कश्मीर का क्षेत्र भारत काहै।
3. एक निश्चित समय–सारणी के आधार पर भूमण्डलीय नाभिकीयनियत्रंण।
4. यदि नाभिकीय शस्त्र–युक्त देश नाभिकीय शस्त्रों का संग्रह करनानहीं रोकते हैं तब हम देश की सुरक्षा के लिए उचित कदम उठायेगे।

18 मार्च सन् 1998 ई0 को भारतीय जनता पार्टी सहित राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में सम्मिलित सभी दलों ने एक राष्ट्रीय कार्यक्रम की घोषणा की, इसमें विदेश नीति के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण बातें कही गयी।

1. परमाणु नाभिकीय नीति का पुनर्मूल्यांकन।

2. भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक स्थान भूमिका और स्थिति की प्राप्ति का प्रयत्न किया जाएगा।
3. सार्क और एशिया न की तरह के प्रादेशिक तथा शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया जाएगा।
4. व्यापारिक वरीयताओं की एक विस्तारित व्यवस्था के द्वारा व्यापार और आर्थिक सहयोग की एक व्यवस्था की रचना का प्रयत्न कियाजाएगा।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी की विदेश नीति के उल्लेखनीय पहलू निम्नलिखित है–

1. भूमिगत नाभिकीय परीक्षणः–11 मई और 13 मई 1998 ई0 को वाजपेयी सरकार ने पोखरण में पांच परमाणु परीक्षणों को अंजामदेकरभारतीय विदेश नीति में आमूल–चूल परिवर्तन का संकेत दिया। इन परीक्षणों से किसी विधिक दायित्व का उल्लंघन नहीं हुआ तथा ये परीक्षण गम्भीर सुरक्षा आवश्यकताओं तथा एक तकनीकी अनिवार्यता के कारण किये गये। भारत ने अपने आप को परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र घोषित कर दिया तथा अपनी परमाणु नीति के प्रमुख तत्वों की घोषणा उत्तरवर्ती महीनों में की गयी। इन परीक्षणों से भारत ने कम्प्यूटर डिजाइनों के माध्यम से ही नए आणविक अस्त्रों का डिजाइन तैयार करने की क्षमता का विकास कर दिया है। पांचों परमाणु परीक्षणों में प्रयुक्त की गयी प्रक्रियात्मक सामग्री भी पूरी तरह स्वदेशी थी। प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम के अनुसार भारत के ''अग्नि और पृथ्वी'' जैसे प्रक्षेपास्त्र आणविक अस्त्रों को आसानी से अपने साथ ले जा सकते हैं।

2. निरस्त्रीकरणः–भारत ने 12 अक्टूबर से 13 नवम्बर सन् 1998 ई0 तक न्यूयार्क में आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा के 53वें सत्र में निरस्त्रीकरण और सम्बद्ध मामलों पर प्रथम समिति में भाग लिया तथा नाभिकीय निरस्त्रीकरण पर सक्रिय रूप से अपनी राष्ट्रीय नीति का खुलासा किया। ''नाभिकीय हथियारों के प्रयोग पर रोक से सम्बन्धित अभिसमय''पर भारत का पारस्परिक प्रस्तावित महासभा द्वारा 39 के विरूद्ध 111 मतों से स्वीकार कर लिया गया।

3. शान्ति स्थापनाः–नवम्बर सन् 1998 ई0 में दक्षिणी लेबनान में भारतीय इन्फेन्ट्री बटालियन के शामिल हो जाने से भारत संयुक्त राष्ट्र शान्ति स्थापना में दूसरा सबसे बड़ा सैनिक सहायता देने वाला देश बन गया है। मार्च सन् 2000 ई0 में उपद्रव ग्रस्त पश्चिमी अफ्रीकी राष्ट्रशान्ति सेना के कार्य में सहयोग के लिए भारतीय वायुसेना की एक टुकड़ी को ग्रुप कैप्टन बी0एस0 सिवाच के नेतृत्व में शामिल किया गया। सियरा लियोन में भारतीय सेना की भागीदारी के साथ ही ऐसे राष्ट्रशान्ति अभियानों की संख्या 29 हो गयी, जिनमें भारतीय सैनिकों की भागीदारी रही है।

4. गुट निरपेक्ष आन्दोलनः–गुटनिरपेक्ष देशों का 12वाँ शिखर सम्मेलन 02–03 सितम्बर 1998 ई0 को डरबन, दक्षिणी अफ्रीका में हुआ। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व प्रधानमंत्री वाजपेयी ने किया। डरबन घोषणा पत्र में शीतयुद्ध के बाद विश्व में गुट निरपेक्ष आन्दोलन की सतत् प्रासंगिकता और महत्व पर बल दिया और अधिक एकजुटता के तरीके से विकासशील देशों की चिन्ताओं पर ध्यान केन्द्रितकिया।

5. ***राष्ट्रमण्डलः***–12 से 15 नवम्बर सन् 1999 ई0 तक आयोजित राष्ट्रमण्डल के डरबन सम्मेलन में भारत ने जिस कूटनीतिक चातुर्य से पाकिस्तान को अलग–थलग कर दिया उसका श्रेय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को जाता है। पाकिस्तान में सैन्य शासन को अवैध बताते हुए राष्ट्रमण्डल से उसके निलम्बन के फैसले का अनुमोदन राष्ट्राध्यक्षों ने कर दिया। डरबन घोषणा में पाकिस्तान को चेतावनी दी गई कि यदि वहाँ लोकतंत्र की बहाली की प्रक्रिया तेज नहीं की गयी तो उसके विरूद्ध और भी कार्यवाही कीजाएगी।

6. सार्क:—भारत ने अगस्त, सन् 1998 ई0 में सार्क देशों के लिए मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लेने के साथ ही क्षेत्रभर में व्यापार उदारीकरण तेज करने के लिए महत्वपूर्ण पहल की। 20 से 31 जुलाई, सन् 1998 ई0 को कोलम्बो में 10वाँ सार्क शिखर सम्मेलन हुआ जिसमें भारतीय शिष्टमण्डल की अध्यक्षता प्रधानमंत्री वाजपेयी ने की। अपने बाजार में प्रवेश बढ़ाने के लिए प्रधानमंत्री ने घोषणा की, कि 01 अगस्त सन् 1998 ई0 से सार्क देशों के लिए मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लेगा। इसमें सार्क देशों के लिए 2000 से अधिक उत्पादों की मुफ्त सामान्य लाइसेन्स के अन्तर्गत रखना शामिल है और इसका व्यापक स्वागतहुआ।

7. बस की कूटनीति:—भारतीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने ''बस कूटनीति'' के माध्यम से 20 फरवरी सन् 1999 ई0 में सारी मान्यताएँ पीछे छोड़कर दोस्ती का पैगाम लेकर लाहौर गए। वाजपेयी जी की लाहौर बस यात्रा से मैत्री एवं सद्भाव का वातावरण बनने लगा। लाहौर यात्रा एक साहसिक कदम था, भारत ने विश्व को दिखा दिया कि वह शान्ति, सद्भाव एवं मित्रता के लिए पड़ोसी—राष्ट्र से मिलने स्वयं जा सकता है। 21 फरवरी सन् 1999 ई0 को पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज शरीफ के साथ लाहौर में एक संयुक्त घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किया गया जिसमें कहा गया कि दोनों देशो जम्मू—कश्मीर सहित सभी मसलों को हल करने के लिए अपनी कोशिशें तेज करेंगे तथा एक दूसरे के अंदरूनी मामलों में दखल नहीं देंगे।

8. आगरा शिखर वार्ता:—भारतीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के निमन्त्रण पर वार्ता के लिए जनरल परवेज मुशर्रफ 01 जुलाई सन् 2001 ई0 को सबेरे 08:20 बजे पाकिस्तान एयर लाइन्स के विशेष विमान से पालम हवाई अड्डा दिल्ली आए। 15 जुलाई सन् 2001 ई0को 10:35 बजे सुबह आगरा के जे0पी0 पैलेस होटल में दोनों देशों के नेताओं ने शिखर वार्ता प्रारम्भ की गई। बातचीत असफल रही और कुछ हासिल नहीं हुआ। कोई संयुक्त वक्तव्य तक जारी नहीं हुआ। माना यह जा रहा था कि पाकिस्तान केन्द्रीय मुद्दे के तौर पर कश्मीर को शामिल करने पर जोर दे रहा था, जिसे भारतने अस्वीकार कर दिया जबकि प्रस्तावित संयुक्त वक्तव्य में भारत का जोर ''सीमा पार के आतंकवाद'' को शामिल करना था जिसे पाकिस्तान ने स्वीकार नहीं किया।

प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने कहा कि—जम्मू और कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, इस पर कोई विवाद नहीं है। साथ ही उन्होंने भारतीय संविधान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को भी दोहराया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. दैनिक जागरण, 15 जुलाई सन् 2001
2. इण्डिया टुडे, 16 जुलाई सन् 2001
3. इण्डिया टुडे, 01 अगस्त सन् 2001
4. लाहौर घोषणा उद्धृत मैनस्ट्रीम, 27 फरवरी सन् 1999, पृष्ठ—5
5. स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति—वी0पी0 दत्त
6. अन्तर्राष्टीय राजनीति—डॉ0 बी0एल0 फाड़िया

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

इको-टूरिज्म : मानव के पर्यावरणीय दायित्व के संदर्भ में

डॉ .सीमा शुक्ला
इछौरा ,लालापुर
प्रयागराज212107-

भारत भौगोलिक सौन्दर्य की दृष्टि से विश्व का सर्वोत्तम देश है ,इस बात पर तमाम लोग अन्य देशों का उदाहरण देने के लिए हाथ खड़े कर सकते हैं। परन्तु जिन्हें इकोटूरिज्म और भौगोलिक सन्दृष्टि का ठीक परिचय है उन्हें इस बात को स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होगी। इसी देश के अनेक राज्यों ने अपने इकोटूरिज्म को इस तरह से विकसित कर लिया है कि उससे उन्हें एक बहुत बड़ा आर्थिक संसाधन प्राप्त हो सका है। यदि कुछ राज्यों के नाम उदाहरण के लिए लेना चाहें तो गुजरात ,राजस्थान और म0प्र 0को इस संदर्भ में लिया जा सकता है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश सरकार ने इको-टूरिज्म विकास नीति घोषित की है ,जिसमें स्थानीय समुदायों की भागीदारी पर बल दिया गया है और कर्नाटक ,सिक्किम एवं आन्ध्र प्रदेश के वन एवं पर्यटन विभागों ने ऐसे अधिकारी नियुक्त किए हैं जो इन गतिविधियों के बीच समन्वय स्थापित कर सकें। केरल द्वारा स्थापित तेन्माला इको-टूरिज्म प्रमोशन सोसायटी इको-टूरिज्म मॉडल तैयार करेगी। अन्य राज्यों में भी इसी तरह के प्रयोग हो रहे हैंऔर होने भी चाहिए। इस पूरी संरचना में प्रत्येक मनुष्य का एक नैतिक योगदान अपेक्षित है ,यहाँ नैतिक से तात्पर्य है कि वह अपने देश और उसकी पारिस्थितिकी के प्रति सँवेदनात्मक भाव रखे। इसकी आन्तरिक कड़ियाँ कौन-कौन सी हों इसी का अनुसन्धान प्रस्तुत शोध निबंध का लक्ष्य है।

पर्यटन आज दुनिया का सबसे बड़ा उद्योग है 34) खरब डॉलर वार्षिक (और इको-टूरिज्म इस उद्योग का सबसे तेजी से बढ़ता हिस्सा है। इंटरनेशनल इको-टूरिज्म सोसायटी ने 1991 में इसकी परिभाषा दी कि— ”इको-टूरिज्म प्राकृतिक क्षेत्रों की वह दायित्वपूर्ण यात्रा है जिससे पर्यावरण संरक्षण होता है और स्थानीय लोगों की खुशहाली बढ़ती है। “अगर भारतीय सन्दर्भ में देखा जाए तो भारतीय लोग तो सदियों से इस अवधारणा पर अमल करते रहे हैं और प्रकृति का संरक्षण सदियों से उनके जीवन का अभिन्न अंग रहा है। वास्तव में संरक्षण , स्थिरता और जैवविविधता इको-टूरिज्म के तीन परस्पर सम्बद्ध पहलू हैं। यदि हम पारिस्थितिकी संरक्षण की बात करें तो पारिस्थितिकी संरक्षण न केवल धारणीय विकास के लिए आवश्यक है अपितु यह मानव का दायित्व भी है जिसे संविधान के भाग)4-क (के मौलिक कर्त्तव्यों में भी उल्लिखित किया गया है। जैसा कि हम देखते हैं कि जैव विविधता सम्मेलन) सी.बी.डी (.के पक्षकारों ने भी इस बात को अंगीकार किया है कि बाजार आधारित

दृष्टिकोण देश की अर्थव्यवस्था के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण के लिए भी लाभकारी है क्योंकि बाजार आधारित दृष्टिकोण पारिस्थितिकी ,पर्यटन एवं मानवीय दायित्व के अन्तर्तसबन्धों की पड़ताल पर भी जोर देता है। सन् 2000 में जैव विविधता सम्मेलन के पाँचवे सम्मेलन के पक्षकारों द्वारा पर्यटन के नकारात्मक और सकारात्मक प्रभाव के बारे में विस्तृत चर्चा हुई। इको-टूरिज्म में मानवीय दायित्व के संबंध में मेरा स्पष्ट मत है कि आदिवासी लोग और स्थानीय समुदायों को इको पर्यटन से जोड़ दिया जाए तो एक बड़ा ही सकारात्मक बदलाव परिलक्षित होगा।

इको-टूरिज्म में इको का अर्थ इकोलॉजी) परिवेश (से है किन्तु यहाँ पर 'इको' शब्द को 'इकोनॉमिक')अर्थव्यवस्था (से भी जोड़ा जाए तो टूरिज्म शब्द की बाजारवादी सन्दर्भ में स्पष्ट व्याख्या होगी। भारत सरकार द्वारा प्रायोजित इको-टूरिज्म एक ऐसी योजना है जिसको अत्यधिक बढ़ावा दिया जा रहा है क्योंकि संरक्षण की भाषा दीर्घकालिक लाभ को बल देती है। प्रायः देखा गया है कि हम अक्सर यह सोचते हैं कि यह सब ऐसा काम है जो सरकार को करने चाहिए लेकिन अगर हम अपनी पारिस्थितिकी के लिए खतरा पैदा करने के लिए जिम्मेदार हैं तो सरकार द्वारा संरक्षण के सारे कार्य करने की आशा करना बेईमानी होगी। वास्तव में पारिस्थितिकी पर्यटन मानव का नैतिक दायित्व का अंग होना चाहिए। जैसा कि कहा भी जाता है कि किसी भी रोग के इलाज से बेहतर विकल्प उसकी रोकथाम करना होता है अतः मानवीय दायित्व के तहत हमें पर्यटन द्वारा पारिस्थितिकी को हानि पहुँचाने के बाद उसकी भरपाई करने की तुलना में पारिस्थितिकी का संरक्षण आर्थिक दृष्टि से अधिक व्यवहारिक है और जो इको-टूरिज्म द्वारा किया जा सकता है क्योंकि इको-टूरिज्म वो टूल है जो इकोलॉजी यानी परिवेश अर्थात् उस स्थल के प्राकृतिक परिदृश्य को किसी प्रकार की हानि पहुँचाए बिना स्थानीय लोगों की सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक भागीदारी को सुनिश्चित करता है। मेरे अनुसंधान द्वारा मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि निजी संस्थान और सरकार द्वारा इको-टूरिज्म को बढ़ावा देने के लिए अगर वाईल्ड लाईफ टूरिज्म , ट्री कॉटेज एवं जंगल लॉज ,टेंट टूरिज्म जैसी विधाओं विकसित करने का प्रयास करना चाहिए जोकि मेरे ,आपके और हम सबके पर्यावरणीय दायित्व के बिना संभव नहीं है। प्रस्तुत शोध कहता है कि भारत के इको-टूरिज्मके रोमांच से रोमांचित हो हम सब इसकी ओर स्वतः आकर्षित होंगे परन्तु आवश्यकता है कि इसे अत्यधिक प्रचारित और लोकलुभावन बनाया जाए ,जैसा कि हमने देखा भी कि संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) ने विश्व पर्यटन संगठन के सहयोग के साथ जब सन् 2002 को इको-टूरिज्म का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष (IYE) घोषित किया ,तब उसे उद्योगों और पर्यटन सहयोगियों का समर्थन भी मिला क्योंकि हम बिना पर्यावरणीय दायित्व के इको-टूरिज्म के लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। मैं यह एक उदाहरण से स्पष्ट करना चाहूँगी ,यह उदाहरण मुख्यतः समुदाय संरक्षित क्षेत्र का उदाहरण है "—भारत के उत्तराखण्ड राज्य के जरधर गाँव द्वारा 700-600 हेक्टेयर वनों का पुनरुत्थान और रक्षण ,ग्रामवासियों ने करीब सौ प्रकार के देशी फसलों का पुनः आविष्कार किया है और उन्हें सफलतापूर्वक जैविकी रूप से पैदा कर रहे हैं तथा घास-स्थल और जल प्रबंधन के पारम्परिक तरीके काप्रयोग कर रहे हैं। हाल के वर्षों में न केवल अपने गाँव के वनों का बल्कि आसपास के क्षेत्र जो खनन और जल-विद्युत परियोजना के कारण तहस-नहस हो रहे हैं ,उनका बचाव करने के लिए काफी संघर्ष किया है। गाँववासियों के इस कार्य से न केवल पारिस्थितिकी का संरक्षण हुआ अपितु उस क्षेत्र की इको-टूरिज्म की

संभावना को भी बल मिला। इसी प्रकार यदि मैं पारिस्थितिकी संरक्षण कर इको-टूरिज्म को बढ़ावा देने वाली सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं के उदाहरण प्रस्तुत करूँ तो इनमें कुछ प्रमुख संस्थान निम्न होंगे ,सरकारी संस्थाएं जैसे -पर्यावरण एवं वन मंत्रालय) MOEF ,(पर्यावरण सूचना प्रणाली) ENVIS ,(प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और जुओलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया) ZSI (तथा गैर सरकारी संगठन जैसे -वी.एन.एच.एस ,.डब्ल्यू डब्ल्यू एफ आई एवं अन्य संस्थाएँ शामिल हैं ,जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपने पर्यावरणीय नैतिक दायित्व को निभा रही है। माननीय न्यायालय ने इको-टूरिज्म को ध्यान में रखते हुए ही गिर वन के पास ताज होटल बंद करने का आदेश दिया साथ ही भारत में 01 अप्रैल 2014 से लागू कारपोरेट सोशल रेस्पोंसबिलिटी) CSR) में शामिल कई गतिविधियों में एक पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना भी है जिसे निःसन्देह इको-टूरिज्म से भी जोड़ा जा सकता है आखिर ये मानव के इको-टूरिज्म दायित्व का भी उदाहरण प्रस्तुत करता है। इको-टूरिज्म के अनेकों मानवीय लाभों को हम निम्न फ्लोचार्ट से समझ सकते हैं—

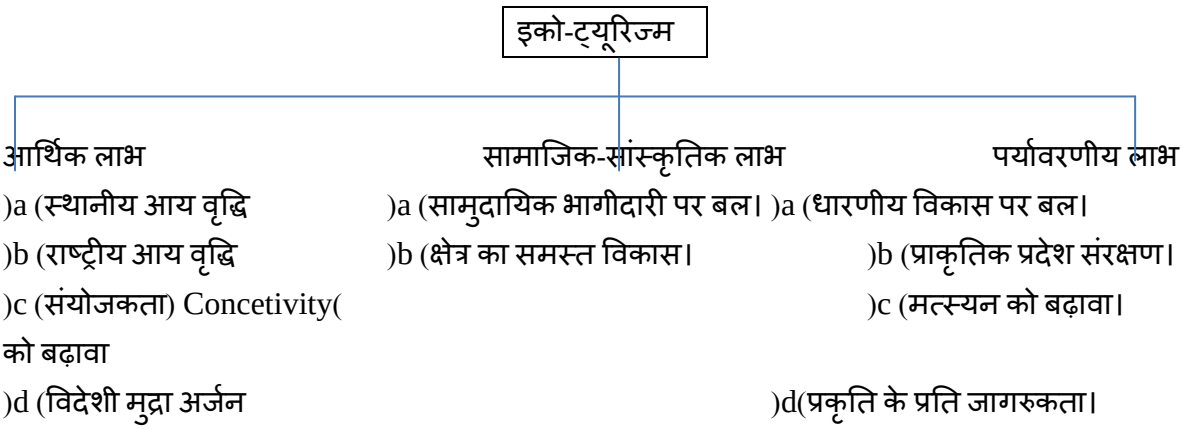

मनुष्य को अनेक प्रकार के सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक लाभ को पाने हेतु इको-टूरिज्म को अपने पर्यावरणीय दायित्व के माध्यम से समझना चाहिए। पारिस्थितिकी ,पर्यटन और मानव के मध्य विशिष्ट अर्न्तसंबंध है जिसे हम प्राचीनतम वेद ऋगवेद में भी देख सकते हैं। ऋगवेद में ऋषियों ने वृक्षों को परमात्मा के विभिन्न गुणों का प्रतीक माना है। निम्नलिखित सूक्त से इसकी पुष्टि भी होती है—

"आद्य औषधिरूप नोड्वस्तु ,दयोर्वना गिरयो वृक्षकेश।
श्रणेत न ऊर्जा परिगिंर ,स नम्सतरीयां उषिरः परिज्मा।
शृन्वच्वायः पुरान शुभ्राः ,परि स्त्रुचो बवृहाण स्योद्रः।"

अर्थात" वनस्पतियां ,जलधाराएं ,आकाश ,वन और वृक्षादित पर्वत हमारी रक्षा करें। ताजगी भर देने वाला पवन जो आकाश के बादलों में तेजी सेदौड़ता है ,हमारे गान सुने और छिन्न-भिन्न पर्वतों में आगे बढ़ती स्फटिक सी स्वच्छ जलधाराएं हमारी प्रार्थना सुनें। "चूँकि पारिस्थितिकी पर्यटन प्रकृति पर आधारित पर्यटन है जो प्रकृति से मिलने वाले आनंद से संबंधित है। अतः मानव का दायित्व है कि पारिस्थितिकी में किसी प्रकार का कोई स्थाई ह्रास न हो। इको पर्यटन वास्तव में एक प्रकार का उत्तरदायी पर्यटन है जो यात्रा के अनुभवों की रक्षा करने के अतिरिक्त लोगों के मध्य आपसी समझ को भी बढ़ाता है। इससे जुड़ा मानवीय दायित्व पर्यावरणीय ,सांस्कृतिक

ह्रास के साथ-साथ स्थानीय जनसंख्या के शोषण और मानवीय मूल्यों के ह्रास को भी रोकता है अतः यह आवश्यक हो जाता है कि मानव पारिस्थितिकी को क्षति पहुँचाए बिना ,उत्तरदायित्वपूर्ण पर्यटन के विकास हेतु कार्य करे जैसे -वहनक्षमता के आधार पर ही पर्यटन को प्रोत्साहन देना ,पर्यटकों में जागरुकता बढ़ाकर व्यक्तिगत व्यवहार में सुधार लाना ,पारिस्थितिकी पर्यटन के लिए साधनों को जुटाना ,इको-टूरिज्म में ईको के अनुसार एवं स्थानीय लोगों की जीवनशैली को प्रभावित किए बिना टूरिज्म को बढ़ावा देना। टूरिज्म के अविवेकपूर्ण विकास पर प्रतिबन्ध लगाकर और संवेदनशील क्षेत्रों जैसे संरक्षित प्राकृतिक क्षेत्रों ,पहाड़ों ,पठारों , ढालों ,मैदानों ,प्राकृतिक प्रदेशों आदि में पारिस्थितिकी पर्यटन के नियमों को सही प्रकार लागू कर अपने पर्यावरणीय दायित्व का निर्वाह करें। साथ ही अगर हम इको-टूरिज्म के क्षेत्र में मालदीव की प्रगति को ध्यान में रखें तो वह हमारा प्रेरणास्त्रोत बन सकता है। मेरे विचार से यदि सभी सैलानी सैरगाहों की स्वच्छता पर ध्यान दें और अपनी तरफ से किसी प्रकार का कूड़ा-करकट न फैलाएँ तो हम व्यक्तिगत तौर पर ही इको-टूरिज्म में एक बड़ा योगदान दे सकते हैं साथ ही सैरगाहों पर स्थित होटल वाले यदि कचरे का निपटान कर अवशिष्टों को फिर से काम में लाएं) री-साइक्लिंग (और जल संरक्षण को बढ़ावा दे कर अपने मानवीय दायित्वों का निर्वहन कर सकते हैं। इसके तहत हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इको-टूरिज्म मूलतः 'ब्लास्ट-फिशिंग' के बजाय अधिक परम्परागत और सुरक्षित तरीके अपनाने पर बल देता है।

स्पष्टतः पारिस्थितिकी पर्यटन मनुष्य जाति के समग्र विकास का एक मूल उपक्रम है। इससे एक साथ उसके दो दायित्वों का निर्वहन होता है ,यथा जहाँ वह अपने दायित्व का निर्वहन कर रहा होता है ,वहीं कहीं न कहीं अपनी पारिस्थितिकी को सम्पन्न भी करता चलता है यद्यपि इन दोनों में अपृथक तादात्म संबंध है। इस दृष्टि से इस पक्ष को अधिक से अधिक विस्तारित अथवा व्यापक बनाने की आवश्यकता है कारण कि इसमें प्रत्येक जन की मंगलकांक्षा का बीज निहित है। इस हेतु इसके जो भी उपक्रम होंगे उनमें से प्रमुख है स्कूल शिक्षा से लेकर उच्चशिक्षा तक के पाठ्यक्रमों में इसे सम्मिलित किया जाना। पारिस्थितिकी पर्यटन जागृति का भला इससे उत्तम और क्या माध्यम हो सकता है। इसे नीवन अनुसंधानों में अत्यन्त महत्व के साथ सहेजा जा रहा है। यही कारण है कि आज लगभग सभी क्षेत्रों में इसे केन्द्र में रख कर देखा जा रहा है। यह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के संस्थानों ,वि.वि .और अध्यापकों के गहन शोध का एक नवीनतम पक्ष है।

सन्दर्भ/आधार ग्रन्थ

1. पर्यावरण अध्ययन : कौशिक एवं कौशिक) न्यू एज इंटरनेशनल(
2. Ecology, Environment science and conservation, SinghT.S,Singh S.P, Gupta S.R, S.Chand Public.
3. Ecotourism and Sustainable Development, Ravi Shankar Kumar Singh.
4. Ecotourism : Principles and Practices, Ralf C. Buckley.
5. Ecotourism, Reil G. Cruz.

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श और इसकी प्रासंगिकता

ऋचा सिंह
शोध छात्रा
जीवाजी विश्वविद्यालय,
ग्वालियर मध्य प्रदेश

डॉ0 अनुभा पाण्डे
(शोध निर्देशिका)
एस0एल0पी0 पी0जी0 कॉलेज,
मुरार, ग्वालियर,म0प्र0

प्राचीन काल से साहित्य में स्त्रियों के विषय में विचार विमर्श होता आया है। इनकी महत्ता का समय–समय पर अवलोकित किया जा रहा है। कभी माता के रूप में, तो कभी पत्नी के रूप में, कभी बहन के रूप में, तो कभी समाज सेविका के रूप में। इनका समय–समय पर पुरुष और समाज के संतुलन को लेकर योगदान मिलता रहा है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।(1)

जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती है, उनका सम्मान नहीं होता है, वहाँ किये गये समस्त अच्छे कर्म निष्फल हो जाते हैं। जिस कुल में स्त्रियाँ कष्ट भोगती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं वह कुल सदैव फलता–फूलता और समृद्ध रहता है। (परिवार की स्त्रियों, बहुओं, नवविवाहितों आदि जैसे निकट संबंधियों को ''**जामि**'' कहा गया है।)

मध्यकालीन भारतीय समाज में नारी सदैव अपने अधिकारों से वंचित और उपेक्षित रही हैं क्योंकि हिन्दू समाज पितृसत्तात्मक समाज का प्रभुत्व रहा है। किसी भी समाज के सुसंस्कृति होने की पहचान नारी से होती है। जब–जब नारी का गौरव अपनी महत्तता छोड़ने लगा है तब–तक नारी ने उस महत्व को प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया है। यही संघर्ष नारी मुक्ति का रूप ले लेता है। यहाँ नारी मुक्ति से हमारा अभिप्राय पुरुष के विरूद्ध संघर्ष का विगुल बजाना नहीं। न ही घर गृहस्ती की दीवारों में दरारें डालना। बल्कि नारी को उसका सम्मानित दर्जा दिलाना है। नारी को छः गुणों से युक्त माना गया है।

कार्येषु दासी करणेषु मंत्री रूपे च लक्ष्मी क्षमया धारित्री।

भोज्येषु माता शैनेषु रंभा षष्टकर्म युक्ता कुलधर्म पत्नी।।(2)

अर्थात पत्नी एक दासी की तरह हमारे कार्य करती है। एक मंत्री की तरह हमारी सलाहकार होती है। रूप में लक्ष्मी के समान, पृथ्वी की तरह क्षमाशील, भोजन परोसते समय माता के समान, साथ में श्यन के समय रंभा अप्सरा के समान सुख देती है। इस तरह एक कुल धर्म पत्नी में ये छः गुण या रूप होते हैं।

मुशी प्रेमचन्द्र जी ने भी अपने उपन्यास गोदान में स्त्री के विषय में अपने मत को स्पष्ट किया है।

''स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरूप में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरूष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है। पुरूष में थोड़ी सी पशुता होती है, जिसे वह इरादा करके भी हटा नहीं सकता है। वही पशुता उसे पुरूष बनाती है। विकास के क्रम से वह स्त्री से पीछे है। जिस दिन वह पूर्ण विकास को पहुँचेगा वह भी स्त्री हो जायेगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारों पर यह सृष्टि थमी हुई है और यह स्त्रियों के गुण हैं।'' (3)

स्त्रियों में मातृ गुण ही होता है, अगुण नहीं ऐसा नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार उनमें आठ अवगुण भी हैं। साहस, झूठ, चंचलता, माया, भय, छल, अविवेक व निर्यदयता।

श्रीरामचरितमानस के एक दोहे में गोस्वामी तुलसीदास जी ने रावण व मंदोदरी के संवाद को माध्यम बना कर महिलाओं के स्वभाव में सामिल अवगुणों के बारे में बताया है। श्रीरामचरितमानस में वर्णित है कि, जब भगवान श्रीराम अपनी सेना के साथ लंका पहुँच गये तो मंदोदरी भयभीत हो गयी। अपने पती के प्राणों पर आये संकट को टालने के लिए वह रावण को समझाने का हर सम्भव प्रयास करने लगी। इस पर रावण ने मंदोदरी का उपहास करते हुए कहा कि–

नारी सुभाऊ सत्य सब कहहीं।

अवगुण आठ सदा उर रहहीं।।

साहस अनृत चपलता माया।

भय अविवेक असौच अदाया।। (4)

अर्थात स्त्रियों के स्वभाव में आठ ऐसी बातें है जो बहुत सारी स्त्रियों में समान रूप से होती है।

- स्त्रियां बहुत साहसी होती हैं। इसलिए वह बहुत बार ऐसे काम कर जाती हैं जिससे बाद में उन्हें और उनके परिवार को पछताना पड़ता है। वह यह बात भलि–भांति नहीं जानती हैं कि, कब और कैसे अपने साहस का प्रयोग करें। साहस दुःसाहस में परिवर्तित हो जाय तो वह नुकसानदायक होता है।
- स्त्रियों में झूंठ बोलने की प्रवृत्ति आम होती है जिससे उन्हें बहुत बार मुसिबतों का सामना करना पड़ता है। एक झूंठ को छुपाने के लिए सौ झूंठ बोलने पड़ते है।
- पुरूषों के अनुपात में स्त्रियां चुचबुले स्वभाव की होती हैं। उनके विचारों में समय के साथ परिवर्तन होता रहता है। वह कभी एक धारा पर टिक नहीं पाती। इसलिए वह बहुत बार सही निर्णय लेने में असमर्थ होती हैं।
- रावण मंदोदरी को कहता है कि, स्त्रियां माया रचने में माहिर होती हैं। इस कला में पुरूष उन्हें कभी परास्त नहीं कर सकते। वह अपनी मायावी दुनियां में पुरूष को बांध कर उनसे मन चाहे काम करवा सकती हैं। जैसे आज तुने राम का डर बताते हुए मुझे सीता को वापस करने के लिए बाध्य करना चाहा।
- स्त्रियों का बाहरी आवरण बहुत पराक्रमी होता है लेकिन भीतर से वह बहुत डरपोक होती हैं। इसलिए बहुत बार वह बनते काम भी बिगाड देती हैं।
- कुछ परिस्थितियों में स्त्रियां स्वयं को सिद्ध करने के लिए ऐसे मूढता वाले कार्य कर जाती हैं जिससे भविष्य में उन्हें पछताना पड़ता है।
- यदि स्त्रियां प्रचंड हो जाय तो वह कभी–भी कोमलता नहीं दिखाती।

- रावण के अनुसार स्त्रियों में आठवीं कमी होती है कि, उनमें साफ–सफाई का आभाव होता है।

आज हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्यायें और कठिनाईयां हमें देखने को मिलती हैं। हिन्दी साहित्य में छायावाद काल से स्त्री विमर्श का जन्म माना जाता है। महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कड़ियां नारी सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है। प्रेमचन्द्र से लेकर आज तक अनेक पुरुष लेखकों ने इनकी समस्या को अपना विषय बनाया है। लेकिन जिस रूप में एक स्त्री अपनी पीड़ा लिख सकती है, उसकी वेदना, उसके मर्म को समझ सकती है। शायद पुरुष उस गहराई ये उस वेदना, उस पीड़ा को न समझ पाये। इसलिए स्त्री विमर्श का प्रारम्भ पश्चिम में देखने को मिला। सन् 1960 ई0 के आस–पास नारी सशक्तिकरण जोर पकड़ता गया। इसमें चार नाम चर्चित हैं– ऊषा प्रियंवदा, कृष्णा सोवती, मन्नू भंडारी एवं शिवानी आदि ने स्त्री विमर्श के आन्दोलन को पुरजोर ढ़ंग से आगे बढ़ाया। इसमें इन लेखिकाओं ने नारी मन की अंतर्द्वन्द्व एवं आपबीती घटनाओं को उकेरना शुरू किया और आज स्त्री विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है। आठवीं दशक तक आते–आते यह विषय एक आन्दोलन का रूप ले लेता है जो शुरूआत में ज्यादा शक्तिशाली सिद्ध हुआ। आज मैत्रेयी पुष्पा तक आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी जिसने पितृसत्ता समाज को झकझोर दिया। नारी मुक्ति की गूंज अब देह मुक्ति के रूप में परिलक्षित होने लगा है।

स्त्री देह की स्वतन्त्रता उसे अपने सौन्दर्य बोध, अपनी अनुभूतियों एवं संवेदना के आधार पर समझने और महशूस करने में है और हिन्दी का स्त्री लेखन इस स्तर तक पहुँच चुका है कि, जहाँ भारतीय समाज एवं वर्चस्वशाली संस्कृति द्वारा स्त्रियों पर थोपा गया है। यौन सुचिता का आवरण तार–तार हो गया है। इस यौन सुचिता के पीछे पितृसत्तात्मक समाज की लिंग भेद और स्त्री देंह के दमन की अवधारणा है और हिन्दी के स्त्री लेखन में इस अवधारणा की पहचान की जा चुकी है। कभी–कभी यौन मुक्ति का यह संघर्ष उसी पुरुषवादी आवरण में फंसता नजर आता है जब यौन मुक्ती की बात करते–करते स्त्री फिर उसी पुरुषवादी सौन्दर्यबोध की कसौटी पर स्वयं को कसने लगती है। लेकिन भारत के संदर्भ में जहाँ मुख्य धारा में अभी–भी सामाजिक स्वतन्त्रता का कोई स्वरूप नहीं है वहाँ लौंगिक स्वतन्त्रतावाद व उसी सांस्कृतिक वर्चस्व वाले जाल में उलझता नजर आये तो वह बहुत आश्चर्यजनक नहीं है।

सन् 1918 ई0 के कांग्रेस की बैठक में स्त्रियों को दिये गये मताधिकार को भी राष्ट्रवादी आन्दोलन की अपने जरूरतों और उसमें से उभरते स्त्री आन्दोलन के संदर्भ में देखने की आवश्यकता है। राष्ट्रवादी जरूरतों से तात्पर्य साम्राज्यवादियों की उस विचारधारा से लडने के परिप्रेक्ष्य में है जो मेयो के मदर इंडिया में दिखाई देती है। स्त्रियों के अपने अधिकारों की मांग और साम्राज्यवादी ताकतों से लड़ने में उनकी भूमिका इस मताधिकार की पृष्टभूमि निर्मित करता है। स्त्री का मताधिकार भी स्त्री के हक और न्याय की उन तमाम मांगों से जुडा हुआ था जिसके लिए सावित्रीबाई, रमाबाई, काशीबाई कानितकर, आनंदीबाई, मैरी भोरे, गोदावरी समस्कर, पार्वतीबाई, सरलादेवी, भगिनी निवेदिता से लेकर भिकाजी कामा, कुमुदिनी मित्रा, लीलावती मित्रा जैसी स्त्रियों ने अनेक स्तरों पर संघर्ष किया। ऐसे हजारो नाम इतिहास के पन्नों पर लिखे जा सकते हैं। ऐनीबेसेन्ट ने, मार्गरेट कूजिंस, सरोजनी नाइडू आदि के साथ स्त्रियों के मताधिकार की मांग की थी। कांग्रेस की राष्ट्रवादी विचारधारा का पूरा प्रभाव ऐनीबेसेन्ट और सरोजनी नाइडू जैसे स्त्रियों के ऊपर था।

दूसरे शब्दों में कहें तो साम्राज्यवाद से लडने के लिए एक ऐसी स्त्री राष्ट्रवाद के अन्तर्गत गढ़ी जा रही थी जो एक ओर तो उपनिवेषवाद के खिलाफ अपना सर्वस्व झोंक दे लेकिन दूसरी ओर स्त्रियों के

लिए बनाये गये नियमों के आधुनिक रूप में बंधी रहे। स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व या अस्मिता से उसका कोई सरोकार न हो।

यही कारण है कि सरोजनी नाइडू जैसी महिला ने भारत के स्त्री आन्दोलन को स्त्रीवादी आन्दोलन नहीं माना और उसे पश्चिम में चल रहे आन्दोलन से अलगाया। फिर भी स्त्रियां अपने हक और न्याय की लड़ाई को आगे बढ़ाती रहीं क्योंकि कोई भी आन्दोलन कुछ नितीनिर्धारक तत्वों के आधार पर जीवित नहीं रहता। खास तौर से तब जब उस आन्दोलन की लड़ाई बहुस्तरीय हो। राष्ट्रवादी विचारधारा के आग्रहों के बावजूद स्त्री के सामाजिक अधिकारों के प्रति ऐनी बेसेन्ट जैसी स्त्रियों की जागरूकता को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता–

'' पुरुष का अधिकार एक स्वीकार्य सिद्वान्त बन चुका है, परन्तु दुर्भाग्यवस विश्व के विशेष दृष्टिकोण में वह केवल पुरुषों का अधिकार है। ये अधिकार लैंगिक अधिकार है न की मानवीय अधिकार और जब तक ये मानवीय अधिकार नहीं बनते तब तक समाज एक औचित्यपूर्ण, सुरक्षित नींव पर खडा नहीं हो सकता।'' (5)

सुमन राजे ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, आज तक हम राजनीतिक–सामाजिक स्त्रतन्त्रता की ही व्यख्या नहीं कर सके हैं और स्त्री स्वतन्त्रता की बात उसी परिपेक्ष्य में की जा सकती है। निरपेक्ष्य स्वतन्त्रता जैसी कोई चीज नहीं हो सकती है। स्वतन्त्रता का मूल अभिप्राय है कि, 'निर्णय की स्वतन्त्रता' और स्त्री स्वतन्त्रता का रूप क्या होगा, यह स्वयं स्त्रियों को ही तंय करना है। यह निर्णय कुछ 'विशिष्ट' महिलाओं द्वारा नहीं लिया जा सकता। हिन्दी साहित्य में भी कुछ स्त्री लेखकों को स्त्री विमर्श का नेतृत्व करने वाला समझना ऐसी ही भूल है। किसी भी लेखक की मुखरता नहीं बल्कि उसका लेखन उसकी साहित्यिक जिम्मेदारी का सबूत होता है। साहित्य किसी भी सैद्धांतिकी से प्रभावित हो सकता है और नया सिद्धांत गढ़ सकता है लेकिन साथ ही उसका एक बडा सामाजिक सरोकार होता है और यहीं से स्त्री पुरुष के बदले मनुष्यता की जमीन तैयार होती है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श पितृसत्ता के साथ मुखर होते हुए अब इस जगह पर पहुँच गया है जहां स्त्री अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की पहचान कर पाने में सक्षम है। यही वह आधार है जहाँ से सामाजिक और लैंगिक विभाजन के स्थान पर मनुष्यता की पहचान शुरू होती है। यह आधार स्त्रियों के लम्बे संघर्ष में ही निर्मित हुआ है। यदि भारत में स्त्रियों के संघर्ष का लम्बा इतिहास नहीं होता तो किसी सैद्धांतिकी या अवधारण पर आधारित लेखन का बहुस्तरीय भारतीय समाज के संदर्भ में न तो खास प्रासंगिकता होती और न ही उसका ठोस देशज स्वरूप निर्मित हो पाता। न्याय की लड़ाई के लिए होने वाले किसी भी आन्दोलन का प्रभाव किसी भी जिम्मेदार लेखक की जीवनी पर पड़ता है चाहे वह प्रत्यक्षतः उस आन्दोलन के नेतृत्वकर्ता न भी रहा हो। ऐसी परिस्थिति में उसकी जिम्मेदारियों पर सवाल उठाया जा सकता है लेकिन उसके लेखन को नाकारा नहीं जा सकता है।

हिन्दी में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों पर सीमित नहीं है। उसके और भी कुछ आयाम हैं और इन आयामों को ही तलासने की जरूरत हमारे आलोचकों को है न की सिर्फ चंद नामों के आधार पर एक खास दायरे में बांधने की। कला साहित्य के हर विचारधारात्मक संघर्ष के पीछे अपने समय और समाज के परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना जरूरी है। यहाँ तक कि, स्त्री की स्थिति को निर्धारित करने वाले संस्थाओं में आये परिवर्तनों को भी लक्ष्य करना जरूरी है।

जैसे 16 दिसम्बर की घटना के बाद आने वाली कमेटी की रिपोर्ट ऐसे ही परिवर्तनों का परिणाम है। जहाँ तक हिन्दुस्तान में संस्कृति को बदलने की लड़ाई के शूरू होने की बात है तो वह उसी दिन से शुरू हो गयी है जिस दिन पहली स्त्री ने अपने अधिकारों की मांग करके वर्चस्वशाली संस्कृति के

समक्ष प्रतिरोधात्मक संस्कृति की शुरूआत की होगी। हम नहीं जानते वह स्त्री कौन थी या उसकी मांग क्या थी! हो सकता है उसकी पहली लड़ाई अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को लेकर ही रही हो! 16 दिसम्बर की घटना के बाद उठने वाला आन्दोलन संस्कृति वर्चस्व के खिलाफ हुऐ संघर्षों के लम्बे इतिहास का एक बड़ा अध्याय है और इस अध्याय का इस रूप में लिखा जाना भी तभी सम्भव हो सका जब उसकी एक मजबूत पृष्ठिभूमि निर्मित हो चुकी थी। चाहे मथुरा रेप केस रहा हो या माया त्यागी रेप केस या मनोरमा देवी रेप केस रहा हो, यहाँ के पुरुषवादी सत्ता–विमर्श की विद्रूपता को दिखाने के लिए ऐसे हजारों नाम लिए जा सकते हैं और उनके विरोध में उठने वाले छोटे से छोटे स्वर को भी सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रतिरोध माना जाना चाहिए।

पश्चिम के स्त्री आन्दोलनों और स्त्री विमर्श से तुलना करते हुए कई बार हमारे योग्य विद्वान भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री संघर्ष की उपेक्षा कर जाते हैं। हिन्दी के विमर्शात्मक लेखन पर भी इस तरह का एक खास नजरियां चस्पा कर दिया गया है और उसका मूल्यांकन चंद लेखिकाओं के आधार पर करके एक सामान्य निष्कर्ष निकाल दिया जाता है। ऐसे में भारत के स्त्री संघर्ष के इतिहास पर पुनर्विचार करना जरूरी है। स्त्री विमर्श एक वैश्विक विचारधारा है लेकिन विश्वभर की स्त्रियों का संघर्ष उनके अपने समाज सापेक्ष है। इस संदर्भ में स्त्री संघर्ष एवं स्त्री विमर्श दोनों में थोड़ा अगल करके देखने की जरूरत है। हांलाकि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इसलिए किसी एक देश में किसी खास परिस्थिति में चलने वाला स्त्री संघर्ष एक मात्र सार्वभौमिक सत्य नहीं हो सकता है, प्रेरणास्त्रोत हो सकता है।

हर देश का अपना अलग–अलग बुनियादी सामाजिक ढांचा होता है। ऐसे आन्दोलन वैश्विक विचारधारा के विकास में सहायक होते हैं लेकिन यह जरूरी नहीं कि हर आन्दोलन इस वैश्विक विचारधारा की सैद्धांतिकी को आधार बना कर चले। किसी एक मुद्दे को लेकर शुरू हुआ आन्दोलन अपनी चेतना में कई स्तरों पर न्याय की लड़ाई को समेटे रहता है। भारत में स्त्री संघर्ष और स्त्री अधिकार के आन्दोलन को इसी रूप में स्वतन्त्रता आन्दोलन के परिपेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. मनुस्मृति 3/56/1
2. स्त्री विमर्श– विनय कुमार पाठक, भावना प्रकाशन, दिल्ली– 110091 प्रथम सं0 2005, पृष्ठ सं0 06
3. मुंशी प्रेमचन्द– गोदान
4. श्रीरामचरितमानस– लंका काण्ड
5. राधा कुमार– स्त्री संघर्ष का इतिहास से उद्धृत, पृष्ठ सं0 107

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

महाभारत काल में पशु एवं वृक्षों की चिकित्सा

डॉ0 राजेश रंजन
प्रवक्ता संस्कृत विभाग,
आदर्श देवकली बाबा स्मारक महाविद्यालय
उदैना अहरौला आजमगढ़

महाभारत काल में पशुओं तथा वृक्षों की चिकित्सा से सम्बन्धित अनेक स्थानो पर प्रमाण प्राप्त होते है।

दीर्घतमा की गोधर्म शिशक्षा– दीर्घतमा मुनि ने गोधर्म की शिक्षा दी थी, इसी कारण दूसरे ऋषि उन्हें आदर की दृष्टि से नही देखते थे। [1] (यद्यपि टीकाकार नीलकंठ ने अपनी टीका में गोधर्म शब्द का अर्थ 'प्रकाशमैथुन' दिया है, लेकिन गोधर्म शब्द गो चिकित्सा के अर्थ में भी लिया जा सकता है।

अश्व चिकित्सा में नकुल पटु– नकुल को अश्व चिकित्सा में निपुण माना गया था। अज्ञातवास में विराट को उन्होंने अपना परिचय अश्व चिकित्स के रूप में ही दिया था। [2]

नल और शालिहोत्र की अभिज्ञता– राजा नल अश्व परिचालन तथा अश्व के स्वभाव परिज्ञान के बहुत बड़े ज्ञाता थे। अश्वशास्त्र आचार्य शालिहोत्र ने लिखा था। [3]

सहदेव प्रवीण गौचिकित्सक– सहदेव की गणना बड़े अच्छे गोचिकित्सकों मे की जाती थी। स्वयं सहदेव ने विराट के समक्ष कहा था कि– ''मैं महाराज युधिष्ठिर का गो परिक्षक था। मेरे तत्वाधान में अति शीघ्र गौओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है और उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। जिन बैलों के संसर्ग से बन्ध्या गाय भी बछड़ा दे दें, उन बैलों को मैं केवल मूत्र की गन्ध से ही पहचान जाता हूँ। [4]

सर्वत्र प्राणों का स्पन्दन– संसार में सर्वत्र प्राणों का स्पन्दन है। चाहे जल हो या स्थल हर चीज में प्राण होते है। फल–फूल , पेड़–पौधे सब में प्राणों का अस्तित्व है। जो प्राणी अति सूक्ष्म है, जिन्हे इन्द्रियों द्वारा देखा अथवा छुआ नही जा सकता उनका भी अस्तित्व स्वीकारना पड़ता है। अरण्यचारी मुनि भी प्राण रक्षा के निमित्त हिंसा तक करने को बाध्य होते है। प्राण ही सब कुछ है। [5]

वृक्षलता आदि की श्रवणस्पर्श शक्ति–इस प्रकार से महर्षि भरद्वाज जी ने भृगु से पूछा था कि वृक्ष लता आदि का शरीर पंचभौतिक होता है कि नही। पेड़–पौधों के शरीर में तेज, वायु एवं आकाश का कार्य किस प्रकार होता है, यह न समझ पाने के कारण महर्षि भरद्वाज को संदेह हुआ था। वृक्षादि को श्रवण, स्पर्श, रस, गंध और दर्शन की अनुभूति नही होती है तो उनका शरीर पंचभौतिक कैसे होगा। इसी कारण उनको संदेह हुआ। इस प्रकार से प्रश्न के उत्तर में भृगु ने कहा है कि यद्यपि वृक्षादि के शरीर के सूक्ष्म अवयव अर्थात परमाणु बहुत ही घने है तब भी उनके अन्दर आकाश है इसमें कोई संदेह नही। आकाश या अवकाश नही होता तो फूल और फल का जन्म नही हो सकता था। पत्ते, छाल, फूल सभी एक समय मलीन हो जाते है। इससे ज्ञात होता है कि वृक्षादि में तेज पदार्थ विद्यमान हैं। उनकी म्लानता व शीर्णता देख कर स्पर्शानुभूति का भी अनुमान लगाया जा सकता है। वायु के स्पर्श, अग्नि के ताप और वज्र के निर्घोष से फल और फूल विनष्ट हो जाते है। इससे ज्ञात होता है कि वृक्षादि में सुनने

की शक्ति भी होती है। दूरस्थ लता भी अपने अवलम्ब्य वृक्ष की ओर अग्रसर होती है। इससे उसकी दृष्टि का अनुमान लगाया जा सकता है। अनेक प्रकार के गंध द्रव्यों और दीप धूप की सुवास से पेड़–पौधों के रोग नष्ट होते है, अतः उनमें गंध ग्रहण करने की क्षमता भी अवश्य होती है। जड़ों के द्वारा जल ग्रहण की शक्ति भी इनमें होती है। कुछ वृक्ष पानी डालने से सूख जाता है और इसके विपरीत कुछ वृक्ष पानी मिलते ही हरा हो जाता है, इससे उनकी रसनेन्द्रिय के अस्तित्व का पता चलता है। जिस प्रकार से कमल की नाल मुंह में डालकर पानी पिया जा सकता है, उसी प्रकार वृक्ष आदि भी वायु की सहायता से जड़ों द्वारा जल सोखते है।

वृक्षों का जीवन और पुष्टि– सुख–दुःख की अनुभूति एवं छिन्न शाखा आदि का पुनः निकलना देखकर पेड़–पौधों के जीवन का अनुमान लगाया जा सकता है। अग्नि एवं वायु वृक्ष के जल आदि खाद्य को रस में परिणत कर देती है, इसी से इनकी पुष्टि होती है। जिस प्रकार से जंगम प्राणियों की देह में पंचभूत का अनुभव किया जाता है उसी प्रकार स्थावर प्राणियों में भी पंचभूत की लीला चलती रहती है। [6]

विष प्रयोग से वृक्ष की मूर्च्छा– तीव्र विष के प्रयोग से वृक्ष भी मूर्च्छित हो जाते है, उसका प्रतिकार करने पर पुनः स्वस्थ हो जाते है। [7]

वृक्षों का पुत्रवत परिपालन–स्थावर प्राणि को छः श्रेणियों में विभाजित किया गया है जैसे– वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, त्वक्सार और तृण। इनके रोपण और परिवर्धन के अगणित पुण्य फल महाभारत में प्राप्त होते है। [8] इनको पुत्र की तरह पालने का उपदेश दिया गया है। [9] ऐसी उक्तियो से ज्ञात होता है कि वृक्ष का रोपण और पालन महाभारत काल में धर्म का अंग माना जाता था।

करंजक वृक्ष को दीपदान– महाभारत काल में बताया गया है कि सुवर्चला नामक वल्ली के जड़ को छूकर जो व्यक्ति एक वर्ष तक करंजक वृक्ष पर दीप चढ़ाता है, उसकी संतान संतति सदा वृद्धि पर रहती है। [10]इस कार्य द्वारा उल्लिखित वृक्ष और वल्ली का कुछ उपकार होता होगा, तभी करने को कहा गया है।

इस प्रकार से सिद्ध होता है कि महाभारत कालीन समय में पशुओं एवं वृक्षों का अत्यधिक महत्व एवं चिकित्सा का प्राविधान किया गया है।

संदर्भ सूची :

1. आदिपर्व 104 / 126–28
2. विराटपर्व 12 / 07
3. वनपर्व 71 / 27
4. विराटपर्व 10 / 13, 14
5. शान्तिपर्व 16 / 25–28वनपर्व 207 / 26–39
6. शान्तिपर्व 184 वाँ अध्याय
7. अनुशासनपर्व 5 / 6 आदिपर्व 43 / 9
8. अनुशासनपर्व 58 / 22–26
9. अनुशासनपर्व 58 / 27
10. अनुशासनपर्व 127 /

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

वेदों में यज्ञ की प्राचीनता

डॉ0 यशवन्त कुमार यादव
प्रवक्ता संस्कृत,
आदर्श देवकली बाबा स्मारक महाविद्यालय
उदैना अहरौला आजमगढ़

भारत की अमूल्य धरोहर वेद एवं धर्मग्रन्थ है। वेदो में कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड इन तीन विषयों का मुख्यतः वर्णन मिलता है। जिस प्रकार वेद के कई स्थल अत्यन्त दुरूह है, उसी प्रकार वेदांगभूत कई यज्ञ भी अत्यन्त दुरूह है। जिस प्रकार वेद में उपास्य देवता है, उसी प्रकार यज्ञ में भी उपास्य देवता है। जिस प्रकार वेद अपौरूषेय नित्य और अनादि है, उसी प्रकार यज्ञ भी अपौरूषेय नित्य और अनादि है। ऋगवेद के प्रथम मन्त्र में यज्ञ पद आया है अतः सिद्ध होता है कि वेद से भी प्राचीन 'यज्ञ' है। स्मृति आदि ग्रन्थों में यज्ञ की अतिशय महिमा प्राप्त होती है–

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्याद्न्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यों यज्ञः कर्म समुद्भवः ।। 1 ।।

समस्त प्राणि अन्न से उत्पन्न होते है और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है और वर्षा यज्ञ से होती है तथा वह यज्ञ कर्म से होता है।

अग्नौ प्राप्ताहुतिः सम्यागादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।। 2 ।।

अग्नि में विधि विधानपूर्वक दी गयी आहुति सूर्य देवता को प्राप्त होती है। पश्चात् उससे वृष्टि होती है वृष्टि से अन्न होता है और अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है।

यजते क्रतुभिर्देवान् पितृश्च श्रद्धयान्वितः।

गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति।। 3।।

जो पुरूष श्रद्धापूर्वक यज्ञादि द्वारा देवताओं पितरो का पूजन करता है वह यज्ञों के प्रताप से चन्द्रलोक में जा कर सोमरस का पान करके पुनः इहलोक में आता है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते।। 4 ।।

इस संसार में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष आयु पर्यन्त जीने की इच्छा रखनी चाहिए। यहां कर्म करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही है। कर्म निष्काम भाव से करनी चाहिए ताकि कर्म बन्धन के कारण न बने।

अग्नि होत्रिणे प्रणुदे सपत्नश्र। 5 ।

यज्ञ करने से शत्रु नष्ट हो जाते है। शत्रुता को मित्रता में बदल देने का सर्वोत्तम उपाय यज्ञ है।

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान यज्ञ पुरूषः।
इज्यते स्वेन धर्मेण जनैवर्णाश्रमान्वितैः।।
तस्यराज्ञौ महाभाग भगवान भूत भावनः।
परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतिनिजशासने।।
तस्मिन्तुष्टे किम्प्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे।। 6।।

शास्त्र के मतानुसार जिसके राज्य अथवा नगर में वर्णाश्रम धर्मियों के द्वारा यज्ञ पुरूष भगवान का यजन होता है उस पर भगवान प्रसन्न होते है क्योंकि वे ही समस्त विश्व की आत्मा तथा समस्त भूतों के रक्षक है। भगवान ब्रह्मादि जगदीश्वरों के भी ईश्वर है। अतः भगवान के प्रसन्न होने पर संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नही है जोकि अप्राप्य हो।

यज्ञेराप्यायिता देवा वृष्टयुत्सर्गेण वै प्रजाः।
आप्याययन्ते धर्मज्ञयज्ञाः कल्याणः हेतवः।। 7।।

अर्थात यज्ञ से देवताओं का अप्यायन (वर्धन) अथवा पोषण होता है। यज्ञ द्वारा वृष्टि होने से मनुष्यों का पालन पोषण होता है। इस प्रकार जगत का पालन पोषण करने के कारण धर्म यज्ञ कल्याण के हेतु कहे जाते है।

इस प्रकार वेदों एवं धर्म ग्रन्थों में यज्ञ के महत्व कों प्रकट करने वाले अनेक प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि यज्ञ का फल केवल इहलौकिक ही नही अपितु पारलौकिक भी है। अतः जिस यज्ञानुष्ठान के प्रभाव से जीव की क्षुद्रता अल्पज्ञता आदि विविध उपद्रवों का विनाश होता है और वह परमात्मा के साथ एकता को प्राप्त होता है। उस यज्ञ का महत्व सर्वमान्य है। इसमें तनिक भी सन्देह नही है।

सन्दर्भ :

1. गीता 3/14
2. मनुस्मृति 3/76
3. भागवत पुराण 3/32/2–3
4. यजुर्वेद 40–2
5. अथर्ववेद 9–2–6
6. भागवत पुराण 4/14/18–20
7. विष्णुपुराण 1/6/8

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

निराला की परवर्ती कविताओं का वस्तुगत सौन्दर्य

डॉ0 सुनील कुमार दुबे
असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्रो0 महावीर प्रसाद त्रिपाठी महाविद्यालय,
विजयपुर, मिर्जापुर

महाप्राण निराला अपने प्रारम्भिक रचनाओं में कल्पना, आवेग, रुढ़ियो आदि का वर्णन प्रमुखता से करते दिखाई पड़ते हैं पन्तु अपनी परवर्ती रचनाओं तक आते –आते कवि निराला का स्वर अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण हो जाता हैं वह निराला से विद्रोही निराला बन जाते हैं कवि तुलसीदास की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक भावभूति से देश की दयनीय स्थिति का अवलोकन करके कवि का हदय दग्ध हो उठा जिसके फलस्वरुप कवि निराला का स्वर अत्यन्त व्याग्यात्मक हो जाता हैं ,वे समाज के कार्यो को देखकर के विद्रोही बन जाते हैं। उनकी पहली परवर्ती रचना कुकुरमुत्ता हैं,जिसमें कवि एक सांकेतिक कथा के माध्यम से गुलाब और कुकुरमुत्ते को प्रतीकात्मक रुप में ग्रहण किया हैं। उन्होंने गुलाब को पूजीपतियों का प्रतीक बनाया हैंएवं कुकुरमुत्ते को शोषितों का प्रतीक बनाया हैं।

कुकुरमुत्ता सामाज के निम्न वर्ग का द्योतक हैं ,वह गुलाब से अपने विषय में कहा हैं –

तू हैं नकली, मैं हूँ मौलिक।[1]

माली की पुत्री गोली तथा नवाब की पुत्री बहार में मित्रता हैं एक दिन गोली अपने यहाँ बहार को कुकुरमुत्ते का कबाब खिलाती हैं। जो बहार को बहुत पसंद आता हैं ,बहार अपने पिता से अपने घर पर कबाब बनवाने के लिए कहती हैं तो नवाब अपने नौकर से बनाने के लिए कहता हैं तब नौकर कहता हैं –

फरमाएँ मआफ खता

कुकुरमुत्ता अब उगाए नहीं उगता [2]

यही इस कथा का मूल तत्व हैं जो इन दो पंक्तियों में आ गया है। सामान्य वर्ग के व्यक्ति का अपना महत्व हैं एवं बड़े व्यक्ति का अपना महत्व है किसी एक का महत्व किसी से कम नहीं कहाँ जा सकता हैं।

कुकुरमुत्ता की भाषा सहज एवं चुटीली हैं। व्यंग्य तथा विनोद भी हैं किन्तु यह घृणारहित हैं। कवि ने सामाजिक विडम्बनाओं से मुक्ति का आह्वान किया हैं जो इनके ओज ,पौरुष तथा मानवता प्रेमी होने का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। कुकुरमुत्ता के बाद कवि अणिमा की रचना करते–करते यह देखता हैं यह पूरा संसांर द्वितीय विश्व युद्ध की अग्नि में जल रहा हैं भारत उससे अलग नहीं हैं। एसी अवस्था में कवि निराला का हदय विषाद – से भर जाता हैं। जिसके फल स्वरुप कवि का गीत कही भक्ति परक, कहीं रहस्यात्मक और कही व्यक्तिगत ,पीड़ा से भर गया है। कवि निराला ऐसे समय में भगवान से प्रार्थना करते हैं–

दलित जन पर करो करुणा ।

दीनता पर उतर आये ।

प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा ।[3]

कवि निराला अपने अणिमा काव्य संग्रह में अपने आत्मीय तथा लोक कल्याणकारी महापुरुषों का प्रशस्ति गान प्रस्तुत किया हैं – भगवान बुद्ध के प्रति ,संत कवि रविदास के प्रति आदरणी प्रसाद जी के प्रति आदि । ये प्रशस्तियाँ सम्बोधन यथार्थ गीत के रुप में रची गई है। अपने इस काव्य सग्रह में निराला नें सामाजिक यथार्थ का चित्र प्रस्तुत किया हैं –

चूँकि यहाँ दाना हैं ।

इसीलिए दीन हैं, दीवाना हैं,

लोग हैं,महफिल हैं,

नग्में हैं, साज हैं, दिलदार हैं और दिल हैं,

शम्मा हैं, परवाना हैं,

चूँकि यहाँ दान हैं ।[4]

कवि निराला ने इन यथार्थ चित्रों को प्रस्तुत करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया हैं वह अत्यन्त ही सहज हैं अत : अणिमा के गीत ,लय गति एवं छन्द की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हैं।

विद्रोही कवि निराला की रचना बेला में अलग –अलग बहारों की गंजलों का सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया गया हैं। बेला की रचना करते समय कवि का हदय अत्यन्त शान्तावस्था में था ,वह संसार की असारता से परिचय पा चुका था कवि यह समझ चुका था कि व्यक्ति के प्रत्येक कार्य तथा सम्बध के पीछे स्वार्थ ही छिपा हुआ हैं। अपने जीवन के अनुभव को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

किनारा वह हमासे किये जा रहे हैं ,

दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं ।[5]

समाज में चारों तरफ भ्रष्टाचार, अत्याचार, पूँजीवाद के कारण जनता की दुर्दशा हो रही हैं। गरीब लोग गरीब होते जा रहे हैं और अमीर लोग लगातार अमीर होते जा रहे हैं जिससे समाज में एक, खाई पैदा हो जा रही हैं। कवि निराला इसका खुलकर विद्रोह करते हैं एवं कहते है –

भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में हैं,

देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हारे मिल में हैं[6]

नये पत्तें काव्य संग्रह में कवि निराला पुनः यथार्थ की दुनिया का वर्णन प्रस्तुत किये है। उनकी रचनाओं में व्यंग्य वाण तेज चलने लगे हैं। कवि जन साधारण की भावनाओं से अपना तादात्मय स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया हैं। नये पत्ते काव्य संग्रह में भी शोषितों के प्रति सहानुभूति तथा पूँजीपतियों के प्रति व्यंग्य वाण की वर्षा की है। निराला ने ग्रामीण जीवन के विभिन्न चित्र प्रस्तुत किये हैं।

अर्चना में कवि निराला विनय,भक्ति में अपने आप को डुबो देते हैं। अर्चना के अधिकांश गीतों में कवि ने प्रार्थना–परक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। कवि ने अर्चना में यथार्थ का उल्लेख करते –करते उनके मन में एक भक्त की पुकार सुनाई पडती हैं।

भव सागर से पार करते हैं,

गहर से उद्धार करो है ।[7]

आराधना भी महाप्राण के भक्ति को आगे बढ़ाने वाली कड़ी हैं। जैसा कि इसके नाम से ही ध्वनित हो रहा हैं,इसमें कवि का आराधक रुप और अधिक मुखरित हुआ हैं। कवि अपनी इन्द्रयों को वश में कर अपनी पशु प्रवृति पर विजय प्राप्त करके वह भगवान के चरणों में अपने आप को प्रस्तुत करता हुआ दिखाई पड़ता हैं। अतः आराधना में कवि का आराधक रुप ही ज्यादा मुखरित हुआ हैं। लोक भाषा को साहित्यक सौष्**ठव** प्रदान किया गया हैं। ये गीत सहज तथा सरल हैं। अधिकांश गीतों में लोकधुनों का भी विधान किया गया हैं।

गीतगुंज में आते–आते कवि निराला के अन्दर स्वकल्याण एवं जनकल्याण दानों की भावनाओं का बड़ा ही सुन्दर समन्वय स्थापित किया गया हैं। प्रस्तुत रचना में कवि का आनन्दमय स्वरुप दिखाई पड़ता है तो कहीं उनकी वेदना भी स्पष्ट रुप से परिलक्षित हो जाती हैं। जिधर देखिए श्याम विराजें, वरद हुई शारदा जी हमारी आदि में भक्त मन उस असीम को पुकार उठा हैं। कवि के हदय में उस अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम,समर्पण,त्याग आदि भावनाएँ आ गई हैं।

महाप्राण निराला जीचन भर समाज में लड़ते रहे मगर समाज कभी भी बदल न सका । उन्होंने समाज को सब कुछ प्रदान कर दिया मगर समाज ने उन्हें दुःख के अलावा कभी भी कुछ न दिया कवि निराला समाज से उब जाते हैं मगर अपने जीवन की अन्तिम अवस्था आ जाने पर वे पुनः कह उठते हैं–

पुनः सबेरा एक और हेरा हो जी का[8]

सन्दर्भ– सुची :

1. कुकुरमुत्ता, पृ0 41
2. कुकुरमुत्ता, पृ0 61
3. अणिमा, पृ0 6
4. अणिमा, पृ0 86
5. बेला, पृ0 68
6. बेला, पृ0 75
7. अर्चना, पृ0 23
8. सांध्यकाकली

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

पूर्व मध्यकालीन चन्देल राजवंश की मुद्रा व्यवस्था : एक विश्लेषण

राजेन्द्र प्रसाद मौर्य

शोधार्थी
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

जेजाकभुक्ति के चन्देल नवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में महोत्सवनगर (महोबा) को केन्द्र बनाकर गुर्जर–प्रतीहार सत्ता के सामन्त के रूप में शासन का शुभारम्भ किया। कालान्तर में चन्देलों ने प्रतीहारों की निर्बल स्थिति का लाभ उठाकर अपनी स्वतंत्रता घोषित कर लिया और करीब तीन शताब्दियों तक उत्तर भारत के राजनीतिक परिदृश्य में प्रभावशाली भूमिका में बने रहे। जनश्रुतियों एवं अभिलेखों में चन्देलों को खजुराहों, कालंजर, महोबा, अजयगढ़ तथा कर्णवती (केन) नदी के किनारे से जोड़ा गया है।[1] नन्नुक (लगभग 831–845 ई0) की जानकारी खजुराहों से प्राप्त होने वाले धंग के वि0सं0 1101 के अभिलेख से ज्ञात होता है। जिसकी पुष्टि अन्य अभिलेखों से भी होती है। वहाँ उसे 'नृप' और 'महीपति' कहा गया है।[2] नन्नुक की नृप और महीपति जैसी उपाधियों से स्पष्ट है कि वह पूर्व स्वतंत्र राजा न होकर एक सामन्त सरदार मात्र था।

इस राजवंश के उत्कर्ष का प्रारम्भ हर्ष (915–930 ई0) से प्रारम्भ होता है तथा चन्देल सत्ता का विकास यशोवर्मा (930–950 ई0), चन्देल सत्ता का चरमोत्कर्ष धंग (950–1102 ई0), चन्देल साम्राज्यवाद विद्याधर (1018–1029 ई0) के शासन में देखने को मिलता है। चन्देल विद्याधर ने कन्नौज के प्रतीहारराज राज्यपाल का अन्त कर उत्तर भारत का सर्वप्रमुख सम्राट बन गया और 'परमेश्वरपरमभट्टारक महाराजाधिराज' की उपाधियों को सार्थक किया।[3] चन्देल राजवंश में केवल कीर्तिवर्मन (1060–1100 ई0), सल्लक्षणवर्मन (1100–1115 ई0), मदनवर्मा (1129–1163 ई0), परमर्दिदेव (1165–1202 ई0), त्रैलोक्यवर्मा (1205–1247 ई0) तथा वीरवर्मा (1261–1286 ई0) की मुद्राएँ प्राप्त हुई है।[4] मुद्रा के पृष्ठभाग के अंकन के आधार पर इनका विभाजन किया गया है। स्वर्ण मुद्राओं लक्ष्मी शैली का प्रवर्तन कीर्तिवर्मन, सल्लक्षणवर्मा, मदनवर्मा, परमर्दिदेव, त्रैलोक्यवर्मन तथा वीरवर्मा द्वारा किया गया। अगर चंदेल राजवंश में रजत मुद्रा का प्रवर्तन की बात करें तो केवल मदनवर्मा ने लक्ष्मी प्रकार की मुद्रा का प्रवर्तन किया है। इसके साथ–साथ मदनवर्मा एवं वीरवर्मन ने लक्ष्मी शैली की ताम्र मुद्राओं का भी प्रवर्तन किया गया। इसे अतिरिक्त सल्लक्षणवर्मन, जयवर्मन, पृथ्वीवर्मन, मदनवर्मा, त्रैलोक्यवर्मन एवं वीरवर्मन की ताम्र मुद्राओं के पृष्ठभाग पर विविध रूपों में हनुमान का अंकन है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लक्ष्मी शैली की मुद्राएँ स्वर्ण, रजत एवं ताम्र तीनों धातुओं की मिली है जबकि हनुमान प्रकार के केवल ताम्र सिक्कों का प्रवर्तन किया गया। चन्देल राजवंश की मुद्राएँ यूनानी ड्रेक्म वजनमान के अनुरूप प्रवर्तित की गई है जो द्रम्म सिक्का, अर्द्धद्रम्म एवं पादद्रम्म सिक्कों के रूप में प्राप्त होती है।

स्वर्ण मुद्राएँ

चन्देल राजवंश में मुद्रा प्रवर्तन का शुभारंभ कीर्तिवर्मन (1060–1100 ई0) काल से होता है। इस शासक की स्वर्णनिर्मित मुद्राएँ आकार में गोल है। इन सिक्कों पर नागरी लिपि में तीन पंक्तियाँ अंकित हैं–

1. श्रीमत्की

2. त्तिवर्म्म

3. देव।

मुद्रा के पृष्ठतल पर घेरे में चतुर्भुजी लख्मी प्रभामण्डल से युक्त है। उदर के नीचे बिन्दुओं से मेखला का प्रदर्शन किया गया है।[5] प्रो0 लल्लन जी गोपाल की इस अवधारणा से अपने को संगत करना युक्तियुक्त दिखाई देता है कि चन्देल राज्य के कुछ क्षेत्र को कलचुरि नरेश गांगेयदेव ने हस्तगत कर लिया था। कीर्तिवर्मा ने ही उसे कलचुरि अधिकार से मुक्त कराया और कलचुरि सिक्कों के आदर्श पर अपने चलवाये।[6]

सल्लक्षणवर्मन, ने अपने पिता कीर्तिवर्मन के अनुकरण पर ही स्वर्ण सिकके निर्मित कराये।[7] किन्तु उसकी स्वर्ण–मुद्राएँ अल्पसंख्या में प्राप्त हुई हैं। कनिंघम ने उसकी दो मुद्राओं का उल्लेख किया है।[8] पी0सी0राय की धारणा है कि इन सिक्कों में स्वर्ण नहीं है।[9]

यहाँ सल्लक्षणवर्मन की मुद्रा उसके पिता कीर्तिवर्मन की मुद्राओं से किंचित भिन्न है। कीर्तिवर्मन की मुद्राओं पर अंकित लक्ष्मी के उदर के नीचे मेखला सात बिन्दुओं द्वारा निर्मित है जबकि सल्लक्षवर्मन ने इसके प्रदर्शन हेतु 12 बिन्दुओं का प्रयोग किया। मुद्रा के अग्रभाग पर तीन पंक्तियों में 'श्री मत्हल्लक्षण वर्मदेव' नागरी लिपि में लेख लेखांकित है। सल्लक्षणवर्मन ने 63 ग्रेन के द्रम्म सिक्कों के साथ–साथ 15 ग्रेन[10] भार वाले पाद द्रम्म स्वर्ण मुद्राओं का भी प्रवर्तन किया।

मदनवर्मा के नेतृत्व में चन्देलों की बढ़ती शक्ति का प्रमाण उसकी मुद्राओं से मिलता है। मदनवर्मा चन्देल राजवंश का एकमात्र शासक है जिसकी स्वर्ण, रजत एवं ताम्र तीनों धातुओं की मुद्राएँ प्राप्त होती है। कनिंघम ने उनकी दो मुद्राओं का उल्लेख किया है।[11] भारतीय संग्रहालय कलकत्ता[12] में 3 और लाहौर संग्रहालय[13] में 1 सिक्का उपलब्ध है।

एस0के0 मैती[14] ने धातु शोधन के पश्चात् यह निष्कर्ष प्रस्तावित किया है कि भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित तीनों सिक्कों में स्वर्ण का अंश 75 प्रतिशत से ऊपर है। अतएव मदनवर्मा का ध्यान निश्चित रूप से स्वर्ण की शुद्धता पर था। चन्देल शासक परमर्दिदेव द्वारा स्वर्ण मुद्रा के प्रवर्तन की पुष्टि खजुराहों से प्राप्त एक मुद्रा से होती है।[15] जो लक्ष्मी शैली में प्रवर्तित है। इसका भार 61.4 ग्रेन है जिससे स्पष्ट होता है कि यह द्रम्म सिक्का है। त्रैलोक्यवर्मन तथा वीरवर्मन द्वारा भी लक्ष्मी शैली में स्वर्ण मुद्राओं का प्रवर्तन किया गया। इनकी स्वर्ण मुद्राएँ अल्प संख्या में प्राप्त हुई है।

रजत मुद्राएँः–

जेजाकभुक्ति के चन्देल राजवंश में केवल मदनवर्मा (1129–1163 ई0) की रजत मुद्राएँ प्राप्त होती है। झाँसी के दरियापुर से प्राप्त मुद्राभाण्ड[16] में मदनवर्मा की पाँच मुद्राएँ प्राप्त होती है तथा शेष 313 सिक्कों का सम्बन्ध महीपाल देव से है। मिश्रित धातु[17] (रजत + ताम्र) निर्मित सिक्कों के पुरोभाग पर नागरी लिपि में दो पंक्तियों में मुद्रालेख 'श्री म (द) (म) द न वर्म (न) तथा पृष्ठभाग पर लक्ष्मी का अंकन है। रीवाँ से प्राप्त मुद्रानिधि[18] में मदनवर्मा के 48 सिक्के प्रकाश में आये हैं। रीवाँ मुद्राभाण्ड से उपलब्ध मुद्राओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 8 बड़े आकार वाली मुद्राओं का भार 60–62.75 ग्रेन है तथा 40 छोटे आकार की मुद्राएँ हैं जिनके वजन के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। यह मुद्राएँ मदनवर्मा के स्वर्ण मुद्रों की भांति लक्ष्मी शैली में निर्मित है।[19]

ताम्र मुद्राएँ :–

चेंल शासकों ने ताम्र मुद्राओं का भी प्रवर्तन किया। इनकी अधिसंख्या ताम्र मुद्राओं पर स्वर्ण सिक्कों के लक्ष्मी प्रकार से भिन्न हनुमान का अंकन किया गया है। हालांकि इसका अपवाद मदनवर्मा एवं वीरवर्मा की ताम्र मुद्राएँ हैं जो लक्ष्मी शैली में प्रवर्तित की गयी है।[20] सल्लक्षणवर्मन चन्देल राजवंश का प्रथम शासक था जिसने हनुमान प्रकार की ताम्र मुद्राओं का प्रवर्तन किया।[21] इन मुद्राओं का भार 61 ग्रेन है।[22] इससे स्पष्ट होता है उसने एक ही आकार एवं भार की ताम्र मुद्राएँ प्रवर्तित किया। पुरोभाग पर नागरी लिपि में 'श्रीमत् हल्लक्षण वर्मादेव' तथा पृष्ठभाग पर हनुमान का अंकन है।[23] इन मुद्राओं पर भी लेख, स्वर्ण–मुद्राओं के समान ही है। दोनों धातुओं के सिक्कों के भार में भी लगभग समानता है। हनुमान अंकन से युक्त मुद्राएँ सम्भवतः बाद में निर्मित की गई। जयवर्मा (1115–1120 ई0) की दो प्रकार की ताम्र मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। इनमें बड़े आकार की मुद्रा जिसका प्रकाशन कनिंघम ने किया, का भार 60 ग्रेन[24] तथा छोटे आकार की मुद्रा, जो ए0एस0 अल्तेकर[25] द्वारा प्रकाशित, 30 ग्रेन भार की है। यह क्रमशः द्रम्म एवं अर्द्धद्रम्म सिक्के हैं। इन मुद्राओं के पुरोभाग पर मुद्रा प्रवर्तक का नाम तथा पृष्ठभाग पर हनुमान की आकृति अंकित है।

पृथ्वीवर्मा (1120–1129 ई0) की कनिंघम ने पृथ्वीवर्मा की ताम्र 'हनुमान' प्रकार की मुद्राओं का उल्लेख किया। इनका भार 41 ग्रेन है। मदनवर्मा ने ताम्र मुद्राओं का भी प्रचलन कराया था। मदनवर्मा के ताँबे के सिक्के दो प्रकार के हैं– एक पर 'लक्ष्मी' अंकन के साथ 'मदनवर्मा' लेख तथा दूसरे पर 'हनुमान प्रतीक के साथ 'श्रीमदनवर्मा देव' लेख लेखांकित है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि जेजाकभुक्ति (महोबा) के चन्देल शासकों ने स्वर्ण, रजत एवं ताम्र तीनों धातुओं की मुद्राओं का प्रवर्तन किया। इनके शासन क्षे से सम्बद्ध विविध मुद्रानिधियों से विदित होता है कि यद्यपि रजत सिक्कों की संख्या बहुत कम है तथापि स्वर्ण एवं ताम्र मुद्राओं का प्रवर्तन कई शासकों द्वारा किया। स्वर्ण धातु के पाद मुद्राओं की उपलब्धता विवेच्यकाल में स्वर्ण मुद्राओं पर प्रचुर मात्रा में प्रचलन की ओर संकेत करती है, क्योंकि अपेक्षाकृत कम मूल्य की स्वर्णमुद्राओं का प्रयोग अपेक्षाकृत सस्ते सौदों के विनिमय हेतु अधिक उपयोग सिद्ध हआ। इस समय भी दैनिक वस्तुओं की खरीद व बिक्री अधिकतर वस्तु–विनिमय के द्वारा या कौड़ियों के द्वारा होती थी।

संदर्भ सूची :

1. पाठक, विशुद्धानन्द, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (600–1200ई0), 2018, लखनऊ, पृ0 375
2. एइ0, जि0 1, पृ0 125, श्लोक 10
3. इए0 जि0 16, पृ0 205
4. सिंह, ओंकारनाथ, गुप्तोत्तर कालीन उत्तर भारतीय मुद्राएँ, वाराणसी, 1997, पृ0 84
5. सिंह, ओंकारनाथ, गुप्तोत्तर कालीन उत्तर भारतीय मुद्राएँ, वाराणसी, 1997, पृ0 85
6. गोपाल, लल्लन जी, अर्ली मेडिवल क्वायन टाइप्स ऑव नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, 1966, पृ0 38–39
7. कनिंघम, ए0 क्वायन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया, वाराणसी, 1967, पृ0 79
8. वही

9. राय, पी0सी0, क्वायन्स ऑफ नार्दर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1980, पृ0 51
10. कनिंघम, ए0, क्वायन्स ऑव मेडिवल इण्डिया, वाराणसी, 1967 (पुनमुर्द्रित), पृ0 79, फलक VIII, 14–15
11. वही, फलक VIII, नं0 18
12. स्मिथ वी0ए0, कैटलाग ऑफ द क्वायन्स इन द इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, वाल्यूम–1, पृ0 253
13. स्मिथ बी0ए0, एपिग्रैफिक इण्डिका XXXVII, पृ0 148
14. मैती एस0के0, जर्नल ऑव द न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑव इण्डिया, 22, पृ0 276
15. हार्नले, प्रोसीडिंग्स ऑव द जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल (ज0ए0सो0ब0), 1889, पृ0 34, प्लेट IV, II, उद्धृत कनिंघम, क्वा0मे0इ0, पृ0 79
16. ज0न्यू0सो0ई0, वाल्यूम XVII, भाग 1, पृ0 41–42
17. वही, पृ0 41
18. न्यूमिस्मेटिक सप्लीमेंट, वाल्यूम XXII, पृ0 199
19. राय, पी0सी0 उपर्युक्त, पृ0 53–54
20. राय, पी0सी0, क्वायनेज ऑव नार्दर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1980, पृ0 52–53, 55
21. वही, पृ0 60
22. कनिंघम, ए0, क्वायन्स ऑव मेडिवल इण्डिया, वाराणसी, 1967 (पुनर्मुद्रित), पृ0 79
23. वही, पृ0 79
24. वही, पृ0 79
25. ज0न्यू0सो0इ0, वाल्यूम IV, पृ0 33, प्लेट द्वितीय, 7

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

Farugh-e- Urdu Aur Urdu Ki Mauzuda Surate Haal- Ek Jaiza
فروغ اردو اور اردو کی موجودہ صورت حال۔ ایک جائزہ

Dr. Zubaida Naz
S.N.S.R.K.S College Saharsa

ڈاکٹر زبیدہناز
ایس این ایس آر کے ایس کالج سہرسا

اردو زبان نہ صرف ہندوستان کی بلکہ دنیا کی مقبول ترین زبانوں میں سے ایک ہے۔ پوری دنیا میں اردو کے شیدائیوں اور کی ایک بڑی تعداد ہے
اردو زبان کی ابتداء سے اب تک لاکھوں نہیں بلکہ کروڑوں کی تعداد میں اس کے چاہنے والے ہر زمانے میں موجود رہے ہیں۔ غالب و مومن کے عہد میں تو یہ زبان ہندوستان کی پسندیدہ زبانوں میں سے ایک شمار کی جاتی تھی۔
ہندوستان اردو کا اپنا گھر اور مرکز رہا ہے۔ یہیں یہ زبان پیدا ہوئی ، پلی ،بڑھی اور فروغ پائی۔ کبھی اسے قلی قطب شاہ ملے تو کبھی ولی، کبھی اس کی ملاقات میروغالب سے ہوئی تو کبھی مومن اور مصحفی سے ،اس زبان کو کبھی داغ، شاد، حسرت ،جگر ،اصغر، جوش اور فیض جیسے متوالے ملے تو کبھی اقبال، اکبر، حالی جیسے عشاق۔
چند اس زبان کے عاشق ایسے بھی تھے ،جو اس زبان کی شیرینی اور حسن پر سر دھنتے تھے ۔اس زبان کو ہندوستان کی مقبول ترین زبانوں میں ایک سمجھتے تھے ۔
موجودہ عہد میں اردو زبان کے فروغ کے روشن امکانات ہیں۔ میرا مطلب ہرگز یہ نہیں ہے کہ سرکاری خزانوں کے دہانے کھول دینے سے زبان عروج پاتی ہے۔ چاندی کے پتروں پر سونے کے حروف سے اردو زبان کے بورڈ اور پلیٹیں آویزاں کر دینے سے بھی اردو زبان ہرگز فروغ نہیں پاسکتی ہے۔ ہاں اتنا ضرور ہے کہ سرکاری سرپرستی میں زبان کو قوت حاصل ہوتی ہے۔
یہ احساس اس احساس سے بھی قوی تر ہے کہ اردو پڑھنے سے معاش کا مسئلہ حل نہیں ہو سکتا، حالانکہ زبانیں اس لئے نہیں سیکھی جاتیں کہ ان سے محض روٹی کے مسئلے کو حل کرنا ہے۔ زبانیں تو اس لیے بھی حاصل کی جاتی ہیں کہ وہ ہمیں گونگا ہونے سے بچاتی ہیں،ہماری آواز کو پرواز دیتی ہیں ،دلوں کے دروازے کھولتی ہیں، دماغوں کی کھڑکیاں روشن کرتی ہیں، ہمارے وجود کو انسانی اور بامعنی بناتی ہیں اور ہم کو اس راز کا پتہ دیتی ہیں کہ کیسے دلوں کی دوریاں مٹائی جاتی ہیں، کس طرح قربتینبڑھائی جاتی ہیں، کیسے کسی کو دل میں بسایا جاتا ہے اور کس طرح کسی کے اندرون میں سمایا جاتا ہے مگر پتا نہیں کیسے اردو والوں کے اندر یہ بات بیٹھ گئی ہیں کہ اردو بولنے ،پڑھنے اور لکھنے سے شخصیت کی پیشانی پر پسماندگی کا لیبل لگ جاتا ہے اور اس حقیقت کو جانتے ہوئے بھی کہ اردو شرفاءکی زبان رہی ہے۔ اس کو جاننے والا اس بات پر فخر محسوس کرتا ہے کہ اسے بھی وہ زبان آتی ہے ،جو لبوں پر آتی ہے تو منہ سے پھول جھڑنے لگتے ہیں ،سماعتوں میں سنگیت بج اٹھتے ہیں، سانسوں میں خوشبو گھل جاتی ہیں اور رگ و ریشے میں تازگی بھر جاتی ہے اور جس کا سننے والا تماشائی اور بولنے والا مرکز نگاہ بن جاتا ہے۔

مگر صد افسوس کہ جو زبان لبوں پر سجی رہتی تھی آج سینے میں میں بھینچی ہوئی ہے، کسی شکنجے میں کسی ہوئی ہے اور یہ سب احساس کا فساد ہے، جو کسی چڑیل کی طرح دل و دماغ پر اپنا سایہ ڈال چکا ہے۔

یہ احساسات مختلف انداز سے اردو والوں کو اردو کے قریب جانے سے روکتا ہے۔

(۱) اپنے بچوں کو اردو میڈیم اسکول میں نہیں بھیجتے یا مجبوری میں بھیجتے ہیں

(۲) اردو کی کتابیں اور اردو کے جرائد و رسائل نہیں خریدتے اور کوشش کرتے ہیں کہ اور کوشش کرتے ہینکہ ان کے ڈرائنگ اور اسٹڈی روم میں اردو کی کتابیں نظر نہ آئیں۔

(۳) شادی بیاہ اور دیگر تقریبات کے دعوت نامے اردو کے بجائے انگریزی یا ہندی میں تقسیم کرتے ہیں۔

(۴) بعض سیاست داں جو بہت اچھی اردو جانتے ہیں، وہ بھی اپنی تقریروں میں قصداًہندی اور انگریزی لفظ استعمال کرتے ہیں جبکہ غیر اردو داں اپنی گفتگو کو اردو کے لفظوں کے استعمال سے زیادہ بہتر بنانے کی کوشش کرتے ہیں۔

(۵) بعض ریسرچ اسکالرز تو یہ بتاتے ہوئے بھی عار محسوس کرتے ہیں کہ وہ اردو کے اسکالرز ہیں۔

صور ت احوال جس احساس کے نتیجے میں نظر آتی ہے،اسے احساس کمتری کا نام دیا جاسکتا ہے ۔سوال یہ پیدا ہوتا ہے کہ یہ احساس پیدا کیوں کر ہوا؟ کیوں کر یہ دل و دماغ میں گھر کر گیا؟ کیسے یہ فضا میں تحلیل ہوگیا ؟ان سوالوں پر غور کرتے وقت ان نقطوں پر نظر ٹھہرتی ہے۔

: انگریزی زبان کا رعب اور انگریزیت کاغلبہ

انگریز ہندوستان سے چلے گئے مگر ان کی زبان آج بھی ہمارے ملک پر حکمرانی کر رہی ہے ۔اس زبان کا گھر، بازار ،دفتر، سفر ہر جگہ غلبہ دیکھنے کو ملتا ہے اور یہ غلبہ اتنا زور آور ہے کہ دوسری زبانیں اس کے سامنے دب کر اپنی آواز کھو دیتی ہیں یا یوں کہیے کہ ان کی آوازیں اس کے دباؤ سے گھٹ کر دم توڑ دیتی ہیں۔ انگریزیت کایہ غلبہ سب سے زیادہ اردو کو نقصان پہنچا رہا ہے۔ اس لئے کہ ہندی کو تو سرکاری پشت پناہی حاصل ہوجاتی ہے اور اسے انگریزیت کے دباؤ سے بچالینے کی شعوری کوشش اسے آزادانہ سانس لینے کے مہلت بخش دیتی ہے لیکن بیچاری اردو کی پشت پناہی کون کرے؟ خود اردو والے بلکہ اس کی کمائی کھانے والے بھی اس کے بچاؤ کے لیے آگے نہیں آ پاتے۔

اردو زبان کے فروغ کے لیے میری ذاتی رائے یہ ہیں کہ اس زبان کے تحفظ اور فروغ کے لئے جوش وخروش سے کام کریں اور ایسی تڑپ اور چاہت پیدا کریں جو معشوق کی فرقت میں عاشق کی ہوتی ہے۔

اردو زبان و ادب میں تعلیم حاصل کرنے والے طلبہ وطالبات کو سرکاری سطح پر نوکری کے زیادہ سے زیادہ مواقع فراہم کیے جائیں

پورے ہندوستان میں اردو کو دوسری سرکاری زبان کا درجہ دیا جائے کیونکہ ہندوستان میں اردو پڑھنے اور لکھنے والوں کی ایک بڑی تعداد ہے۔

مدارس میں اردو پڑھنے والے طلبہ اور اردو پڑھانے والے اساتذہ کو خصوصی وظیفہ دیا جائے۔

پرائمری سطح سے لے کر ہائر سیکنڈری سطح تک پرائیویٹ اور گورنمنٹ اسکولوں میں اردو ایک اختیاری زبان کی حیثیت سے لازمی طور پر پڑھانے کا انتظام کیا جائے۔

اردو پڑھنے والوں کو پرائمری سطح سے لے کر ریسرچ کی سطح تک معقول اسکالرشپ اور فیلوشپ دی جائے۔
اردو کتابوں اور رسائل کی اشاعت کا معقول انتظام کیا جائے تاکہ بروقت یہ اداروں تک پہنچ سکے۔
اردو کے اخبارات اور رسائل کو زیادہ سے زیادہ مالی مدد کے طور پر اشتہارات دیے جائیں تاکہ یہ اخبارات و رسائل پابندی سے نکلتے رہیں اور اردو کے قارئین میں اضافہ ہو۔
اردو بولنے ،سننے اور پڑھنے ،لکھنے کی طرف لوگوں کو مائل کیا جائے۔ گھروں میں اردو کا ماحول قائم کیا جائے۔
اپنے لڑکوں کی شادی ایسی لڑکیوں سے کرائیں جو اردو تعلیم یافتہ ہو نہ کہ انگلش یافتہ۔
بچوں میں اردو کی اہمیت کو اجاگر کرکے اردو سے انکی رغبت پیدا کی جائے ۔
اچھی معیاری خوبصورت دلچسپ کتابیں شائع کی جائیں ۔
اردو کی اچھی فلمیں اور سیریل دکھانے کا اہتمام کیا جائے
اردو کی بدولت بڑے عہدوں پر تعینات اعلی افسروں کو عوام سے ملوانے اور ان کے منہ سے یہ کہلوانے اور تصدیق کرانے کا انتظام کیا جائے کہ اردو آئی ۔اے۔ ایس اور آئی۔ پی۔ ایس بھی بناتی ہے اور یونیورسٹیوں کی وائس چانسلر بھی دلواتی ہے۔
خلاصۂ کلام یہ ہے کہ اگر مذکورہ بالا باتوں پر دھیان دیا گیا اور ان پر نیک نیتی اور سنجیدگی سے عمل کیا گیا تو نہ صرف یہ کہ اردو اپنی موجودہ صورتحال کے تشویشناک دائرے سے باہر نکل سکتی ہے بلکہ اپنا کھویا ہوا وقار بھی پا سکتی ہے۔

اس ملک کی آبرو اور شان ہے اردو
ہندی اگر جسم ہے تو جان ہے اردو

رکھ حوصلہ وہ منظر بھی پاس آئے گا
پیاسے کے پاس چل کر سمندر بھی پاس آئے گا
گھر پر نہ بیٹھ اے منزل کے مسافر
منزل بھی ملے گی اور ملنے کا مزہ بھی آئے گا

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

रामदरश मिश्र की उपन्यासों की प्रासंगिकता

डॉ0 विकास कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश,
सम्पादक– International Literary Quest & World Translation

रामदरश मिश्र, एक ऐसा कथाकार जो अपने उपन्यासों के माध्यम से साधारण से साधारण पाठक तक को ग्रामीण जीवन के रहन–सहन, खान–पान, तीज–त्यौहार से परिचय कराता चलता है और बोध के स्तर पर पाठक उनसे ऐसे जुड़ता है जैसे मिश्र जी के साथ वह भी उपन्यास का यह रचनाकार हो। साथ ही साथ मिश्र जी ने वर्तमान ग्रामीण जिन्दगी की उन भीतरी पर्तों को भी खोला है जिनमें से उसकी टुच्ची राजनीति, अन्धी स्वार्थपरता, घिनौना अवसरवादिता, धन और प्रतिके लिए एक–दूसरे का गला काटकर आगे बढ़ जाने की प्रतिद्वन्द्विता भी है।

मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण और दमन पर आयोरित वर्तमान व्यवस्था के अमानवीय रूप की, उसके दुश्चक्र में फँसे आदमी की करुण विवशता और असन्तोष को, उसको लेकर निहित स्वार्थों और परिवर्तन कामी शक्तियों के बीच चलने वाले संघर्ष को, आज की ठोस सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सच्चाइयों के बीच रखकर परिभाषित करने वाले रामदरश मिश्र के उपन्यास साक्षात्कार के एक निजी और आत्मीय संसार की पहचान कराते हैं। समकालीन कथा साहित्य में रामदरश मिश्र ने मूलतः एक आंचलिक उपन्यासकार के रूप में अपनी पहचान बनाई है। 'आकाश की छत' में शहर और गाँव के जीवन अनुभव की दूरियाँ समाप्त हो गयी हैं। लेकिन मिश्र जी अपनी यात्रा जीवन के किसी भी बिन्दु से क्यों न शुरू करें वह चाहे व्यक्ति मन की नितान्त निजी सम्बन्धों की अंतरंग दुनिया हो या मनुष्यता के न्याय के लिए चलने वाला समष्टिगत संघर्ष हो– उनके पैर हमेशा अपने अनुभव की जमीन पर ही रहते हैं और उनके अनुभव की जमीन है गाँव का वह जीवन जिससे रस कण खींचकर उनका रचनाकार अपनी कथाकृतियों की अन्तर्वस्तु का निर्माण करता है, अपनी अभिव्यक्ति के आवश्यक उपकरण जुटाता है।

'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' और 'सूखता हुआ तालाब' में तो मुख्यतः गाँव के यथार्थ का चित्रण हुआ ही है, लेकिन उनके जिन उपन्यासों का सीधा संबंध शहरी जीवन से है उनके मुख्य पात्र भी अनुभव और सोच के धरातल पर हलके या गहरे रूप में गाँव से जुड़े होते हैं। उनके या तो गाँव की धरती से कट जाने की पीड़ा है या फिर गाँव की जड़ता और रूढ़िवादिता से मुक्त होने की छटपटाहट। ये शहर में रहकर भी शहर से नहीं जुड़ पाते। उनकी आन्तरिक जरूरत के रूप में गाँव उनकी स्मृतियों में बा–बार उभरता रहता है। यह नहीं कि गाँव की ये स्मृतियाँ मधुर और आह्लादक ही हों, उनमें भावना की अन्तरंगता और मार्मिक सम्बन्धों की उष्मा ही हों, वे वहाँ की जिन्दगी की अत्यधिक क्रूर और अमानवीय स्थितियों की पीड़ा–जनक यादें भी हो सकती हैं। लेकिन हर हालत में गाँव के जीवन की मिठास या कटुता उनके अनुभव का अंग बनी रहती है। वह उनके विचार और कर्म को,

स्वप्न और संघर्ष को दूर तक प्रभावित करती हैं। मिश्र जी की रचनाशीलता और उनके विवेक की जड़ें उनके इसी अनुभव की जमीन में हैं।

रामदरश मिश्र (ज0 1924) का पहला उपन्यास पानी के प्राचीर 1961 ई0 में प्रकाशित हुआ। मैला आँचल के प्रकाशन के बाद उपन्यासकारों में आँचलिकता के प्रति बढ़ते आकर्षण की झलक पानी के प्राचीर में स्पष्ट लक्षित होती है। इस उपन्यास में रामदरश मिश्र ने उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल क्षेत्र में राप्ती, गर्रा आदि नदियों और बरसाती नालों से घिरे पांडेपुरवा नामक गाँव की अभावों से जूझती, निर्धनता, पिछड़ेपन, आपसी कलह और जमींदार के शोषण की शिकार गाँव की जिन्दगी का यथार्थ अंकन किया गया है। इसके साथ ही इस क्षेत्र की सांस्कृतिक गतिविधियों, जैसे– होली, विवाह, मृत्यु, महामारी आदि प्रसंगों के समय अनायास या अतिरिक्त उत्साह में फूट पड़ने वाले गीतों का भरपूर उपयोग उपन्यास में किया गया है।

'अपने लोग' (1976) उपन्यास की केन्द्रीय संवेदना गाँव की उस टूटी–बिखरी जिंदगी की पीड़ा से उद्‌भूत है, जिसके साथ लेखक की गहरी रचनात्मक सम्पृक्ति तो है ही, साथ ही उस जिंदगी के यथार्थ की पहचान वाली वह निर्मम तटस्थता भी है जो गहरे आत्मालोचन एवं विचार तथा संवेदन की गहरी संसक्ति से जन्म लेती है। 'अपने लोग' के कथानायक प्रमोद की अंतःचेतना में गाँव के विविध स्तरीय जीवन की छवि अपनी समग्र ताजगी और जीवन्तता के साथ अंकित है। ''उसने इस गाँव को इतनी गहराई से और इतने अधिक रूपों में जिया है कि इतने दिन तक शहर में रहने के बाद भी वह गाँव उसके भीतर बड़ी तड़प के साथ जिन्दा है। या हो सकता है कि बाहर रहने की वजह से ही जिन्दा है। पहर भर रात रहते ही हलचल शुरू हो जाती है– कुएँ पर पानी भरे जाने की आहट नाद में मुँह डालकर बैलों के सानी–पानी सुकड़ने की आवाजें हलवाहों के आने–जाने की आवाजें, फिर बैलों की घंटियों की आवाजें, खेतों में हलों की धड़कनें, बीया और हेंगा के लिये पुकार लगाती आवाजें और एक घण्टा दिन चढ़ने के साथ किसी खेत के जुत बो जाने की सूचना देने वाली हर हर महादेव की आवाजें। मिट्टी की तरह–तरह की गंध उसके भीतर की पर्तों में बसी है।''[1]

रामदरश मिश्र जी का अनुभव संसार अधिकतर पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों और गोरखपुर जैसे कस्बानुमा शहरों से जुड़ा हुआ है। यह क्षेत्र राप्ती और घाघरा नदियों की बाढ़ से प्रायः ग्रस्त रहता है, जिसकी छाप मिश्र जी की संवेदना पर भी दिखाई देता है। उनके कई उपन्यासों में पानी प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। 'जल टूटता हुआ' कथ्य की दृष्टि से 'पानी के प्राचीर' का ही विस्तार है। इन उपन्यासों में घाघरा–राप्ती का वह अभावग्रस्त और अभिशप्त ग्रामीण क्षेत्र है जो स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद सुखी जीवन के सपने देख रहा था। जनता सोचती थी कि आजादी मिलने पर महीप सिंह जैसे जालिम जमींदारों और देशद्रोहियों को फाँसी की सजा मिलेगी, पर हुआ इसके विपरीत।

'जल टूटता हुआ' के सुग्गन मास्टर कहते हैं, ''इतने साल हो गये आजादी मिले हुए। यह अभागी जिन्दगी टस से मस न हुई।''[2] आजादी ने प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर सुग्गन तिवारी को कभी दो कुरते और तीन धोतियाँ नहीं दीं। समय पर वेतन नहीं मिलता, खेत में कुछ पैदा नहीं होता, बनिया तक उधार सामान नहीं देना चाहता और ''देश के नौनिहालों की आत्मा का यह शिल्पी'' मन में सपने और पेट में कुलकुलाती आँतें लिए स्वाधीनता दिवस का समारोह मनाने स्कूल जाता है।

भ्रम यह है कि आखिर लेखक क्यों उलझता है गाँव की जिंदगी से? क्यों इस प्रकार की तड़प और बेचैनी का अनुभव करता है वह उसके लिये? शहर की आवाजों के बीच घिरकर भी उसकी स्मृतियों में गाँव की आवाजें क्यों गूँज–गूँज उठती हैं? क्यों ऐसा होता है कि शहर में रहकर भी गाँव की ओर जाने वाली पगदंडी को देखकर वह भावुक हो उठता है? क्यों गाँव के फटे हाल लोगों को

शहर की सड़कों पर पसीने से लथपथ दौड़ते देखकर उसके हृदय की धड़कनें तीव्र हो जाती हैं? गाँव के जीवन के प्रति रचनाकार के इस असाधारण आकर्षण को आलोचकों ने आशंका की दृष्टि से देखा है। आशंका को शब्द देते हुए डॉ0 चन्द्रकांत बान्दिवडेकर लिखते हैं– ''नगर जीवन की मानसिकता से ऊबे हुए लेखकों ने अपने बचपन के जीवन में, ग्राम्य जीवन की जो हरियाली भोगी थी उसका वास्तविक वर्णन आँचलिक साहित्य के नाम पर करना आरम्भ किया।''[3] प्रखर मार्क्सवादी समीक्षक डॉ0 शिवकुमार की भी आँचलिक कह जाने वाले उपन्यासों से शिकायत है कि इनके रचनाकारों के लिए प्रायः मानवीय यथार्थ की तुलना में परिवेश से जुड़ी हकीकतें अधिक महत्वपूर्ण बन जाती हैं।[4] अतः प्रश्न यह है कि गाँव की जिन्दगी के प्रति रामदरश मिश्र की यह ललक और यह आकर्षण, क्या उनकी वैचारिक या संवेदनात्मक पिछड़ की यह ललक और यह आकर्षण, क्या उनकी वैचारिक या संवेदनात्मक पिछड़ की ओर संकेत करते हैं? या वे उनकी किसी गहरी रचनात्मक आवश्यकता को पूरा करने वाले उनके सोच और संवेदन को गति और दिशा प्रदान करने वाले जरूरी उपकरण हैं।

कहना न होगा कि रामदरश मिश्र के रचनात्मक अनुभव के लिये गाँव की जिन्दगी कोई सुविधा का विषय न होकर एक चुनौती है। उसमें जीवन और रचना दोनों ही स्तरों पर संघर्ष की स्वीकृति है। हर हालत में यह उस मनुष्य की पक्षधरता है जो हड्डियाँ जला देने वाला कठोर परिश्रम करके भी उतना नहीं पाता जितने से अपना और अपने परिवार का पेट भर सके–

''नीरू ने आज सुबह ही सुबह माँ के हाथों पर हफ्ते भर की तनख्वाह रख दी थी इसलिये खाने का इन्तजाम हो गया था। नीरू ने खाना खाते समय कपड़ा निकाला तो माँ स्तब्ध रह गयी। हड्डियाँ निकल आयीं थीं, नसें उभर गईं थीं। माँ ने एक बार हफ्ते भर की तनख्वाह का हिसाब लगाया, फिर नीरू की हड्डियों को गिना, कुछ कह नहीं पा रही थी।

'नीरू तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है? माँ का स्वर था।'

'आठ आने रोज माँ।'

'तीन रुपये तो तुमने घर को दे दिये। आठ आने में एक हफ्ता कैसे काम चला होगा।' गीले स्वर में माँ ने पूछा।

''चल जाता है माँ, चल जाता है। तुम काहे को चिंता करती हो। मिल में सामान सस्ते में मिल जाता है।''[5]

माँ ने नंगी वास्तविकता के अधिक अनावृत्त होने के भय से बात अधिक नहीं बढ़ाई।

मिश्रजी का कथाकार अपनी सर्जना में इसी नंगी वास्तविकता से जूझता है बड़े निर्मम भाव से उसे अनावृत करता चलता है। 'जल टूटता हुआ' (1969) का सतीश अनुभव करता है ''गरीबी सबसे बड़ा अपमान है– वह तेज, विद्या, बुद्धि सब छीन लेती है।''[6] और कि ''इस इलाके के बड़े बामन, हरिजन, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग, सभी भूख और गरीबी के चक्के में बुरी तरह पिस रहे हैं।''[7]

गरीबी में पिसने वालों की यह व्यथा–कथा ही मिश्रजी की चेतना को बार–बार कुरेदती है। उन्हें बेचैन बनाती है और उन्हें ऊबड़–खाबड़ वीरान इलाकों में ले जाती है जहाँ घायल सामधारी इलाज के अभाव में दम तोड़ देता है, जहाँ सुग्गन मास्टर पग–पग पर समझौता करने के बावजूद सिर पीटकर रह जाते हैं; चिनैया की मजबूती उसे वेश्या बनाकर छोड़ देती है। फुलवा का सर्वस्व चला जाता है और मँगरू को उसके खेत से बेदखल कर दिया जाता है। वस्तुतः मिश्रजी का कथा साहित्य इस सामाजिक अन्याय के विरूद्ध और प्रकृति तथा व्यवस्था की दुहरी मार खाने वाले लोगों के पक्ष में की गयी जरूरी

कार्यवाही है। यही वह कसौटी है जिस पर वे आज की राजनीति और दर्शन को,. धर्म और संस्कृति को, अनुभव और विचार को, कला और जीवन मूल्यों को परखते हें। इनमें से जो भी गाँव की इस शोषित मनुष्यता के हित में है, वही मानवीय और मूल्यवान है, और जो इसकी पक्षधरता नहीं करता, उसके आस–पास चकाचौंध कर देने वाला कितना ही तेजस्वी प्रभा मण्डल क्यों न हो, वह मानव विरोधी है– त्याज्य है।

लेकिन इस सम्बन्ध में एक बात जो कभी भुलाई नहीं जानी चाहिए वह यह कि एक रचनाकार की मानवीय पक्षधरता विचार और व्यवहारगत न होकर अनुभवात्मक होती है। यह जरूरी है कि उसकी पक्षधरता आरोपित न हो। रचना में यह पात्र परिस्थिति के संघर्ष और सामंजस्य की तार्किक परिणति के रूप में आए। उसमें आने वाले विचार अनुभव प्रसूत हों, संयोग से ''अपने लोग'' का कथानायक प्रमोद एक रचनाकार के रूप में मनुष्यता का पक्षधर है लेकिन वह अपनी इस पक्षधरता से पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हो पाता– ''कभी–कभी तड़प होती है रही है कि काश मैं इस मिट्टी में उतर कर इस मिट्टी की गरीबी के विरूद्ध सक्रिय संघर्ष कर पाता। साहित्य के माध्यम से तो यह संघर्ष उभारने की कोशिश करता रहा हूँ, लेकिन साहित्य का संघर्ष काफी नहीं है।''[8] जल टूटता हुआ के अमलेशजी अपनी उच्चकोटि की साहित्यिक सांस्कृतिक अभिरुचि के बावजूद अपने आपको दीनदयाल की धूर्त्तता से नहीं बचा पाते। अमलेशजी यह कहते ही रह जाते हैं– ''हिम्मत हो तो आ जाओ किसी भी मैदान में– साहित्य पर बहस कर लो.....।''[9] लेकिन इससे उनकी स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता। इसका अर्थ यह नहीं कि रामदरश मिश्र सामाजिक संघर्ष में साहित्य की कोई भूमिका ही स्वीकार नहीं करते। यहाँ उनका संकेत इस तथ्य की ओर है कि बड़ी से बड़ी क्रांतिकारी कलाकृति भी क्रांति की समानार्थ नहीं हो सकती। उसकी भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है। लेकिन उसका प्रभाव सीधा न होकर परोक्ष होता है। इस परोक्षता का सम्बन्ध सीधे–धीरे साहित्य की रूपगत मर्यादा से है। यही वह सीमा रेखा है जहाँ कभी–कभी रचनाकार के अन्वेषण की दिशा और आलोचक के आग्रहों के बीच टकराहट की स्थिति पैदा हो जाती है।

प्रत्येक रचना रूप के कुछ सामान्य लक्षण होते हैं। संवेदनात्मक दृष्टि और तदनुरूप शिल्प संधान की कुछ निश्चित दिशाएँ होती हैं। एक श्रेष्ठ रचनाकार अनुभव और शिल्प की इन मर्यादाओं में बँधकर नहीं रह जाता। एक स्तर पर जहॉ वह इतने जुड़ा होता है, वहीं दूसरे स्तर पर यह इनके अतिक्रमण के द्वारा अपनी विशिष्ट पहचान बनाता है। हम यहाँ रामदरश मिश्र के उपन्यासों के इन रचनात्मक बिन्दुओं को तलाश करेंगे जो उन्हें यथार्थ बोध और मानवीय अर्थवत्ता की पहचान के स्तर पर वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। आँचलिकता के चालू मुहावरे से हटकर एक रचनात्मक के रूप में उनकी अलग से पहचान बनाते हैं।

मिश्र जी के उपन्यासों में आने वाला गाँव सामान्य न होकर विशिष्ट है। वह पूर्वी उत्तर प्रदेश के ऐसे भू–भाग से सम्बन्धित है जो अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण नदियों से घिरा हुआ है। इन नदियों का पानी इस भू–भाग के लिए जीवनदायी तत्व बन सकता था, लेकिन हुआ यह है कि वह बाढ़ बनकर आता है और खेतों में खड़ी फसलों को अपने साथ बहा ले जाता है। वहाँ के लोगों को बेघर समस्या 'जल टूटता हुआ' की है। इन दोनों उपन्यासों की समस्या और उसके समाधान की खोज की दिशा में जो अन्तर दिखाई देता है वह समय के साथ बनते बिगड़ते नए सामाजिक, राजनीतिक, समीकरणों ने उपस्थित किया है। दोनों ही उपन्यासों के केन्द्र में कछार के अभावग्रस्त जीवन की करुण स्थितियों के बीच से उभरकर लेखक की चेतना पर बार–बार एक ही सवाल दस्तक देता है। वह यह कि इस शोषित और वंचित मनुष्यता को इस घोर लज्जाजनक गरीबी से मुक्ति कैसे मिलेगी? कब मिलेगी?

व्यवस्था का नागपाश और अमानवीयकरण की प्रक्रियाः– इस स्तर पर उनका पहला उपन्यास 'पानी के प्राचीर' हमें एकदम आश्वस्त नहीं करता। उसमें शोषित समाज की पीड़ा का मर्म तो है लेकिन ''पांडे पुरवा के लोग उन ताकतों को पहचानने की प्रतीति नहीं कराते जो उनका शोषण करती है। इस पहचान के अभाव में ही लोगों के मन में उन शक्तियों के प्रतिकार की प्रभावशाली भूमिका भी निर्मित नहीं हो पाती।''[10] उपन्यास में संघर्ष तो है लेकिन वह लगभग गँवई लड़ाई के स्तर पर ही चित्रित हुआ है। कथानायक नीरू के पिता सुमेश पांडे के लिए कहा गया है– ''यह मजबूरियों से घिरा होने के नाते वर्तमान को ही देख पाता था। भविष्य के प्रति उसकी दृष्टि हमेशा सजग नहीं रह पाती थी। हर बार वर्तमान की छोटी उपलब्धियाँ भविष्य की बड़ी संभावनाओं का तिरस्कार कर देतीं।''[11] यह कथन जैसे गाँव के सभी लोगों के लिए सही ठहरता है। नेता गनपति को इस बात की जानकारी है कि ''अँगरेज सरकार ने भाई–भाई के बीच फूट डाल रखा है, यह जमींदार आसामी का फर्क बना रखा है.....इस अँगरेज सरकार ने हमारी जिन्दगी पायमाल कर दी है।''[12] लेकिन उनकी यह जानकारी विचार के धरातल पर ही रहती है, वह जीवन व्यापारों के बीच से फूटकर अनुभव के धरातल पर नहीं आ पाती।

लेकिन शायद आलोचकीय दृष्टि की एक मर्यादा यह भी होती है कि वह व्यक्ति या समाज–जीवन की किसी सच्चाई को, उसके किसी अंश को उसी रूप में चित्रित देखना चाहती है जिस रूप में उसने उसकी धारणा बना ली है। यदि रचनाकार का कोई विचार उसकी रचना में अनुभव के स्तर पर व्यक्त न हो सके तो इस असंगति को आसानी से पहचाना जा सकता है। लेकिन उसके रचनात्मक अनुभवों में अन्तर्निहित दृष्टि को, रचनाकार के संवेदनात्मक उद्देश्य को पहचान पाना उतना आसान नहीं हो पाता। 'पानी के प्राचीर' में व्यवस्था के खिलाफ सीधी कार्यवाही के रूप संघर्ष का चित्रण लेखक को अभिप्रेत नहीं है। उसका संवेदनात्मक उद्देश्य कुछ दूसरा ही है– कहना न होगा कि वह अधिक गहरा है और उसकी व्यंजना भी अधिक सांकेतिक रूप में हुई है। उपन्यास का कथानायक नीरू ''सोच रहा है मगर उसके सोचने से क्या होता है? प्रवाह तो अपने रास्ते चला जा रहा है। वह सोचता है– इसे रोकना है।''[13] इस आतंककारी अमानवीय प्रवाह ने नीरू के जीवन को तबाह कर दिया है– ''उसके मन में सत्य और कल्पनाओं की एक भीड़ खड़ी हो गई है। खेत सब मुखिया के पेट में चले गए। घर के सामान कस्बे के बनिए ने खा डाले। चारों ओर से कर्ज दहाड़ रहा है।''[14] हर स्तर पर अन्याय और शोषण की यातनाओं को झेलने वाला नीरू जमींदार गजेन्द्रसिंह की नौकरी करते हुए अपनी और अपने साथ ही अपने वर्ग क यातनाओं के मूल तक पहुँच जाता है। वह देखता है ''गुलाब के फूलों की लाली हवेली के पीछे मुस्करा रही थी, रंग रही बगीचे के आँचल को.....और..... और हवेली के सामने किसानों की पीठ पर रक्त की चिपचिपाहट धूप में चिलचिला रही थी।''[15] नीरू देखता है कि किसानों की पीठ पर कोड़े बरसाने वाले गजेन्द्र सिंह के सिपाही भी किसानों के ही बेटे हैं। ''वह सोच रहा था ये सिपाही भी कितने जानवर हो गए हैं? घर के गरीब मजदूर किन्तु जैसे जमींदारी प्रथा ने इन पर जादू करके या खुद किसानों पर जो अत्याचार करने हैं वह खुद अपने पर कर रहे हैं।''[16]

आघातजनक बात तो यह है कि इतने गहरे सामाजिक विवेक और यथार्थ की इतनी सही पहचान के बावजूद एक क्षण ऐसा आता है जब जमींदारी की नौकरी करते हुए नीरू भी शोषण के उस यंत्र का पुर्जा बन जाता है। 'पानी के प्राचीर' में जिस भूभाग की व्यथा–कथा मिश्र जी कह रहे हैं, उसमें पहले तो ऐसे लोग है ही नहीं जो अपनी यातनाओं को जन्म देने वाली व्यवस्था के असली चेहरे को पहचानते हों और जो हैं भी– जैसे कि नीरू– उन्हें वह सत्ता और सम्पत्ति के नागपाश में बाँधकर एक ओर डाल देती है। उनके अन्दर की मानवीय संवेदनशीलता के स्रोत को सोख लेती है। यह बात नहीं कि नीरू अपने आपको इस पकड़ से मुक्त न कर लेता हो, लेकिन यह होता है बहुत बड़े आत्मसंघर्ष के बाद। उसके बाद नीरू के प्रयत्नों का एक ही लक्ष्य हो सकता था और वह था व्यवस्था के आमूल

बदलाव के लिए संघर्ष की नयी दिशा का संधान। लेकिन शताब्दियों की परतन्त्रता के बाद मिलने वाली आजादी लोगों में नयी चेतना पैदा करती है, नई उमंग जगाती है। ऐसी परिस्थिति में नीरू की दृष्टि से वह प्रश्न कुछ समय के लिए ओझल हो जाता है जिसे लेकर वह अब तक अपने आप से और व्यवस्था से जूझता रहा। देश की आजादी एक विराम है, उस संघर्ष के लिए जिसका चित्रण रचनाकार अपनी अगली कथाकृति 'जल टूटता हुआ' में करता है।

व्यवस्था के आमूल बदलाव के लिए संघर्ष और व्यक्ति मन के अन्तर्निषेधः–बदलाव की कामना एक बात है लेकिन भीतरी तथा बाहरी अवरोधों से जूझते हुए आगे के पथ का संधान करना दूसरी बात है। मिश्र जी उन लोगों में से नहीं हैं जो समस्या का सरलीकरण करके अपने अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य संघर्ष से मुक्ति पा लेते हैं। वे समस्या को बढ़ा–चढ़ा कर या अकारण उलझाकर भी प्रस्तुत नहीं करते। वे अनुभव और विचार दोनों ही स्तरों पर अपने सृजन के दायित्व की गम्भीरता का निर्वाह करते हैं। वे गाँव के (और भारत गाँवों का देश तो है ही) ऐसे लोगों की मानवीय चिन्ता और उनके मानवीय संघर्ष को रूपायित कर रहे हैं जिनके पास अपनी एक परम्परागत दृष्टि भी है। वे भले ही चिन्तन के स्तर पर उस परम्परा से जुड़े न हों, लेकिन उनके संस्कार बड़ी दूर तक उनकी समझ और सोच की दिशा का निर्धारण करते हैं। मनुष्यता के हित में चलने वाला संघर्ष अनेक स्तरों पर लड़ा जा रहा है, वह अनेक दृष्टियों से अपने आपको संवर्धित कर रहा है। हमारे यहाँ कम से कम दो दृष्टियाँ तो क्रियाशील हैं ही– गाँधीवादी और मार्क्सवादी। हम एक को आध्यात्मवादी कह सकते हैं और दूसरी को भौतिकवादी। 'जल टूटता हुआ' का कथानक अपने संघर्ष की दिशा निर्धारण में एक गहरे अन्तर्विरोध में फँसा दिखाई देता है। एक स्तर पर वह आत्म पीड़ा और आत्मदान के पथ पर चलकर अपने लक्ष्य तक पहुँचने की बात सोचता है। ''नहीं वह सत्य का पक्ष नहीं छोड़ेगा, चाहे कितने ही खतरे उठाने पड़ें, उसे टूट ही क्यों न जाना पड़े, देश में और लोग भी हैं जो इस पथ से चल रहे हैं, वह परगना हाकिम, कलक्टर साहब सभी तो इस पथ पर हैं।''[17] लेकिन दूसरे स्तर पर वह बड़ी बेचैनी के साथ अनुभव करता है कि सामाजिक न्याय की इस समस्या को नीति या निष्ठा के स्तर पर नहीं सुलझाया जा सकता। यह बात नहीं कि ऐसे परगना हाकिम या ऐसे कलक्टर हमारे बीच हैं ही नहीं जो सतीश की तरह ही प्रलोभनों और आकर्षणों से दूर रहकर अपनी ईमानदारी की बड़ी से बड़ी कीमत चुकाने को तैयार रहते हैं। लेकिन कानून जौर कर्त्तव्य परायणता से उस सच्चाई को कैसे झुठलाया जा सकता है, जिसके रहते सतीश अनुभव करता है कि ''कागजी न्याय, पुलिस वगैरह झूठे झमेले हैं, जो कभी भी सत्य का पक्ष नहीं ले सकते, सब उलझाकर छोड़ देते हैं।''[18] सतीश यह समझ चुका है कि न्याय की लड़ाई अदालत में नहीं लड़ी जा सकती और न उसको लड़ने का वह तरीका हो सकता है जो उसका अपना है। इस लड़ाई का अंतिम फैसला जनता की अदालत में होगा और इसका कारगर तरीका वह होगा जो महीपसिंह के विरुद्ध जगपतिया ने अख्तियार किया था। यानी इसके लिए समानधर्मा लोगों को संगठित करना होगा और शोषण तथा दमन करने वाली ताकतों के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करनी होगी। महीपसिंह और उस वर्ग के लोग उसी भाषा को समझते हैं जो जगपतिया की है। लेकिन फिर भी सतीश रचनात्मक स्तर पर पूरी तरह जगपतिया के साथ जुड़ नहीं पाता। यह नहीं कि वह वर्ग–संघर्ष की सच्चाई और उसकी क्रांतिकारी भूमिका से अपरिचित हों। उसमें उसके जुड़ने की गहरी चाह भी है। लेकिन जैसे कोई भीतरी दबाव उसे उस दिशा में आगे बढ़ने से रोक देता है। यह दबाव उसके अपने संस्कारों का है जो उसे अपनी परम्परा से या कहें कि अपने पिता से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ था। विरोधाभास यह है कि अपने पिता के परम्परागत दाय को भी वह पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता। संघर्ष की दिशा में आगे बढ़ने की बेचैनी और अन्तर्निषेधों से ग्रस्त होकर अपने आत्मबद्ध चिंतन के घेरे से बाहर न निकल पाना सतीश के जीवन की एक बहुत बड़ी विडम्बना है। क्या यह आत्म–संघर्ष प्रकारान्तर से समग्र भारतीय जनमानस के आत्म–संघर्ष का परिचायक नहीं है।

'जल टूटता हुआ' में लड़के, घर से साफ कपड़े और टोपी के लिए अपनी माताओं के थप्पड़ खाकर, कागज की टोपियाँ लगाकर गीली आँखें और 'हँसी पहने हुए' चेहरे लेकर स्कूल पहुँचते हैं। सुग्गन मास्टर जी ने उनसे कहा था कि 'हँसी खुशी के साथ आना', पर वे साफ देखते हैं कि 'हर हँसी के पीछे एक उपवास है, एक बेबसी है।' यही वह पीड़ा है जिसे रामदरश मिश्र ने, अपने उपवास में, उसके पूरे परिवेश के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

'अपने लोग' में जो सामाजिक–राजनीतिक परिप्रेक्ष्य उभर कर सामने आया है वह हर स्तर पर नैतिक विघटन की सूचना देता है। जैसे पूरी की पूरी व्यवस्था कुछ चालाक और अवसरवादी लोगों के इशारे पर नाच रही है। चारों ओर फैली मूल्यगत अराजकता के इस माहौल में वे लोग ही फूल–फल रहे हैं जो दूसरों का खून चूस कर मोटे होते रहने में माहिर हैं या दूसरों की झोपड़ी उजाड़ कर अपना महल बना लेने में किसी प्रकार की नैतिक बेचैनी का अनुभव नहीं करते। ये सारी स्थितियाँ कथानायक प्रमोद को न केवल मानसिक स्तर पर बेचैन बनाती हैं, बल्कि कर्म और चिन्तन के धरातल पर गहरे संघर्ष के बाद उसे इस आत्मस्वीकार की ओर ले जाती हैं कि व्यक्ति और समाज को इन स्थितियों से बाहर निकालने का एक मात्र रास्ता समाजवाद है। संयोग से प्रमोद एक रचनाकार भी है और अपनी रचनाओं में वह उन्हीं मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षशील है जो शोषित मनुष्यता को पक्षधरता करते हैं। उसके प्रगतिशील चिन्तन का आदर्श ऐसे सामाजिक संघर्ष की भूमिका का निर्माण करना है जो मानव–मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सके। प्रमोद जानता है कि यह लड़ाई अकेले हाथों नहीं लड़ी जा सकती। इसके लिये एक सामाजिक राजनीतिक संगठन का होना निहायत जरूरी है। लेकिन संगठन के साथ जुड़ने के सवाल पर एक रचनाकार के रूप में उसका मन द्विधाग्रस्त दिखाई देता है। उसे डर है कि राजनीतिक संगठन कहीं उसकी लेखकीय स्वतंत्रता को मर्यादित न कर दे। उसका यह संदेह सम्भवतः उन कठमुल्ले साम्यवादियों की बहसों से जन्मा है जिन्हें न जिन्दगी का अनुभव है, न मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की पहचान। लेकिन एक लम्बे अन्तर्द्वन्द्व के बाद एक व्यावहारिक शर्त के साथ वह अपने आपको साम्यवादी पक्ष के साथ जोड़ लेने को तैयार हो जाता है। शर्त यह कि वह साम्यवादी पक्ष उन लोगों का नहीं होगा जिनके लिए मार्क्सवाद केवल एक फैशन है जो शहर के कॉफी हाउसों में बैठकर केवल शाब्दिक बहस ही कर सकते हैं और कुछ भी नहीं कर सकते। वह पक्ष कामरेड जनार्दन जैसे लोगों का होगा जो मार्क्सवाद को जनता में जीवित करना चाहते हैं। जो किसानों और मजदूरों के बीच रहते हैं। उनके अधिकारों के लिए लड़ते हैं, उन्हें जगाते हैं, पढ़ाते हैं, लिखाते हैं।''[19] इसलिये अपने पुत्र पवन को साम्यवादी पक्ष के साथ जुड़ते देखकर प्रमोद उससे कहता है– ''कभी–कभी तड़प होती है कि काश में इस मिट्टी की गरीबी के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष कर पाता। मैं सक्रिय संघर्ष नहीं कर सकता यह मेरी सीमा है, इसलिये वह चाह लिए मैं बराबर तड़पता रहा हूँ। वह चाह तुम्हारे माध्यम से अभिव्यक्ति पा ले, तो मुझे परम तृप्ति होगी।''[20]

हालांकि किसी पात्र की मान्यताओं को ज्यों की त्यों रचनाकार की मान्यताओं के रूप स्वीकार कर लेना उचित नहीं माना जा सकता, लेकिन प्रमोद की उपर्युक्त मनःस्थिति और उसमें उद्भूत चिंतन में लेखक की अपनी मान्यताओं और आस्था की अनुगूँज आसानी से सुनी जा सकती है।

'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' में गजेन्द्रसिंह और महीपसिंह जैसे क्रूर जमींदारों के यहाँ नौकरी करते हुए नीरू और सतीश किसानों के साथ अपेक्षाकृत रहमदिली का व्यवहार करते हैं। उनके इस मानवीय व्यवहार के कारण हम उनके प्रति अन्दर ही अन्दर कृतज्ञता से भर उठते हैं। उन दोनों का यह बड़ा संवेदनशील और मानवीय रूप हमें दूर तक प्रभावित करता है। हालांकि यह कटु सत्य है, लेकिन इसे झुठलाया नहीं जा सकता कि इस प्रकार की करुण और मानववाद से गरीबों और शोषितों की स्थिति नहीं बदली जा सकती।

'पानी के प्राचीर' का नीरू हुरदरेव राय को लेकर सोचता है– 'चूसना, चूसना और चूसना ही इन लोगों का काम है। इसलिए जवार के बड़े आदमी बने हुए हैं।''[21]

महीपसिंह के यहाँ नौकरी करते हुए सतीश ने भी ''जैसे एक नयी दुनिया देखी ''एक दुनिया जिसका रंग किसानों और मजदूरों की चीख चिल्लाहटों के कंधों पर खड़ा था। जिसके कमल इन गरीबों के पसीने के कीचड़ में खिले थे, जिसका प्रकाश गरीबों की हड्डियों की रगड़ से फूटा था।''[22]

पात्रों के चरित्र निर्माण में भी मिश्र जी ने उनके वर्गीय वैशिष्ट्य को विशेष रूप से रेखांकित किया है। खास तौर से उनके नारी पात्रों में सामाजिक दायित्व के पक्ष से लेकर प्रेम के व्यक्तिगत धरातल तक श्रमिक वर्ग की नारियाँ अधिक संघर्षशील दिखाई देती हैं। वह चाहे बिंदिया हो या लवंगी, इमरतिया हो या रूपमती इस वर्ग की हर स्त्री जीवन संघर्ष के स्तर पर अधिक ऊँची नीतिमत्ता उदारता और मानवीय संवेदनशीलता का परिचय देती है। वह परिस्थितियों के सामने झुकती नहीं; उनका डरकर मुकाबला करती है। ये सभी श्रमिक होने के साथ ही तथाकथित छोटी जाति की नारियाँ हैं। लेकिन ये बड़ी जातियों के 'बड़प्पन' के खोखलापन को बखूबी जानती हैं। बिंदिया सोचती है– ''कैसे हैं ये बामन कुत्ते। रात में विष्टा तक खा लेंगे और दिन में ओठों पर पान की पीक पोतकर महकने की कोशिश करते हैं।[23] 'जल टूटता हुआ' की बदमी चुनौती के स्वर में कहती हैं– ''यह गिरने गिराने का काम आप लोगों के घरों की बामनियाँ करती हैं, मुझसे किसी के घर का कुछ छिपा नहीं है।''[24]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मिश्र जी ऐसे रचनाकार हैं जिन्हें गाँव की मिट्टी से गहरा प्रेम है, जिन्हें वहाँ के नदी–तालाबों, खेत–खलिहानों, बाग–बगीचों, तीज–त्यौहारों, मेलों–दशहरों के प्रति गहरा आकर्षण है। लेकिन इन सबके प्रति उनके लगाव का एक मात्र कारण यह है कि ये सब उस मनुष्य के साथ जुड़े हुए हैं, जिस पर प्रकृति और व्यवस्था की दुहरी मार पड़ रही है। उनके श्रेष्ठ उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता है, लेकिन आंचलिक तत्वों के प्रति गहरे आकर्षण के बावजूद अपनी कथा–कृतियों में मिश्र जी उस मनुष्य की केन्द्रीय स्थिति को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देते, जिसकी यातनाओं के मूल में वर्ग विभक्त समाज की सच्चाइयाँ हैं। मिश्र जी का मानना है कि सम्पत्ति का संचय शोषण से होता है। इसी से अभाव और गरीबी जन्म लेती है। लेकिन गाँव के जीवन के यथार्थ का एक छोर भारतीय समाज की वर्ण–व्यवस्था से भी जुड़ा हुआ है। इसने अछूत समझे जाने वाले मनुष्य की यातनाओं को और भी बढ़ाया है। मिश्र जी ने खास–तौर से इस तथ्य को रेखांकित किया है कि इस वर्ण–व्यवस्था के मूल में भी सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों का असमान और अन्यायपूर्ण वितरण करे। उनका मानना है कि शोषित और दलित मनुष्यता की मुक्ति का मात्र रास्ता वर्ग–संघर्ष है। इस संघर्ष में दलित वर्ग की भूमिका अधिक नियामक होगी। लेकिन वे यह भी मानते हैं कि वर्ग–संघर्ष और समाजवाद का रास्ता आसान नहीं है। यह एक सीधी चढ़ान है जिस पर व्यक्ति के भीतरी और व्यक्तिगत स्वार्थों की खतरनाक फिसलनें हैं। लेकिन फिर भी उनके पात्र अपने भीतरी और बाहरी अवरोधों से टकराते हुए इस रास्ते पर आगे बढ़ते हैं।

अपने अनुभव की आंतरिक जरूरत के रूप में मिश्र जी ने आंचलिक शिल्प स्वीकार किया है। यह कला रूप उन्हें जीवन के विविध स्तरीय यथार्थ को उसकी समग्रता में देखने समझने की छूट देता है। बिखराव वाले शिल्प को उन्होंने कुशलता से साधा है, क्योंकि वे जिंदगी को टुकड़ों में बाँटकर नहीं देखते। उन्हें युग के गतिशील यथार्थ के विविध तत्वों के अन्तःसम्बन्धों की गहरी पहचान है। यह पहचान ही उनके बहुस्तरीय अनुभव को रचनात्मक संयोजन प्रदान करती है। सैद्धान्तिक दुराग्रहों से बचकर जीवन के प्रगतिशील तत्वों को रचना में अनुभव के स्तर पर उद्घाटित कर सकने की अपनी उच्च–कोटि की सर्जनात्मक प्रतिभा के कारण समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में मिश्र जी अपनी अलग पहचान बनाते हैं।

संदर्भ सूची :

1. अपने–लोग, पृ0 148
2. जल टूटता हुआ, पृ0 106
3. उपन्यास : स्थिति और गति, पृ0 22
4. आलोचना अंक 51–52 (प्रेमचंद और परवर्ती कथा साहित्य)।
5. पानी के प्राचीर, पृ0 157
6. जल टूटता हुआ, पृ0 102
7. वही, पृ0 16
8. अपने–लोग, पृ0 360
9. जल टूटता हुआ, पृ0 101
10. रामदरश मिश्र के उपन्यास, पृ0 57
11. पानी के प्राचीर, पृ0 24
12. वही, पृ0 184
13. वही, पृ0 3
14. वही, पृ0 74
15. वही, पृ0 220
16. वही, पृ0 222
17. जल टूटता हुआ, पृ0 514
18. वही, पृ0 449
19. अपने–लोग, पृ0 373
20. वही, पृ0 361
21. पानी के प्राचीर, 144
22. जल टूटता हुआ, पृ0 113
23. पानी के प्राचीर, पृ0 50
24. जल टूटता हुआ, पृ0 531

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

छायावाद: एक नई दृष्टि

डॉ. लोपामुद्रा बेहेरा
(सहायक प्राध्यापक)
सरकारी हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान, कटक (ओडिशा)

पाठ का उधेश्य

- छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताओं को जानेंगे
- छायावाद के प्रमुख कवि तथा उनके कृतित्व से परिचित होंगे
- आलोचकों द्वारा दिए गए परिभाषाओं को समझेंगे
- छायावादी प्रवृतियों से परिचित होंगे
- छायावादी काव्य का परवर्ती काव्यों से संबंधों को समझ पाएंगे

मुख्य शव्द

आलोचना, प्रवृति, आत्माभिव्यंजन, सुकुमार, रहस्यपरक, शृंगार, रूढ़िवाद, स्थूलता, थोथी-नैतिकता, साम्राज्यवाद, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, कानन, सुकुमार, सम्मोहन, लावण्य, सात्विक, स्वानुभूति|

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में छायावादी युग का स्थान महत्वपूर्ण है। द्विवेदी युगीन काव्य की प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद हिंदी कविता में प्रसिद्ध है, जिसकी समय सीमा सन 1918 से 1936 के बीच मानी जाती है। "इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग मुकुटधर पांडेय जी ने किया। इन्होंने अपने निबंधों में पांच विशेषताओं का उल्लेख किया है , छायावाद के पक्ष में वैयक्तिकता, स्वातंत्र्य चेतना , रहस्यवादिता, शैलीगत वैशिष्ट्य और अस्पष्टता।" [1] इसके अतिरिक्त भी छायावादी काव्य अनेक गुणों से परिपूर्ण है। द्विवेदी युगीन कविता जहां विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और सथूल थी वहाँ छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ, कल्पनाप्रधान एवं सूक्ष्म था| छायावाद का प्रयोग व्यंग रूप में उन कविताओं के लिए किया गया जो अस्पष्ट थी, जिनकी छाया कहीं और पड़ती थी, किन्तु कालांतर में यह नाम रूढ हो गया|

जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भ्रम होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी|छायावादी काव्य में राहस्यवादी प्रवृति रहती है, आत्मा एवं परमात्मा का मिलन ही छायावाद है| इससे पहले जो भी काव्य कविता लिखी जाती थी उनका मूल कार्य धर्म, युद्ध वर्णन, शृंगार, समाज सुधार, कुसंस्कार का विरोध, देश एवं राष्ट्रप्रेम ही रहा किन्तु पहली वार छायावादी काव्य में हृदय की, प्रेम की, पीड़ा की बात की गई| आंतरिक भावनाओं को महत्व दिया गया| जीवन जीने, सोचने और अभिव्यक्त करने में साहित्य को माध्यम वनाया गया| वास्तविक प्रेम की खोज संसार के किसी व्यक्ति में नहीं वल्कि परमात्मा परमेश्वर में की गई| उस प्रेम की गहराइयों को व्यक्त करने हेतु प्राकृतिक संपदा तथा रस, अलंकारों एवं छंदों के विविध रूपों का सुंदर वर्णन किया गया| पीड़ा को इसवार प्राप्ति का मार्ग वनाया गया| रहस्यवाद क पक्षधर होते हुए भी, कुछ स्पष्ट न था होते फिर भी परमात्मा प्रियतम के प्रति प्रेम श्रद्धा निष्ठा साफ तौर पर झलकता था, यही इस काव्य की खासियत थी|

<u>आलोचना</u>

कई समीक्षकों का मानना है कि तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन और नवजागरण की प्रक्रिया से यह कटा हुआ है, किन्तु यह सत्य नहीं है| सूक्ष्म स्तर पर यदि देखा जाए तो अनेक जगहों पर नवजागरण की महत्ता यहाँ देखने को मिलता है| नवजागरण का अर्थ है नए तरीके से जागना, छायावाद ने राष्ट्रीय जागरण हेतु एक नया तरीका अपनाया, राष्ट्र के स्वाभिमान और गौरव का ज्ञान कराने हेतु कवियों ने अतीत के महानता का वर्णन किया ..

"पश्चिम की उक्ति नहीं, गीता है गीता है"

नवजागरण का एक तत्व है समस्याओं के समाधान हेतु जूझना| मानसिक स्तर पर तैयार होना| छायावादी कवि अपने लेखनी के माध्यम से जनसामान्य में जोश और उमंग इस प्रकार पैदा करते हैं ..

"हिमाद्रि तुंग शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती"

छायावादी काव्य की संवेदना के स्तरों पर नवजागरण के अधिक निकट है, इसलिए यह कह सकते हैं राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु कुछ नए और मौलिक तरीके प्रस्तुत किए गए ..

"शक्ति की करो मौलिक कल्पना करो पूजन

छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनन्दन"

काव्य को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने हेतु छायावादी कवियों ने अपने काव्य में कई प्रतीकों की सहायता ली, जिसका मूल लक्ष्य समस्या समाधान और वैश्विक कल्याण की भावना की पूर्ति हो सके|

इसके अतिरिक्त प्रेम के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों की मादक, मोहकर मार्मिक चित्र छायावादी काव्य में मिल जाती है| इस कविता में वेदना की गहराई के साथ करुणा तथा निराश की भावना है| साथ ही छयावादी काव्य में नारी के महिमामय रूप की प्रातिशठा हुई है| यह सत्य है इस काव्य में अनुभूति कम और कल्पना अधिक पाया गया, जो भक्ति काव्य के निकट नहीं है, परंतु मानव हृदय को रसमग्न करने और शक्ति देने योग्य स्थायी गुण अवश्य हैं| रामविलस शर्मा जी के शव्द कुछ इस प्रकार हैं.. - "छायावाद मानव जीवन के अधिक निकट है, द्विवेदी युग की वेषणवी श्रद्धा और सशंक नैतिकता बदले पहले पहल अविश्वास और मानवीय प्रेम और शृंगार के स्वर सुनाई पड़ते हैं, नैतिकता के विरोध में नग्नपन को नहीं लिया| नये कवियों ने व्यक्तित्व के पूर्ण विकाश के लिए सामाजिक स्वाधीनता की मांग की, जिसे पिछले युग के सामाजिक बंधन दबा कर रखना चाहते थे| प्रकृति का चित्रण नये ढंग से हुआ, जो कविता को लक्षण ग्रंथों के सीमा से मुक्त करने हेतु समर्थ था| हिन्दी कविता में प्रकृति के यथार्थ चित्र देखने को मिले, सामाजिक रचनाओं में दलित वर्ग के प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की तो दूसरी तरफ उनके मुक्ति के लिए विप्लव भी किया| राहस्यवादी कविताओं में उन्होंने आनंद और प्रकाश में इष्टदेव की कल्पना की, साथ ही अपने जीवन के दारुण व्यथा को भी नहीं भूले| छंद एवं भाषा में नए प्रयोग करके इन्होंने यह साबित किया की हिन्दी साहित्य में एक नए युग की शुरुवात हो चुकी है|"

छायावाद को लेकर प्रसिद्ध विद्वानों के मत-

"आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार छायावाद से लोगों का क्या मतलब है कुछ समझा नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।"[2]

आचार्य शुक्ल- "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए एक रहस्यवाद और दूसरे हाथ में चित्र भाषा शैली।"

आचार्य नंद दुलारे वाजापेयी- "।

डॉ नगेन्द्र- “छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।“

डॉ नामवर सिंह- इन्होंने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में दिखाया- छायावाद कई काव्य प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी और विदेशी पराधीनता से।

इन तमाम परिभाषाओं को देखते हूए यह कहा जा सकता है कि छायावाद का जन्म अनावश्यक नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में एक नियम देखा गया है कि पूर्ववर्ती युग के अभाव को दूर करने के लिए परवर्ती युग का जन्म होता है। इससे पूर्व द्विवेदी युग में हिंदी कविता कोरी उपदेश मात्र बन गई थी। समाज सुधार उपदेशात्मक था तथा नैतिकता की प्रधानता के कारण कविता में नीरसता आ गई , जिसकी भरपाई प्रकृति ने किया। प्रकृति के माध्यम से निजी भावनाओं का चित्रण होने लगा। तभी छायावाद का जन्म हूआ। चित्रभाषा या अभिव्यंजना पद्धति पर जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बंधे हूए क्षेत्र के भीतर चलने वाले काव्य नहीं वल्की उसे छायावाद के नाम से ग्रहण किया गया। इसके अलावा जबलपूर से प्रकाशित "श्री शारदा" पत्रिका में मूकुटधर पांडे य की एक लेख माला “हिंदी में छायावाद ” शीर्षक से निकली यहीं से आधिकारिक तौर पर छायावाद की विशेषताओं का उद्घाटन हूआ।(3) छायावाद का युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। रूढ़िग्रस्त समाज , साम्राज्यवादी मनोवृति, इसाई धर्म प्रचार , पाश्चात्य शिक्षा नीति के विरोध में बूद्धिजीवी वर्ग व्यापक सुधार की मांग कर रही थी । साहित्य के क्षेत्र में भी विजय , भाव, भाषा, छंद आदि क्षेत्रों में नए मूल्य के प्रतिष्ठा का प्रयास किया गया , जिससे छायावादी काव्य का स्वरूप निर्धारण किया गया| ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीकविधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानूभूति की आवृत्ति छायावाद की विशेषताएं हैं।
अतः यदि इन सारी विशेषताओं को उचित क्रम में तथा एक सूत्र में गूँथ लिया जाए ,तो हम कहेंगे छायावाद हिंदी कविता के एक विशेष युग में पूर्ववर्ती युग के विरोध में प्रस्फूटित एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण , एक विशेष दार्शनिक अनूभूति और एक विशेष शैली है , जिसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक का एवं अलौकिक प्रेम के ब्याज से लौकिक अनूभूतियों का चित्रण होता है जिसमें प्रकृति को मानवीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है और जिसमें गीतितत्वों की प्रमुखता होती है।

प्रमुखकवि और उनकी रचना:-

छायावाद की पहचान जिन चार यशस्वी कवियों से होती है जिन्हें चार प्रमुख स्तंभ के साथ भी जोड़ा गया है , वह हैं- श्री जयशंकर प्रसाद , सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा ।छायावाद का नामांकन को यथार्थ रूप प्रदान करने वाली यशस्वी कवयित्री महादेवी वर्मा ही हैं ।

अन्य कवियों में डॉ रामकुमार वर्मा , हरि कृष्ण ' प्रेमी', जानकी वल्लभ शास्त्री , भगवती चरण वर्मा, उदय शंकर भट्ट, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम उल्लेखनीय हैं।

छायावादी युग के कवि और उनकी रचनाओं को दो भागों में विभक्त किया गया- छायावादी काव्यधारा और राष्ट्रवादी सांस्कृतिक काव्यधारा। सर्वप्रथम यदि छायावादी काव्य धारा के कवियों की चर्चा की जाए उनमें प्रथम आते हैं-

जयशंकर प्रसाद- जिनकी रचना उर्वशी , वन मिलन , प्रेमराज्य, अयोध्या का उद्धार , कानन कुसुम, प्रेम पथिक , करुणालय, महाराणा का महत्व , झरना, आंसू, लहर, कामयानी आदि प्रमुख है।

दूसरे यशस्वी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जिनकी रचना कुछ इस प्रकार है - अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, सरोज स्मृति , राम की शक्ति पूजा आदि।

तीसरे कवि सुमित्रानंदन पंत- जिनकी रचना उच्छास , ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, रजत शिखर, पतझर, स्वर्ण काव्य, लोकायतन आदि

- चौथा स्तम्भ कहलाने वाली महादेवी वर्मा- निहार ,रश्मि ,नीरजा व सांध्य गीत ।सभी का संकलन ' नाम से किया गया है ।
- रामकुमार वर्मा भी इसी धारा के अंतर्गत आते हैं , जिनकी कुछ कृतियां रूपराशि , निशिथ, चित्रलेखा, आकाशगंगा है ।
- उदय शंकर भट्ट की रचना राका, मानसी, विसर्जन, युगदीप, अमृत और विष।
- वियोगी जी की निर्मालय, एकतारा, कल्पना।
- लक्ष्मीनारायण मिश्र जी की अंतर जगत , जनार्दन प्रसाद झा- अनुभूति ,अंतर ध्वनि आदि।

उसी प्रकार दूसरे काव्य धारा के अंतर्गत राष्ट्रवादी सांस्कृतिक काव्य धारा के कवि आते हैं जिनमें माखनलाल चतुर्वेदी जी, जिनकी रचना कैदी और कोकिला हिमकिरी ट, हिम तरंगिणी, पुष्प की अभिलाषा|

- सिया शरण गुप्त मौर्य विजय, अनाथ, विषाद, आद्रा, पाथेय, मृणमय, बापू, दैनिक।
- सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा लिखित त्रीधारा , मुकुल, झांसी की रानी, वीरों का कैसा हो वसंत।

इन सभी रचनाओं से परिपृष्ठ है। छायावादी साहित्य 'नामवर सिंह'- के शब्दों में छायावाद शब्द का अर्थ चाहे जो हो परंतु व्यवहारिक दृष्टि से या प्रसाद निराला पंत और महादेवी की उन समस्त कविताओं का द्योतक है जो 1918 से लेकर 1936 तक लिखी गई।"[4]

छायावादी काव्य प्रवृत्तियां

छायावादी काव्य में मिलने वाली प्रवृत्तियों कि हम मुख्यतः तीन वर्ग में विभाजित कर सकते हैं विषयगत, विचार गत और शैली गत ।

रहस्यवादी काव्य में मूलतः नारी सौंदर्य , प्राकृतिक सौंदर्य तथा अलौकिक प्रेम का चित्रण देखने को मिलता है। नारी सौंदर्य और प्रेम दोनों श्रृंगार रस के ही अंग" हैं। छायावादी कवि ने नारी को उसके प्रेयसी के रूप में ग्रहण किया ।प्रसा द, पंत और निराला की काव्य में इस प्रेयसी के सौंदर्य के चित्र अंकित है।

स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म प्रभा व, अश्लीलता, नग्नता से दूर वैयक्तिक चित्रण छायावादी काव्य की विशेषता रही। सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भावनाओं को सजीव रूप प्रदान करने में यह कभी सिद्धहस्त थे। सूक्ष्म भावदशाओं का उद्घाटन , प्रणय में असफलता एवं निराशा बिरह-अनुभूतियां, वेदानुभूति, प्रकृति सौंदर्य और उससे प्रेम का वर्णन ऐसे अनेक भावनाओं का साकार रूप देखने को मिलता है। रहस्यवादी भावनाओं से ओतप्रोत सभी कवियों की रचना एक अपूर्वानंद बिखेरती है।

"रहस्य साधना के क्षेत्र में महादेवी अवश्य दृढ़ता पूर्वक मगन रही। रहस्यवाद में कई स्तर है- प्रथम आलौकिक सत्ता के प्रति आकर्षण, द्वितीय उसके प्रति दृढ़ अनुराग, तृतीय अनुभूति और चतुर्थ मिलन का आनंद।"[5] प्रेम जितना गहरा होगा विरह उतना ही अधिक वेदनापूर्ण और कठिन प्रतीत होगा।

विरह का युग आज दीखा
मिलन के लघु पल सरीखा

दु: ख सुख में कौन तीखा
मैं न जानी औ न सीखा।। (आधुनिक कवि, पृ-68)

छायावाद की विचारगत प्रवृत्तियों के अन्तर्गत अद्वैतवा द, मानव हितवाद, समाज के क्षेत्र में समन्वय वाद, राजनीति के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीयता एवं विश्व शांति का समर्थन सौन्दर्यवाद देखने को मिलता है जो आदर्श , व्यापक और सूक्ष्म अनुभूतियों के साथ उभरकर काव्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।[6]

समन्वयवाद का एक सुंदर उदाहरण –

ज्ञान दूर कुछ किया भिन्न है
इच्छा पूरी क्यों हो मन की
दोनों मिल एक न हो सके
यही विडंबना है जीवन की (प्रसाद)[7]

शैलिगत प्रवृत्तियों कुछ इस प्रकार देखने को मिले- मुक्तक गीत शैली , प्रतिकात्मकता, प्राचीन एवं नवीन अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग जैसे मानकीकरण ,विरोधाभास, विशेषण विपर्य्य, कोमलकांत संस्कृतमय शब्दावली आदि। काव्य में शैली का प्रयोग कुछ खास तत्वों से उभर कर सामने आई- वैक्तिकता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्ता, कोमलता इत्यादि।

इसके अतिरिक्त छायावादी काव्य में कुछ शैली का दोष भी देखने को मिलता है- अशुद्ध प्रयो ग, आस्पष्टता,कल्पना की क्लिष्टता उपमानों का स्वभाविक प्रयोग जो काव्य सौंदर्य की अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करता है। अत्यधिक वैयक्तिकता भी छायावादी काव्य को बोझिल बना देती है। ब्रजभाषा के वाद छायावाद द्वारा गीतिकाव्य का पुनरुद्धार हुआ और गीतिकाव्य के वाद छायावाद में महाकाव्य का निर्माण हुआ| जिसप्रकार तुलसीदास स्वांतः को लेकर लॉगसंग्रह के पथ पर अग्रसर हुए बेसे ही छायावाद के कवि भी स्वात्म को ले कर एकांत के स्वागत जगत से सार्वजनिक जगत में अग्रसर हुए| नामवर सिंह जी कहते हैं "छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभियक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से भी ,यही उसकी खशियत है|

निष्कर्ष

पंत जी की मान्यता सही है - छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी , नवीन आदर्श का प्रकाश , नवीन भावना का सौंदर्य बोध और नवीन विचारधारा का रस नहीं था .....।[8] जो भी हो समय व्यतीत होने का अर्थ यह नहीं कि किसी

भी युग धारा या काव्यगत विशेषताओं की देन साहित्य तथा समाज के लिए फीकी पड़ गई है। सौंदर्य और प्रेम की जिस अक्षय निधि को लेकर छायावाद चला था, वह आज भी उपयोगी और आवश्यक है। छायावाद की कोई एक सर्वमान्य मान्यता निर्मित करना कठिन है, जिसमें सभी रचनाकारों के लेखन की मुख्य तत्व समाजाएं| फिरभी स्वाधीनता की आकांक्षा, प्रकृति वर्णन, वैक्तिकता उभरा, मुक्त छंद की स्थापना, मनोभावनाओं का सूक्ष्म चित्रण, स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रस्तुति, समाज के वंचितों के प्रति सहानुभूति, कल्पना की उड़ान और कविता की भाषा के रूप में खड़ीबोली हिन्दी की स्थापना छायावाद की प्रमुख तत्व और योगदान कह सकते हैं| यह सम्पूर्ण देश का आत्मस्वरूप भले ही समय की गति समाज का यथार्थ प्रतिफलन में यकीन रखता हो और ऐसा हूआ भी , साहित्य समाज का प्रतिबिंब बना परंतु छायावादी काव्य का महत्व कभी कम नहीं हो सकता।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ नगेन्द्र
2. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ गणपति चन्द्र गुप्त
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रायल बुक डिपो
4. छायावाद और हिंदी काव्य, साहित्यिक निबन्ध, डॉ गणपति चन्द्र गुप्त
5. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, शिव कुमार शर्मा
6. प्रतियोगिता साहित्य सीरिज, यू जी सी , नेट
7. छायावादी युग में ब्रजभाषा का काव्य, 2013
8. नामवर सिंह का छायावाद, 1955, नामवर सिंह
9. नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
10. शांति प्रिय द्विवेदी, हमारे साहित्य निर्माता, बांकीपुर
11. नंद दुलारे वाजपेयी,हिन्दी साहित्य विशवी शतावधि, लोकभारती, इलाहवाद
12. रामविलस शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
13. गोपाल प्रधान, छायावाद युगीन साहित्यिक वाद विवाद, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली
14. सुमित्रानंदन पंत, पंत ग्रंथावली, राजकमल प्रकाशन
15. मुकुटधर पाण्डेय, हिन्दी में छायावाद, तिरुपति प्रकाशन, हापुड़

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

भारतीय गाँव : आजादी के पहले एवं आजादी के बाद

प्रो0 अशोक सिंह

कुलपति, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़

भारत एक गाँव सम्पन्न देश है और इसकी लगभग तीन चौथाई आबादी गाँवों में निवास करती है। इसलिए देश की मौलिक आत्मा और नैसर्गिक सौन्दर्य गाँवों में बिखरा पड़ा है। नगर और महानगरों में तो इसका सीमित और कृत्रिम रूप ही परिलक्षित होता है। ग्राम्य जीवन उस क्षेत्र से जुड़ा है, जहाँ मानव और प्रकृति के बीच अन्तःसम्बन्धों का रूप अधिक निकट, प्रत्यक्ष और गहन है। केयर चाइल्ड के अनुसार- ''ग्राम पड़ोस की अपेक्षा विस्तृत क्षेत्र है जिसमें आमने-सामने के संबंध पाये जाते हैं जिसमें सामूहिक जीवन के लिए अधिकांशतः सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक एवं अन्य सेवाओं की आवश्यकता होती है, जिसमें मूल आवृत्तियों एवं व्यवहारों के प्रति सामान्य सहमति होती है।''[1]

गाँव भारत के मेरूदण्ड हैं, जहाँ देश की सत्तर प्रतिशत जनता आज भी निवास करती है। अपनी केन्द्रीयता के चलते गाँव समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी निवास करता है। सच्चे अर्थों में गाँव की एक निश्चित परिभाषा प्रस्तुत कर पाना एक दुष्कर काम है। क्योंकि भारत जैसे भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधता वाले देश में गाँव की संरचना में विविधता दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक वातावरण की कुछ अपनी विशिष्टताएँ होती हैं। इन सबके बावजूद सामुदायिक भावना कृषि एवं ग्रामीण व्यवसाय आदि कुछ ऐसे तत्व हैं जो गाँवों को एकसूत्रता प्रदान करते हैं।

गाँव समाज-निर्माण और सम्पूर्ण राष्ट्र विकास का मुख्य आधार होता है। वास्तविक जीवन की धड़कन और उसके दर्द को जानने के लिए हमें ग्राम्य जीवन एवं ग्रामीण व्यवस्था की नसें टटोलनी पड़ती हैं। नाना प्रकार की समस्याओं से जूझते अनेक तरह की कु-प्रथाओं और रूढ़ियों के निरर्थक बोझ को ढोते, अज्ञान और अशिक्षा के दंश को सहते हुए भारतीय गाँव इस देश का जीवंत एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं।

सदियों से गाँव सभ्यता की दौड़ में अत्यन्त पीछे रहे हैं क्योंकि कृत्रिम सभ्य 'आधुनिकता' के रूप में शहरों में ही अपना रंग दिखाते हैं। सरल तथा निःस्पृह जीवन से सम्पृक्त हमारा ग्रामीण मानस अशिक्षा एवं अज्ञान के कारण इसे सहज अंगीकार नहीं कर सकता है, पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हमारे गाँव सदियों से एक ही ढर्रे पर चल रहे हों। यहाँ भी समय के साथ कई परिवर्तन हुए हैं, पर अत्यन्त धीमी गति से। भारतीय इतिहास के प्राचीन काल या मध्यकाल में गाँवों का जो स्वरूप था, उनकी जो जीवन परिस्थितियाँ थीं, उनके जो विश्वास और मान्यताएँ थीं, उनमें सभ्यता और संस्कृति की उथल-पुथल के साथ-साथ अत्यधिक परिवर्तन दृष्टिगत होता है। यहाँ तक आजादी के तुरन्त बाद के गाँवों और आज के गाँवों में ही बहुत अन्तर एवं बदलाव आ गया है।

भारतीय जीवन का वास्तविक रूप हमें ग्राम समाज में ही दिखलाई पड़ता है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय गाँवों का महत्व अक्षुण्ण बना हुआ है। जनसंख्या एवं रहन-सहन की दृष्टि से भारत का विभाजन दो भागों में किया जा सकता है। ग्राम-भारत एवं ग्रामेत्तर भारत। देश की सर्वाधिक जनता गाँवों में ही निवास करती है। जिसकी प्रकृति एवं जीवनशैली में बहुत विविधता के दर्शन नहीं होते उनका जीवन-यापन खेती, जंगल, पहाड़, नदी-समुद्र आदि पर अवलम्बित होता है। ब्रिटिश शासन से पूर्व गाँव आत्मनिर्भर एवं समृद्ध थे, ये गाँव अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन करते थे और सामुदायिक भावना में बद्ध रहकर एक-दूसरे की सहायता एवं सहयोगपूर्ण सामान्य जीवन व्यतीत करते थे। इस ग्रामीण समाज में ब्रिटिश शासन के दौरान कई परिवर्तन आये। नई शासन प्रणाली, न्यायव्यवस्था एवं नवीन आर्थिक नीतियों ने गाँवों को गहरे प्रभावित किया।

ब्रिटिश शासन का ग्रामीण किसान पर सबसे बुरा असर यह पड़ा कि वह अंग्रेजों के आगमन से पूर्व की सामंती व्यवस्था और अंग्रेजों के साथ आयी पूँजीवादी व्यवस्था के दो पाटों के बीच पिसने लगा। पहली व्यवस्था संस्कृति में अवशिष्ट थी तथा दूसरी व्यवस्था सभ्यता बनकर आयी। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही ग्राम जीवन की व्यवस्थित इकाई छिन्न-भिन्न हो गयी। अब तक जो सम्पत्ति, राजाओं, जमींदारों व सामंतों के हाथ में केन्द्रित थी वह अब शहरों के उद्योगपतियों के हाथ में आने लगी। इसी दौरान अंग्रेजी सरकार व किसानों के बीच जमींदार नामक बिचौलिये वर्ग का तेजी से उभार हुआ, जिसका कार्य किसानों का शोषण करना था। भूमि व्यवस्था में सुधार हेतु अंग्रेजी हुकूमत द्वारा जो प्रयास हुए वह भी शोषक वर्ग के लिए ही हितकर साबित हुआ। परतंत्र भारत में सरकार और किसान, जमींदार, सरकार और पूँजीपति वर्ग सबके शोषण का केन्द्रबिन्दु था। इन किसानों का सीधा संबंध तो जमींदारों से था, किन्तु सरकारी कारकून भी उन्हें तरह-तरह से परेशान करते थे। किसानों के शोषण हेतु इनके अलावा और शक्तियाँ भी विद्यमान थी। लगान देने और वस्तुओं की खरीददारी के लिए कृषि उपज बेचने की बाध्यता के चलते किसान बुरी तरह पराश्रित हो गया। बनिये व साहूकार महाजनों द्वारा किसानों को ऋण जाल में उलझा दिया गया, जिसमें उलझकर किसानों का घर-द्वार नीलाम हो जाता था, फसलें खलिहान से ही उठवा ली जाती थी। उनके भाग्य का निर्धारण खेत और अच्छी फसल की बजाए समाज के शोषक वर्ग द्वारा नियत मूल्यों के आधार पर होने लगा। खेत-खलिहान की लूट से बचा जो माल किसान बाजार में लेकर पहुँचा, वह भी बाजार में जाकर एक नये प्रकार के पूँजीवादी शोषण-चक्र में लुटने लगा। इस मार ने किसानों को सर्वहारा की श्रेणी में ला खड़ा कर दिया।

ग्रामीण समाज में कृषि के पिछड़ेपन, जमींदार-साहूकारों के शोषण, भूमि के असमान वितरण, असमानता, ऋणग्रस्तता, निर्धनता, बेकारी का नवीन प्रणाली की देन मुकदमेबाजी का दुष्परिणाम इस कदर घातक हुआ कि परम्परागत खेती पर से लोगों का भरोसा उठ गया और वे रोजगार की तलाश में शहरों में भटकने लगे। गोदान के गोबर का शहर की ओर रोजगार की तलाश में जाना आजादी के बाद ग्रामीण समाज में व्याप्त विसंगतियों का पूर्वाभास है। ''आजादी के बाद गाँव की आर्थिक स्थिति बहुत नहीं बदली है, पर उसकी सारी अन्तःरचना पूरी तरह से बदल गयी। जिन्दगी का पुराना ढर्रा बदला है, मूल्य बदले हैं, सम्बन्धों के रूप बदले हैं, मान्यताएँ और विश्वास बदल गये हैं। लक्ष्यहीन शिक्षा का प्रसार, राजनीतिक चुनावों का दौर, सर्वे चकबन्दी आदि ने गाँवों के आपसी सारे सम्बन्ध-सूत्र उलझा दिये हैं। सम्बन्धों का ठंडापन और बिखराव उनके भीतर निरन्तर फैलता जहर, अविश्वास आदि गाँवों की जिन्दगी में प्रवेश करते जा रहे हैं। व्यक्तिवाद की चेतना गाँव के सामाजिक जीवन की एकसूत्रता को समाप्त करती जा रही है।''[2] आजादी के बाद जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो चुका है। शिक्षा का प्रसार भी थोड़ी बहुत मात्रा में हुआ है। इस प्रकार अनेकों परिवर्तन ग्रामीण समाज में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दृष्टिगोचर हो रहे हैं। साथ ही इस दौरान ग्रामीणों की मूल धारणा, विश्वास, राजनीतिक विचार तथा सोचने-समझने के ढंग में भी परिवर्तन लक्षित होता है। गाँव की आबादी का आजादी के बाद कस्बों, नगरों-महानगरों में निरन्तर पलायन हो रहा है, वर्तमान राजनीति में व्याप्त सड़न गाँवों में भी पहुँच चुकी है। धार्मिक उन्माद ग्रामीण जीवन में जहर घोलने लगा है। आजादी के बाद ग्रामीण जीवन में धीमी गति से होने वाली हलचलों का यथार्थ अंकन स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों द्वारा किया गया है। आजादी के बाद भारत सरकार द्वारा गाँवों के हितार्थ प्रायोजित पंचायती राज, सामुदायिक विकास योजनाएँ, सहकारिता, कृषि प्रसार, जमींदारी उन्मूलन, शिक्षा आदि सभी योजनाएँ भ्रष्टाचार व दिशाहीनता के चलते अपनी सार्थकता खोती जा रही है।

उपन्यासों में गाँव : आजादी के पहले और आजादी के बाद

यहाँ हिन्दी कथा-साहित्य में गाँव एवं ग्रामीण जीवन का चित्रण करने वाले कथा-साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालना अपरिहार्य है। इसके लिए कथा सम्राट एवं ग्रामीण अभिव्यक्ति के मर्मज्ञ प्रेमचंद को आधार मानकर प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंदकालीन एवं प्रेमचंदोत्तर कथा-साहित्य में ग्रामीण अभिव्यक्ति पर चर्चा की जा रही है। हिन्दी साहित्य में गद्य के विकास के साथ ही कथा साहित्य के बीज भी अंकुरित होने लगे थे। वस्तुतः आधुनिक रूप में कथा-साहित्य का उद्‌भव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माना गया है। क्योंकि उसमें मानव जीवन का चित्रण और मानव-मूल्यों की स्थापना जिस रूप में हुई है वह उसे प्राचीन कथा-कहानियों से अलग करती है। इस युग को 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रेमचंद के उदय अर्थात् 20वीं शती के प्रारम्भ के दस-बारह वर्ष तक माना जा सकता है। यह सीमा केवल सुविधा के लिए है क्योंकि कई लेखक ऐसे भी हुए हैं जो इस काल में भी थे और प्रेमचंद युग में भी।

लाला श्रीनिवासदास का उपन्यास 'परीक्षा गुरू' (1982 ई0) को बहुत से विद्वान् 'हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास'[3] मानते हैं। इसके प्रकाशन के साथ ही हिन्दी उपन्यास साहित्य एवं 'सरस्वती' में प्रकाशित किशोरी लाल गोस्वामी कृत कहानी 'इन्दुमती' (1900) से हिन्दी कथा साहित्य एक व्यवस्थित रूप से अपनी विकास यात्रा तय करने लगा था। इस काल में सुधारवादी जीवन दृष्टि से युक्त सामाजिक, अद्भुत घटना प्रधान, तिलस्मी ऐय्यारी आदि विषय पर कथा साहित्य लिखा गया। यद्यपि इस कालखण्ड के कथा साहित्य में किंचित मात्रा में ग्रामीण अभिव्यक्ति का चित्रण मिलता भी है तो संयोगवश ही मिलता है। उदाहरण स्वरूप हरिऔध कृत 'अधखिला फूल' में गोरखपुर जिले में स्थित ग्रामीण नारी जीवन से संबंधित समस्याओं को उठाया गया है। ब्रजनंदन सहाय के 'अरण्य बाल' उपन्यास में विन्ध्याचल के पहाड़ी गाँव का चित्रण हुआ है। बालकृष्ण भट्ट के 'सौ अजान एक सुजान' में ग्रामीण भाषा का एवं ग्रामीण पात्रों का वर्णन मिलता है।

उपर्युक्त कतिपय उपन्यासों में घटना-स्थल, ग्राम और उसके आस-पास का परिवेश रहा है, परन्तु उनमें ग्रामीण जीवन मूल रूप में नहीं है। इस दृष्टि से मन्नन द्विवेदी का उपन्यास 'रामलाल' उल्लेखनीय है। डॉ0 कैलाश के शब्दों में- ''प्रस्तुत उपन्यास में प्रथम बार सामयिक परिस्थितियों के अंतराल में ग्रामीण जीवन पर उदार एवं सहृदयतापूर्वक दृष्टिपात किया गया है। यही विशेषता आगे चलकर प्रेमचंद के ग्रामीण उपन्यासों की प्राण बनी।''[4]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की बहुचर्चित कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' में ग्रामीण परिवेश का छिटपुट चित्रण मिलता है। सन् 1911 ई0 में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद की महत्वपूर्ण कहानी 'ग्राम' में ''एक ऐसे जमींदार की कहानी कही गयी है, जो इतना समझ चुका है कि नगर में बैठे-बैठे जमींदारी की गाड़ी नहीं घसीटी जा सकती, गाँव में उतरना होगा और गाँव को समझना होगा।''[5]

प्रेमचन्दयुगीन कथाकारों में जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र, वृन्दावनलाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, आदि का नाम लिया जा सकता है। ग्राम्य जीवन का स्वाभाविक एवं सहज चित्रण, ग्राम्यांचल के प्रति प्रेम उनके कथा-साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। प्रेमचंद की दृष्टि में- ''जिस देश में अस्सी फीसदी मनुष्य गाँवों में बसते हों, उस देश के साहित्य में ग्राम्य जीवन ही प्रधान रूप से चित्रित होना स्वाभाविक है। उन्हीं का दुःख राष्ट्र का दुःख और उन्हीं की समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ हैं।''[6] प्रेमचंद के 'गोदान', 'प्रेमाश्रय', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' एवं 'कायाकल्प' उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का विशुद्ध चित्रण मिलता है तो 'सेवासदन', 'वरदान' और 'गबन' में संक्षिप्त रूप में। ग्राम्य जीवन से संबंधित उन्होंने 'पंच परमेश्वर', 'पूस की रात', 'दो बैलों की कथा', 'कफन', 'सवा सेर गेहूँ', 'सद्गति', 'मुक्तिधर्म' आदि कहानियाँ लिखी हैं।

प्रेमचंद के समकालीन जयशंकर प्रसाद का 'तितली' उपन्यास भी ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। जमींदारों के कर्मचारियों की कूटनीति एवं धांधली, ग्रामीण जनता की सरल तथा घोर स्वार्थवृत्ति, गाँव की राजनीति, गाँव के त्योहार-उत्सव सम्मिलित परिवारों की दुर्बलता आदि की झलक दिखाने का प्रयत्न किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा मुख्यतः एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार रहे हैं, पर उन्होंने कुछ सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं। उनके दोनों तरह के उपन्यासों में ग्राम्यांचल के दर्शन होते हैं। ग्राम्य जीवन से संबंधित अपने उपन्यास 'लगन' में उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि दहेज प्रथा से ग्रामीण जीवन में बहुत सी विषमताओं का प्रादुर्भाव हुआ है। 'संगम' उपन्यास में बुन्देलखण्ड की पृष्ठभूमि में ग्रामीण जीवन की रूढ़ियों का चित्रण है। तो 'कुण्डलीचक्र' में ग्राम्यांचल के अंधविश्वासों एवं रीति-रिवाजों के साथ प्रकृति का भी सुन्दर चित्रण मिलता है।

शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया' में ठेठ देहात और ग्रामीण जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इसके संबंध में वे स्वयं कहते हैं- ''मैं ठेठ देहात का रहने वाला हूँ, जहाँ इस युग की नयी सभ्यता का बहुत ही धुंधला प्रकाश पहुँचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती हैं, अज्ञानता का घोर अंधकार और दरिद्रता का ताण्डव नृत्य। वहीं पर मैंने स्वयं जो कुछ देखा सुना है, उसे यथाशक्ति, ज्यों का त्यों इसमें अंकित कर दिया है।''[7]

प्रेमचन्द युगीन कथाकारों में महाकवि निराला का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उनके उपन्यास 'अप्सरा' में तत्कालीन अंग्रेजी राज्य में पुलिस बर्बरता, जमींदारों की विलासप्रियता और ग्रामीण समाज की संबलता-दुर्बलता के चित्र मिलते हैं। 'अलका' उपन्यास में ग्रामीण किसान आन्दोलन की चर्चा है, तो 'निरूपमा' में ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण है। इसके

अतिरिक्त 'बिल्लेसुर बकरिहा' तथा 'कुल्ली भाट' उपन्यास में ग्रामीण चित्र पूर्ण सज्जा के साथ अंकित हुए हैं। इस प्रकार प्रेमचंद युग में प्रेमचंद तथा उनके समकालीन कथाकारों के द्वारा ग्राम्यांचल संदर्भित कथा साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया।

प्रेमचन्दोत्तर एवं स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों में नागार्जुन का नाम प्रमुखता से लिया जाता है जिन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से ग्रामीण अभिव्यक्ति को एक नई दिशा प्रदान की। मिथिलांचल से विशेष संबंध रखने वाले नागार्जुन का प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' है, जिसमें ग्रामीण विधवा गौरी की दुःखभरी एवं करूण कहानी के साथ मैथिली ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। नागार्जुन के दूसरे उपन्यास 'बलचनमा' में भी मिथिलांचल के ग्रामीण जीवन का कटु एवं नग्न यथार्थ अपनी सम्पूर्ण प्रखरता के साथ उद्घाटित हुआ है। उपन्यास 'नई पौध' ग्रामीण मूल्यों के सन्दर्भ में प्राचीन और नवीन मूल्यों के संघर्ष की जीवंत कथा है। उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' में एक वट वृक्ष के माध्यम से संपूर्ण गाँव के पिछले सौ वर्षों का लोक जीवन चित्रित करने का अभिनव, किन्तु सफल प्रयोग नागार्जुन ने किया है। उपन्यास 'वरूण के बेटे' में मिथिला के जमींदारों के संघर्ष का चित्रण हुआ है। इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में ग्राम्य जीवन के बहुविध चित्र उपस्थित हुए हैं।

रेणु जी के उपन्यास 'मैला आँचल' में उन्होंने बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक स्वरूप को चित्रित करने का सराहनीय प्रयास किया है। इसके बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है- ''इसमें फूल भी है, शूल भी है, गुलाल भी, कीचड़ भी, चंदन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी है। मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया।''[8]

देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने प्रथम उपन्यास 'रथ के पहिए' में पहली बार मध्यप्रदेश के गौड़ जनजाति के जीवन यथार्थ का प्रमाणिक अंकन किया। उपन्यास ''ब्रह्मपुत्र'' में सत्यार्थी जी ने असम में ब्रह्मपुत्र के पेट में बसे विशाल द्वीप मांझुली और उसके तट पर स्थित दिसांगमुख के निवासियों के अभाव, यातना और संघर्ष से भरी कथा प्रस्तुत है।

आजादी के बाद कथाकारों में श्रीलाल शुक्ल ने अपने कथा-साहित्य में एक नई दृष्टि ईजाद की, जो कल्पना से परे यथार्थ पर आधारित है। उन्होंने अपने बहुचर्चित उपन्यास 'राग दरबारी' में ग्राम्य जीवन का निर्मम यथार्थ प्रस्तुत किया है। उपन्यास में आजादी के बाद कस्बे का रूप ले रहे गाँवों की मूल्यहीन जीवन स्थितियाँ, शिक्षण संस्थानों के दूषित वातावरण तथा सहकारी समितियों से लेकर कचहरियों तक फैले भ्रष्टाचार पर तल्ख टिप्पणी हुई है। श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' से पूर्व प्रकाशित अपने प्रथम उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' में भी ग्रामीण जीवन की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं का मार्मिक चित्रण है।

राही मासूम रजा ने अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में पूर्वांचल के ही गाँव 'गंगौली' में सदियों से रहते आ रहे मुसलमान जमींदारों और किसानों की बिखरती हुई जिन्दगी का अत्यन्त संवेदनात्मक अंकन किया है। रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ' उत्तर-प्रदेश के कछार अंचल की दमघोंट समस्याओं, विसंगतियों, अभावों और आंतरिक संदर्भों को तीव्रता से अभिव्यक्त करने वाली एक सशक्त औपन्यासिक कृति है। ग्रामीण अभिव्यक्ति से संबंधित इनके अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'पानी का प्राचीर' तथा 'सूखता हुआ तालाब' है। ग्रामीण जीवन के चित्रण से उपन्यास लेखन का शुरूआत करने वाले शिवप्रसाद सिंह का प्रथम उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' है। यह उपन्यास पूर्वी उत्तर-प्रदेश के एक गाँव को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास का केन्द्रीय कथ्य, आजादी के बाद उत्तर-प्रदेश के पूर्वांचल के गाँवों की जिन्दगी के दिनों-दिन नरक बनते जाने का सच है।

विवेकी राय द्वारा लिखा गया उपन्यास 'लोकऋण' एक ऐसे गाँव को प्रस्तुत करता है जो आधुनिक है और मानवीय मूल्यों पर आधारित परम्पराओं को त्यागकर आधुनिक अपसंस्कृति का शिकार हो गया है। इनके एक और उपन्यास 'सोनामाटी' में पूर्वांचल के करइल क्षेत्र की लहलहाती फसलों के सौन्दर्य के साथ-साथ वहाँ के ग्राम-समारोहों, पर्व-त्योहारों, लोक परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों की बहुमूल्य धरोहर को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही विवेकी राय ने इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन में पैदा हुए समकालीन मूल्य संकट का चित्रण भी तन्मयता से किया है।

स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में ग्रामीण अभिव्यक्ति को अपने कृतियों में ठोस जमीन प्रदान करने वाले अन्य महत्वपूर्ण कथाकारों में शैलेश मटियानी, हिमांशु श्रीवास्तव, राजेन्द्र अवस्थी, मिथिलेश्वर तथा मैत्रेयी पुष्पा मुख्य हैं। शैलेश मटियानी आंचलिक उपन्यास की रचना पद्धति से प्रभावित उपन्यासकार हैं। 'हौलदार' उनका अल्मोड़ा की आंचलिक पृष्ठभूमि पर

आधारित उल्लेखनीय उपन्यास है। इस उपन्यास में पहाड़ी जीवन के आर्थिक एवं सामाजिक पक्ष और स्त्री के शोषण का मार्मिक चित्रण हुआ है। हिमांशु श्रीवास्तव द्वारा लिखे गये उपन्यासों में 'लोहे के पंख' और 'नदी फिर बह चली' ग्राम्य जीवन की अभिव्यक्ति करने वाली महत्वपूर्ण कृति है। इन उपन्यासों में किसान और मजदूर वर्ग के कष्टों, उनके शोषण और संघर्ष की मार्मिक प्रस्तुति हुई है। राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यास 'जंगल के फूल' में म0प्र0 के अंचल विशेष की पृष्ठभूमि, आदिवासी संस्कृति की विविधता और सौन्दर्य का अंकन हुआ है। इनके एक और उपन्यास 'जाने कितनी आँखें' बुन्देलखण्ड क्षेत्र के ग्रामीण जीवन पर आधारित है। मिथिलेश्वर के अधिकतर उपन्यासों का कथ्य बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में रूप लेता बिहार का ग्रामीण जीवन है। किसान मजदूरों और उच्च जाति-वर्ग के भूमिधरों के बीच छिड़े संघर्ष का चित्रण मिथिलेश्वर ने प्रमुखता के साथ किया है। उपन्यास 'युद्धस्थल' में उन्होंने एक उच्च जाति की स्त्री को केन्द्र में रखकर उन स्थितियों की कथा प्रस्तुत की है जो अंधविश्वास ग्रस्त पिछड़ी मानसिकता के साथ ग्रामीणों द्वारा डायन घोषित की जाती है और अपमान, भय तथा संत्रासयुक्त जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

महिला कथाकारों में विशेष रूप से मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण जीवन की प्रस्तुति अपने उपन्यासों में की है। इनके उपन्यास 'इदन्नमम' और 'अल्मा कबूतरी' में बुंदेलखण्ड एवं ब्रज क्षेत्र के ग्रामीण जीवन का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। इन दोनों उपन्यासों का केन्द्रीय कथ्य ग्रामीण परिवेश में उभरती हुई नारी चेतना है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने चर्चित उपन्यास 'चाक' में एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया है जो परम्परागत नारी संहिता के साथ-साथ पुरूष सत्ता को चुनौती देती हुई ग्राम पंचायत के प्रधान पद के चुनाव में प्रत्याशी बन जाती है।

हिन्दी कथा साहित्य में ग्रामीण अभिव्यक्ति की जो यात्रा 'रामलाल' जैसे उपन्यासों के माध्यम से आरम्भ हुआ था, उसको प्रेमचन्द ने और परिष्कृत करते हुए आगे बढ़ाया। प्रेमचन्दोत्तर एवं स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों ने उसे मंजिल के अति निकट पहुँचाया। विवेच्य कथाकारों ने अपने कथा-साहित्य से सम्पूर्ण ग्राम भारत को सचित्र प्रस्तुति करते हुए गाँव की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से अवगत कराया।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. केयर चाइल्ड डिक्शनरी और सोशियोलाजी (एम0एल0 गुप्ता एवं डी0डी0 शर्मा, समाजशास्त्र, पृ0 295
2. गोपाल राय- हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ0 273-274
3. डॉ0 नगेन्द्र- हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ0 482
4. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास- डॉ0 कैलाश प्रकाश, पृ0 188
5. आधुनिक हिन्दी कहानी में समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति, डॉ0 प्रेमचन्द सिन्हा, पृ0 148
6. प्रेम पियूष- प्रेमचंद, भूमिका से उद्धृत
7. शिवपूजन सहाय रचनावली, पृ0 415
8. मैला आँचल- रेणु, भूमिका से उद्धृत

ISSN : 23197137, Volume: 13/Issue: 01, January-June : 2021

श्रीलाल शुक्ल एवं हिन्दी उपन्यास

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर, कूबा पी0जी0 कॉलेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

सम्पादक– World Translation & International Literary Quest

स्वातंत्र्योत्तरकालीन उपन्यास लेखन

इतिहास साक्षी है कि लम्बे संघर्षों व अनगिनत बलिदानों के फलस्वरूप हमारा देश सन् 1947 ई0 में आजाद हुआ। देश की जनता अपने कंधों पर से गुलामी का जुआ उतार फेंकी। भारतीय जनमानस में आजादी के बाद वैचारिक पुनर्जन्म होता है। क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के आन्दोलन में आजादी केवल राजनीतिक मूल्य के रूप में स्वीकृत नहीं हुई थी वरन् विचारों के क्षेत्र में भी नवीन क्रान्ति का उद्घोष थी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय जनता द्वारा स्वीकृत संविधान ने एक नवीन समाज की रचना का सपना लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया। लेकिन आजादी की लड़ाई के समय जनता द्वारा देखे और संजोए गये स्वतंत्र भारत के सपनों का विपर्यय हुआ। नवजागरण और स्वाधीनता आन्दोलन के आदर्शों, उद्देश्यों, संकल्पों और जनता से किए गये ढेर सारे वायदों और प्रतिश्रुतियों की त्रासद परिणति सामने उपस्थित हुई। श्रीलाल शुक्ल का रचना संसार इन्हीं विपरीत त्रासदियों के भंवरजाल में अपना आकार प्राप्त करता है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान जनता के दिलों में अरमान था कि आजाद होने के बाद हम एक ऐसे समाज में रहेंगे, जो शोषक वर्ग से रहित होगा, सभी को समान अधिकारों की प्राप्ति होगी। यानी अंग्रेजों के अत्याचार से मुक्ति पाने के बाद सामन्त, जमींदार और महाजन वर्ग के शोषण से भी उन्हें निजात मिलेगी। पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अर्द्धशती पर हम नजर डालें तो यह स्पष्ट होता है कि इस समस्त शोषक व्यवस्था को हटाकर संविधान के माध्यम से प्रजातंत्रात्मक ढंग से सम्पदा विपरीत करने, समान अधिकार व सबको न्याय दिलाने की जो बात सामने रखी गयी थी वह कितनी खोखली साबित हुई। डॉ0 शिव कुमार मिश्र लिखते हैं कि- ''क्या लाये थे 19वीं सदी के उत्तरार्ध के हमारे पूर्वज 20वीं सदी के शुरूआती भारत में एक नवजागरण और एक स्वाधीनता आन्दोलन, आजादी के बाद के भारत के नवनिर्माण के सारे सपने और संकल्प और क्या लेकर हम आए हैं, नई सदी की दहलीज में उन सबका त्रासद विपर्यय उनके ध्वंसावशेष, साम्प्रदायिक धर्मोन्माद की हाहाकारी गूँजें, भ्रष्टाचार की हजार बाँहों वाली विषकन्या, जातिवाद का दानव, स्वार्थ, फरेब, आपाधापी, लाभ-लोभ की गलाकाटू प्रतिस्पर्धा, सत्ता की हवस, मौकापरस्ती अपराधियों का पूरा समाज, बाजार तंत्र, करोड़ों-करोड़ वंचितों और उपेक्षितों के महज जिन्दा रहने का बुनियादी जरूरतों की कीमत पर समाज के एक छोटे से तबके के लिए सुखभोगवाद की न्यामतें, अपसंस्कृति का एक पूरा सैलाब, दलित और नारी उत्पीड़न की रोमांचक दास्तानें और भी न जाने क्या-क्या? त्रासद और क्लेशदायक है यह सारा परिदृश्य दुनियाँ के सबसे बड़े प्रजातंत्र का अपराधियों, धनपतियों और बाहुबलियों की गिरफ्त में महज तंत्र बनकर रह जाना।''[1] स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास लेखन शायद इन्हीं वाक्यांश के इर्द-गिर्द नजर आता है।

उपरोक्त तत्कालीन परिस्थितियों के दबाव से समाज के प्रति प्रतिबद्ध लेखन में यथार्थ अपने पूरे परिवेश के साथ बिना किसी लेखकीय आग्रह के साथ साकार हो उठा। द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामों की भयावहता, आजादी के बाद हुए दर्दनाक विभाजन, चीन द्वारा भारत की पराजय, पंचशील के नारों का पतन, गरीबी, भुखमरी, महँगाई, समाज में व्याप्त शोषण-विघटन ने समानता न्याय, नैतिकता, बंधुत्व, पवित्रता व आदर्शपरक भावनाओं को बेमानी सिद्ध कर दिया। आम आदमी पीड़ा, घुटन, उत्पीड़न और जहालत झेलने को अभिशप्त हो गया। ये सब अगर स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में चित्रित हुए तो इसका कारण यही था कि ये जीवन में विद्यमान थे। इस छटपटाहट में साधारण व्यक्ति अपने जीवन की सार्थकता खोज रहा

था। गाँव में व्याप्त भुखमरी ने ग्रामीणवर्ग को रोजी-रोटी की तलाश में शहरों की तरफ भागने को मजबूर कर दिया। सभी बदलाव अन्य प्रबुद्ध रचनाकारों के समान श्रीलाल शुक्ल के रचना संसार में भी दिखाई पड़ता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

साहित्य का इतिहास समाज का इतिहास नहीं होता। किन्तु किसी भी भाषा साहित्य की व्यापकता एवं विस्तार में उसकी राजनीतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि की निर्णायक भूमिका होती है। 15 अगस्त 1947 की तारीख भारतीय इतिहास की एक ज्वलंत घटना इसलिए है कि उसने भारतीय जीवन को झटके के साथ एक ऐसे समय बिन्दु पर खड़ा कर दिया, जहाँ से उसकी प्रकाश यात्रा आरम्भ होती है। नियति से मुलाकात की इस तारीख की, साहित्य के इतिहास में भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

प्रेमचंद के बाद विश्व में और भारतवर्ष में बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन हो चुके हैं। 1939 ई0 से 1945 ई0 तक सम्पूर्ण विश्व को अपनी लपेट में लेकर ध्वंस लीला करने वाला महायुद्ध, बंगाल का भीषण अकाल, 1942 ई0 में गाँधीजी का 'भारत छोड़ो' का ऐतिहासिक नारा, जनता का विद्रोह, अंग्रेजों का भीषण दमन चक्र, अगस्त 1946 ई0 में नेहरू के नेतृत्व में अन्तर्कालीन सरकार का संघटन और मुस्लिम लीग का प्रत्यक्ष संघर्ष, 14 अगस्त सन् 1947 ई0 को पूरे देश का ''भारत' और ''पाकिस्तान' दो राष्ट्रों में बँटवारा और भारत की स्वतंत्रता, 26 नवम्बर 1949 ई0 में भारत के संविधान का निर्माण, 26 जनवरी 1950 ई0 को भारत का 'सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' के रूप में उदय, विश्व राजनीति में सहअस्तित्व और पंचशील की मान्यता और उसका तिरस्कार, चीन का आक्रमण, आदर्शवादी नेताओं का मोह भंग, भारत और पाकिस्तान युद्ध, ताशकन्द वार्ता, देश के सामने अनेक समस्याएँ, सब मिलाकर देश की नयी पीढ़ी के सामने निराशा, कुण्ठा, दृष्टिहीनता, लक्ष्यहीनता, शून्यता, परमुखापेक्षिता, आत्महीनता का वातावरण, इन सबका सामूहिक प्रभाव साहित्यकारों की रचना-प्रेरणा को प्रभावित करता रहा है।

''ऐतिहासिक दृष्टि से इस पूरे काल-विस्तार में लिखे गये उपन्यास- साहित्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व का उपन्यास-साहित्य और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से आज तक का उपन्यास साहित्य। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले पूरे हिन्दी-प्रदेश को एकता के सूत्र में बाँधने और उत्साह को एक निश्चित दिशा में प्रवाहित करने वाली मूल-प्रेरणा थी- ब्रिटिश साम्राज्यवाद से सतत संघर्ष की प्रवृत्ति। इसके साथ ही शोषण का विरोध, निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति, सामाजिक एकता, नारी-जागरण और अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि अन्य प्रेरणाएँ थीं, जो साहित्यकारों के सृजनेच्छा को प्रभावित कर रही थीं। रचनाकारों के सामने लक्ष्यहीनता का प्रश्न नहीं था। उनके मन में आदर्शवादी प्रवृत्तियाँ प्रधान रूप से कार्य कर रही थीं। वे यथार्थ की ओर बढ़ रहे थे, किन्तु आदर्श को जीवन का स्पन्दन देने के उद्देश्य से परम्परा के प्रति उनका विद्रोह ध्वंसात्मक नहीं हो पाया था।''[2]

स्वातंत्र्योत्तर कालीन उपन्यास तथा उपन्यासकारों को अगर सही समय काल के अन्तर्गत लेकर चलते हैं तो प्रथम नाम जैनेन्द्र का आता है। जैनेन्द्र मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार के साथ-साथ गाँधीवादी विचारधारा को हिन्दी उपन्यासकारों में आध्यात्मिक धरातल पर स्वीकार करने वाले हैं। वे समाज में व्याप्त विसंगतियों का अन्त कर सामाजिक व्यवस्था को बदलने के पक्षधर हैं। जैनेन्द्र का उद्देश्य अहं का विसर्जन है और अहं का विसर्जन स्वयं को पीड़ा देकर ही होता है। जैनेन्द्र के मुख्य उपन्यासों में सुनीता (1936), त्यागपत्र (1937), परख (1930), कल्याणी (1939), सुखदा (1952), व्यतीत (1953), जयवर्द्धन (1956), मुक्तिबोध (1965), अनन्तर (1968), अनाम स्वामी (1974), दर्शक (1985) है। इनके अधिकतर उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय मिलता है। अपने पात्रों को आत्मपीड़ा देकर भी समाज को व्यवस्थित रखने के पक्षधर हैं। जैनेन्द्र ने नारी के जीवन, सामाजिक स्थिति और विविध समस्याओं को उजागर किया है।

'अज्ञेय' मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रौढ़ रचनाकार माने जाते हैं। इन्होंने अपने अधिकतर उपन्यासों के पात्रों के अन्तर्सत्यों का यथार्थ विश्लेषण किया है जिसके लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि अपनायी है किन्तु जीवन की अनुभूतियाँ जीवन से ही ली गयी हैं, मनोविज्ञान की पोथियों से नहीं। अज्ञेय के मुख्य उपन्यासों में 'शेखर एक : जीवनी' (1941-44), 'अपने-अपने अजनबी' (1961), 'नदी के द्वीप' (1957) हैं। तीनों ही मनोविश्लेषणवादी उपन्यास हैं, जिसमें शेखर एक जीवनी का

विशेष महत्व है। यह जीवनी के रूप में लिखा गया उपन्यास है। शेखर एक अहंवादी व्यक्ति है, जिसके मन में सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति विद्रोह की भावना है। वास्तव में शेखर किसी महापुरूष का व्यक्तित्व नहीं है बल्कि एक साधारण से व्यक्ति की कथा है, जो अपने भीतर हर क्षण अलग-अलग मनुष्यों को जीता है। शेखर के विषय में अज्ञेय कहते हैं- 'शेखर कोई बड़ा आदमी नहीं है, वह आधा भी आदमी नहीं है, लेकिन वह मानवता के संचित अनुभव के प्रकाश में ईमानदारी से अपने को पहचानने की कोशिश कर रहा है।''[3]

प्रेमचन्द युग में और प्रेमचन्द के बाद के युग में कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जाते रहें, जिनमें इतिहास अपने पूरे परिवेश और घटनाओं के साथ पूरी सच्चाई से मूर्तिमान हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृन्दावन लाल वर्मा उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। इनके उपन्यासों में 'विराटा की पद्मिनी' (1936), 'झांसी की रानी' (1946), 'मृगनयनी' (1950) आदि विशेष महत्व के हैं। इनके अधिकतर उपन्यास बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों में निवास करने वाली आम जनता पर आधारित हैं। सामाजिक यथार्थवादी (प्रगतिवादी) उपन्यासकारों में यशपाल, नागार्जुन, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय राधव, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय आदि को प्रमुख स्थान दिया जाता है। यशपाल के प्रमुख उपन्यासों में 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'दिव्या' (1945), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'मनुष्य के रूप' (1949), 'अमिता' (1956), 'झूठा सच : दो भाग' (1958), 'मेरी तेरी उसकी बात' (1974) प्रमुख हैं।

यशपाल की दृष्टि समाज के प्रति मार्क्सवादी रही है। यशपाल की उपन्यास-कला का चरम निदर्शन उनके 'झूठा सच' उपन्यास में लक्षित होता है। यह उपन्यास दो खण्डों में विभाजित है। 'वतन और देश' पहला खण्ड तथा 'देश का भविष्य' दूसरा खण्ड है। इसमें 1942 ई0 से लेकर 1952 ई0 तक के भारत के राजनीतिक-सामाजिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। पं0 हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (1946), 'चारूचंद्रलेख' (1963), 'पुनर्नवा' (1973), 'अनामदास का पोथा' (1976) सभी में ऐतिहासिकता के साथ-साथ गहरी रोमानियत विद्यमान है। द्विवेदी जी का 'वाणभट्ट की आत्मकथा' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। द्विवेदी जी अपने सभी उपन्यासों में परम्परागत सामाजिक बंधनों को तोड़कर स्वच्छन्द मानववादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करके अपने रोमानी झुकाव का परिचय दिया है। ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में राहुल सांकृत्यायन का 'सिंह सेनापति' (1942), जययौधेय (1944), मधुरस्वपन (1950), रांगेय राघव का 'मुर्दों का टीला' (1948), शिवप्रसाद रूद्र का 'बहती गंगा' (1952), आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'वैशाली की नगरवधू (1945), अमृतलाल नागर कृत 'शतरंज की मोहरें' आदि प्रमुख है।

प्रेमचंद ने जिस सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति अपने उपन्यासों में की है, बाद के उपन्यासकारों ने उसी परम्परा का पोषण और संवर्धन किया है। सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने वाले उपन्यासकारों की दृष्टि मार्क्सवादी रही है। सामाजिक जीवन के विविध परिवेश चित्रण के साथ आर्थिक पहलुओं का विशेष महत्व दिया गया है क्योंकि अर्थ समाज की हर गतिविधि को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

सन् 1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन', 'हिन्दू-मुस्लिम दंगे', 'बंगाल का अकाल', सन् 1947 में देश का बंटवारा, स्वतंत्रता प्राप्ति, शरणार्थी समस्या, सार्वजनिक चुनाव, पंचवर्षीय विकास योजनाएँ, प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि समस्याएँ और घटनाक्रम चलते रहे। जिसका प्रमाण देश की आम जनता पर तो हुआ ही तत्कालीन लेखक वर्ग तो इससे विशेष प्रभावित हुआ। बहुत से उपन्यासकारों ने उस समय का सामाजिक यथार्थ अपने उपन्यासों में चित्रित कर डाला। स्वतंत्रता प्राप्ति और देश विभाजन के पश्चात् भार में विघटित मूल्यों और पार्टियों की स्वार्थपरता ने देश के समाज को पूर्णतः विखंडित कर दिया था। इस समस्या को लेकर 'अमृतलाल नागर' द्वारा लिखा गया उपन्यास 'बूंद और समुद्र' (1946) विशेष महत्वपूर्ण है। तत्कालीन समाज में व्यक्तियों का अपने परिवेश से टूटकर अलग होना, स्वकेन्द्रित होते जाना, मनुष्य के भीतर उठते हुए भावगत, विचारगत परिवर्तनों, संक्रान्त मूल्यों और सम्बन्धों, राजनीतिक दलों की विभीषिकाओं से त्रस्त होती हुई मानवता आदि का यथार्थ चित्र नागर जी ने प्रस्तुत किया है। उपन्यास के अन्त में लेखक सज्जन के रूप में बूंद और समुद्र की पारस्परिक अवलम्बिता के विषय में सोचता है- ''सुख-दुःख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सम्बन्ध बना रहे जैसे बूंद से बूंद जुड़ती रहती है- लहरों से लहरें, लहरों से समुद्र बनता है, इस तरह बूंद में समुद्र समा गया है।''[4]

पाचवें दशक में लिखा गया धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' (1949) एक दुःखात्म प्रेमकथा थी। जिसने अपने कथानक की नवीनता के कारण युवा वर्ग में धूम मचा दी। इस उपन्यास के सम्बन्ध में डॉ0 सावित्री सिन्हा लिखती हैं- ''यदि एक ओर मध्यवर्गीय समाज की रूढ़िग्रस्ता और विषमताओं का निरूपण हुआ है, तो दूसरी ओर व्यक्तिगत स्तर पर भावना और वासना का द्वन्द्व चित्रित है।''[5] वास्तव में लेखक ने सुधा और चन्दर के प्रेम के माध्यम से पवित्र और उदात्त प्रेम की स्थापना की है। उस समय जब उपन्यासों में यथार्थ जीवन का विशृंखल फोटो निर्गत हो रहा था। उस समय भारती जी का यह उपन्यास अपने कथानक सौष्ठव और शिल्प की रमणीयता के कारण विशेष आकर्षण का केन्द्र बना।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में ग्राम्य जीवन का विस्तृत विवेचन किया है। उन्हीं की लेखन पद्धति को और विस्तार रूप में आंचलिक उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया। आंचलिक उपन्यासकार मानव-जीवन के यथार्थ का, उसके परिवेश, वेशभूषा, रहन-सहन आदि के साथ चित्रण करते हैं।

'फणीश्वरनाथ रेणु' कृत 'मैला आँचल' (1954) आंचलिक उपन्यासों के लिए मील का पत्थर है। रेणु जी ने इसमें मेरीगंज के ग्राम्य जीवन का अत्यन्त सूक्ष्म एवं विशिष्ट वर्णन किया है। मैला आँचल एक प्रकार से अनेक लघु कथा प्रसंगों एवं जीवन-परिस्थितियों का संग्रह है, जिसमें लेखक केवल 'स्नैपशाट्स' लेता गया है अर्थात् कोई व्यवस्थित एवं सुगठित प्रधान कथा नहीं है बल्कि बिखरे हुए खंडचित्र हैं। लेखक ने मेरीगंज गाँव में लोगों का जीवन उनके व्यवहार की जटिलताओं-कुंठाओं, आचरण की असंगतियों, सामाजिक एवं वैयक्तिक सदाचार के बीच वैषम्य आदि का सजीव एवं मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया है।

नागार्जुन का पहला उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' (1948) में प्रकाशित हुआ। उसके बाद 'बलचनामा' (1952), 'नई पौध' (1953), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954), 'वरूण के बेटे' (1957), 'दुःख मोचन' (1957), 'कुम्भीपाक' (1960), ''हीरक जयंती' (1961), 'उग्रतार' (1963), 'इमरतीया' (1968), 'पारो' (1975), 'गरीबदास' (1979) आदि कई उपन्यास प्रकाशित हुए। नागार्जुन की बहुत बड़ी विशेषता उनके भीतर निरंतर जलनेवाली आग है। 'गरीबदास' नागार्जुन का अन्तिम उपन्यास है। इसमें गरीबदास की व्यथा-कथा के बहाने स्वतंत्र भारत के ग्रामीण जीवन की सामाजिक-आर्थिक अन्तर्विरोधों को उजागर किया गया है। इस प्रकार नागार्जुन अपनी कथा-रचना के माध्यम से सभी प्रकार के शोषण से मुक्त नये समाज की प्रतिष्ठा में पूरी शक्ति से लगे रहे हैं।

रांगेय राघव ने बहुत से उपन्यास लिखे हैं। 'घरौंदे' (1946), 'विषादमठ' (1946), 'मुर्दों का टीला' (1948), 'कब तक पुकारूँ' (1957), ''आखिरी आवाज' (1963) उनके प्रमुख उपन्यास है। 'आखिरी आवाज' रांगेय राघव का अन्तिम उपन्यास है। इसमें स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय गाँव के जीवन चित्रित हैं। रांगेय राघव का दृष्टिकोण मानवतावादी है। वे प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित हैं।

मोहन राकेश कृत 'अंधेरे बंद कमरे' (1961) में आधुनिकता का अधूरा स्वीकार है, अनुभूति की धारा पहले खुलकर फिर बंद हो जाती है। राकेश जी ने पति-पत्नी के रूप में हरबंश और नीलिमा के माध्यम से आधुनिक दाम्पत्य जीवन की घुटन, ऊब, एकरसता, झुंझलाहट और आवृत्ति को उपन्यास के कैनवास पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। हरवंश-नीलिमा को आधुनिक बनाने की ललक में छूट तो देता है किन्तु एक सीमा तक और उसकी सीमा वह स्वयं निर्धारित करना चाहता है। लेकिन नीलिमा बहुत ही स्वतंत्र और शौकीन महिला है, जिस कारण दोनों के सम्बन्धों में अलगाव उत्पन्न होता है। पुरूषों के आधुनिकता की सोच के सम्बन्ध में डॉ0 सुरेश सिन्हा लिखते हैं- ''पुरूष सब कुछ कर सकता है, नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं बनने दे सकता।''[6]

भीष्म साहनी के कुल सात उपन्यासों में सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'तमस' (1973) है। इसमें लेखक ने 1947 ई0 के मार्च-अप्रैल में हुए भीषण साम्प्रदायिक दंगे की पाँच दिनों की कहानी इस रूप में प्रस्तुत की है कि हम देश-विभाजन के पूर्व की सामाजिक मानसिकता और उसकी अनिवार्य परिणति की विभीषिका से पूरी तरह परिचित हो जाएँ।

निर्मल वर्मा के पाँच उपन्यास 'वे दिन' (1964), 'लालटीन की छत' (1974), 'एक चिथड़ा सुख' (1979), 'रात का रिपोर्टर' (1989), 'अंतिम अरण्य' (2000) में प्रकाशित हैं। उनकी पहली कृति 'वे दिन' में 'आधुनिकताबोध' के सारे सूत्र- अकेलेपन का बोध, विजातीयता की अनुभूति, महायुद्ध का संत्रास, जीवन की व्यर्थता का बोध, उदासी, तनाव, अनिश्चय आदि विद्यमान है।

राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव' (1966) में गाजीपुर जिले के गंगोली गाँव के आधे भाग में रहने वाले सैयद मुसलमानों की कहानी कही गयी है। यह कहानी, देश के स्वतंत्र होने, उसके दो टुकड़ों में बँटने, जमींदारी के समाप्त होने और नये जमाने में राजनेताओं के रूप में एक अलग समृद्ध और शक्तिशाली वर्ग के उदय होने की है। कुछ शिक्षित मुसलमानों के निजी स्वार्थ और महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए देश का विभाजन होता है।

बदी उज्जमाँ के उपन्यास 'छाको की वापसी' (1975) में लेखक ने दिखाया है कि देश का विभाजन गलत था। छोटी हैसियत के मुसलमानों के लिए पाकिस्तान का बनना न बनना कोई अर्थ नहीं रखता। अपना वतन, अपनी जमीन, अपने लोग, अपनी संस्कृति एक दिन में नहीं बदली जा सकती। इससे टूटने का दर्द हमें भी बहुत गहरे में कहीं तोड़ देता है।

मारकण्डेय के दो उपन्यास 'सेमल का फूल' (1959) और 'अग्निबीज' (1981) प्रकाशित हैं। 'अग्निबीज' विशेष रूप से चर्चित हुआ। इस उपन्यास में सन् 1953-54 ई0 के आस-पास के राजनीतिक संदर्भ को केन्द्र में रखकर अप्रासंगिक होती हुई राजनीतिक चेतना के विरूद्ध जागृत होती हुई क्रान्तिधर्मा युवा-चेतना को ग्रामीण परिवेश में चित्रित किया गया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' (1996) में इलाहाबाद के समीप स्थित बालापुर गाँव को केन्द्र में रखकर देश के स्वतंत्र होने से लेकर आपातकाल लागू होने तक की कहानी कही गई है। नेहरू का शासन, चीन का आक्रमण, शास्त्री के शासन काल में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान युद्ध, इंदिराजी के समय में कांग्रेस का विभाजन, बंग्लादेश का उदय, आपातकाल, नक्सलवाद का उभार, इन सभी घटनाओं की अनुगूँज उपन्यास में सुनाई पड़ती है।

शिवप्रसाद सिंह के 'अलग-अलग वैतरणी' (1967) में स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद गाँवों में आने वाले बदलाव का बड़ा ही संश्लिष्ट चित्र खींचा गया है। कथा के केन्द्र में 'करेता' गाँव है। वस्तुतः यह गाँव आधुनिक भारत के सभी गाँवों का प्रतिनिधित्व करता है। जमींदारी उन्मूलन के बाद गाँवों के जीवन में बदलाव आना स्वाभाविक था। लेकिन यह बदलाव पुराने मूल्यों को तोड़कर एक तरह की रिक्तता छोड़ जाता है। नये मूल्य रिक्तता को भर नहीं पाते। उपन्यास में आज के गाँवों का जीवन यथार्थ अपनी कुरूपता में साकार हो उठा।

महेन्द्र भल्ला का ''एक पति के नोट्स' (1966) में नोट्स लिखने की पद्धति पर अनुभव के छोटे-छोटे टुकड़ों को एक क्रम में रखकर उसे अंकित किया गया है। आधुनिकता बोध के कारण अनुभूति की धारा खुली हुई है। उपन्यास का मूल स्वर संभोग कहा जाता है लेकिन उपन्यास में कहीं-कहीं बोरियत के कारण सेक्स नहीं बल्कि रोज के दायरे में चक्कर काटता जीवन भी है।

साठ के बाद के उपन्यासों में काम की प्रवृत्ति को चित्रित किया गया है। नारी का पुरूष के प्रति और पुरूष का नारी के प्रति ही आकर्षण नहीं होता बल्कि समलैंगिक सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण किया गया है। राजकमल चौधरी का उपन्यास 'मछली मरी हुई' लेस्बियाँ पर आधारित है। उन्मुक्त यौन सम्बन्ध उच्चवर्गीय समाज की एक विशेषता रही है। इस उपन्यास का नायक 'निर्मला पद्मावत्' फ्रायड का काम भावना और 'एडलर' की हीन ग्रन्थि से ग्रसित है। जिसका लेखक ने मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। उपन्यास की नारी पात्रा शीरी और प्रिया 'होमोसेक्सुअल' की आदती है।

मणि मधुकर का 'सफेद मेमने' (1971) में यही कामुक प्रवृत्ति लक्षित होती है। 'सफेद मेमने' का परिवेश महानगरीय नहीं बल्कि राजस्थानी अंचल के सीमापर बसे 'नेगिया गाँव' का है। लेखक ने नेगिया गाँव का भौंड़े, वीभत्स और कुत्सित चित्र खिंचने के साथ ही वहाँ रहने वाले स्त्री-पुरूषों की कामुक, व्यभिचारी, अनाचारी और विकृत मनोवृत्ति का यथार्थ चित्र उकेरा है। उपन्यास में रेगिस्तान के एकांत जैसा ही अकेलापन और बेगानापन है जिसके मूल में आधुनिकता बोध ही है।

समकालीन उपन्यासों में यौन-सम्बन्धों के विषय में महिला लेखिकाओं ने भी स्वतंत्र लेखन किया है। 'कृष्णा सोबती' नारी की बेबसी के बीच से ही उसकी ऊर्जा और यौन साहसिकता का स्पर्श करती हैं। उनके उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' में

आकस्मिक घटनाओं के संघात से उत्पन्न नारी-दुर्भाग्य और विगलित पीड़ा के भावुक चित्र हैं तो 'मित्रो मरजानी' में मित्रो की उद्दाम काम-पिपासा के सन्दर्भ में उसके व्यक्तित्व का नैसर्गिक खुलापन उसे लज्जाशील नारी से परे करती है। प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है- 'मित्रो एक सभ्य परिवार की बहू है, बहू रहने के तौर-तरीके उसे सख्त नापसन्द हैं।''[7] कृष्णा सोबती के उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' में भी उन्मुक्त भोग की अवधारणा देखी जा सकती है।

उन्मुक्तता और यथार्थ के तेज मिजाज का संकेत 'ममता कालिया' के 'बेघर' उपन्यास में भी मिलता है, किन्तु इनकी उन्मुक्तता और तेजमिजाजी की पहचान यौन प्रसंगों में अधिक की जा सकती है। इस उपन्यास में संजीवनी के माध्यम से अविवाहित नौकरी पेशा युवती की समस्याओं को चित्रित किया है। परिवार द्वारा उपेक्षित संजीवनी को विपिन और परमजीत दोनों से झटका लगता है। वैवाहिक जीवन में संदेह की स्थिति के कारण पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों को तोड़ डालता है।

'मन्नू भंडारी' का 'एक इंच मुस्कान' आधुनिक जीवन की विसंगतियों में नारी के 'मिस-फिट' होने की यथार्थता का गहरा बोध स्पष्ट करता है। 'आपका बंटी' (1971) में 'मन्नू जी' ने तलाकशुदा पति-पत्नी के प्रश्न को बच्चे की समस्या के बिन्दु से उठाया है। तलाकशुदा पत्नी और पति के नये जीवन के साथ सामंजस्य की समस्या, बीत गये सम्बन्धों से उत्पन्न अकेलेपन की अकुलाहट, पत्नीत्व तथा मातृत्व या निजी जीवन जीने के अधिकार और उत्तरदायित्व का निर्वाह आदि समस्याएँ स्वाभाविक रूप से उभरकर सामने आयी हैं। शकुन और अजय का अहंबोध और एक-दूसरे को पराजित देखने की मानसिक कुंठा की परिणति तलाक के रूप में होती है। डॉ0 सुरेश सिन्हा के अनुसार ''व्यक्ति अपने जीवन परिवेश से आकर्षित हो सकता है या घृणा कर सकता है, पर असम्पृक्त नहीं हो सकता।''[8]

सब मिलाकर हिन्दी उपन्यास का भविष्य निराश करने वाला नहीं है। स्वातंत्र्योत्तर युग में हिन्दी उपन्यासों का टेकनीक की दृष्टि से भी अभूतपूर्व विकास हुआ है। व्याख्यात्मक शैली, पत्र शैली, डायरी शैली, रिपोर्ताज शैली, रेखाचित्र शैली या इन सबको समन्वित करके चलने वाली शैली सभी में उपन्यास लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्तर्जगत् की गहन अनुभूतियों को बाह्य वर्जनाओं से मुक्त करके व्यक्त करने के प्रयत्न में चेतना-प्रवाह एवं मुक्त आसंग, स्वप्न विश्लेषण तथा सम्मोहन, दिवास्वप्न आदि अनेक शैलियों का प्रयोग चरित्र-चित्रण के लिए किया गया है। वातावरण की सृष्टि के लिए ध्वनि चित्रों प्रतीक-संकेतों एवं व्यंजनापूर्ण प्रयोगों का सहारा भी लिया गया है। अनेक दृष्टियों से हिन्दी-उपन्यास विकासोन्मुख ही कहा जाएगा।

संदर्भ सूची :

1. कथाक्रम, जनवरी-मार्च 2006, विपर्यय की त्रासदी से आँखें मिलाता श्रीलाल शुक्ल का रचना संसार- शिवकुमार मिश्र, पृ0 7
2. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी- हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ0 164
3. शेखर एक जीवनी- अज्ञेय
4. बूँद और समुद्र- अमृत लाल नागर
5. तुला और तारे- डॉ0 सावित्री सिन्हा, पृ0 46
6. हिन्दी उपन्यास- सुरेश सिन्हा, द्वितीय संस्करण, पृ0 350
7. मित्रो मरजानी- कृष्णा सोबती (फ्लैप से)
8. हिन्दी उपन्यास- डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 375